ॐ

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुंदकुंदार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलम्॥

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं॥

विदेहक्षेत्र में विराजमान वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा श्री सीमन्धर आदि तीर्थङ्कर जो स्वानुभूतिमय मार्ग बतला रहे हैं; इस क्षेत्र के प्रथम धर्मतीर्थ प्रवर्तक भगवान श्री ऋषभदेव से लेकर, चरम तीर्थङ्कर बाल ब्रह्मचारी श्री महावीर भगवान ने तथा समयसारादि सत्श्रुतों की रचना करके, पुण्यवन्त भारतदेश में जिनवाणी की प्रतिष्ठा करनेवाले इस भूमि के समर्थ आचार्य श्री कुन्दकुन्ददेव ने जो रत्नत्रयरूप आराधना पन्थ बतलाया है, उसी अतीन्द्रिय आनन्दमय साधनापथ के एक पथिक थे युगपुरुष पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, जिन्होंने वर्तमान जैनविश्व को सर्वाधिक प्रभावित किया है और जिन्हें प्राणीमात्र में भगवान आत्मा दिखायी देता था।

आपश्री जैनधर्म के प्राण और उपासक ऐसे महान धर्मात्मा सन्त थे। लुप्त प्राय: हो गये सनातन सत्य को शोध कर, आपश्री ने स्वयं के जीवन में परिणमित किया और भक्तों को भी प्रेरणा प्रदान की। दिव्यध्वनि के सार / मर्मभूत समकित को प्राप्त करके, आपश्री आत्मानन्द का अनुभव कर रहे थे। तीर्थङ्करों, सत्शास्त्रों और दिगम्बर आचार्यों-सन्तों के परम भक्त गुरुदेवश्री ने सम्पूर्ण भारत और विदेश में भी अनेक जिनमन्दिरों में स्वयं के मङ्गल करकमलों से वीतरागी भगवन्तों की पावन प्रतिष्ठा करके, जैनधर्म की अपूर्व प्रभावना की है। समस्त भारतवर्ष में जैनधर्म की विजयध्वजा फहराता हुआ यात्राविहार करके तथा अध्यात्मरस से भरपूर पवित्र वाणी बरसा कर, भव्यजीवों को पावन किया है।

आपश्री द्वारा निर्दोष वाणी से की गयी सत्यधर्म की प्रसिद्धि से, भक्तों के अनन्त भव का अन्त आया है। आपश्री की वाणी की कृपा / प्रसाद से हजारों जीव, आत्म-शान्ति के मार्ग में लगे हैं।

जिनका नाम भी लेने से हम भक्तजन गौरव का अनुभव करते हैं ऐसे महा-उपकारी, गुरुवर्य गुरुदेवश्री के गुणगान गाने का किसका मन नहीं होगा? इसी भावनावश, जिनकी वाणी में अनुभव का बल था और नेत्र में सत् का तेज था - ऐसे गुरुदेवश्री के प्रति अपूर्व-अनन्त-अनुपम भक्ति से प्रेरित होकर; **श्री शान्तिलाल रतिलाल शाह परिवार,** श्री देव-शास्त्र-गुरु का और पञ्च परमेष्ठी का मङ्गलकारी स्मरण करके एवं परम तारणहार, कृपालु, भावी तीर्थाधिनाथ **श्री कहान गुरुदेव** तथा प्रशममूर्ति भगवती माता **पूज्य बहिनश्री के चरण कमल में** वन्दन करके, अन्तर की भावभीगी उमंग एवं उल्लासपूर्ण भावना से प्रस्तुत करते हैं : वीरमार्ग प्रभावक वीर पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की विजय गाथा **कहान क्रमबद्ध कथा भाग-2, सत् की प्रभावना।**

ज्ञानावतारी पूज्य गुरुदेवश्री के सन्दर्भ में भगवती माता पूज्य बहिनश्री लिखती हैं : 'अपूर्व गुणधारी पूज्य गुरुदेवश्री के चरणों में बारम्बार नमस्कार। परमागम शास्त्रों के प्रकाशक, अनुपम श्रुतधारी, जिनकी वाणी सुनने से चैतन्यश्रुत खुले - ऐसे गुरुदेवश्री की क्या महिमा हो! ज्ञायकद्रव्य की महिमा के प्रकाशक, उसका गहन स्वरूप बतानेवाले, मुक्तिमार्ग को बतानेवाले ऐसे कहान गुरुदेव के गुणों का क्या वर्णन हो!

समयसार, प्रवचनसार इत्यादि सम्पूर्ण शास्त्रों के गहन रहस्य प्रकाशक-गम्भीर अर्थ खोलनेवाले, चैतन्यद्रव्य की अनुपम महिमा का ज्ञान करानेवाले, सम्यक्मार्ग में ले जानेवाले, जिनके मुख-कमल से अमृतधारा बरसती है, जिनके प्रदेश-प्रदेश में श्रुतज्ञान के दीपक प्रकाशित हो रहे हैं - श्रुत की पर्यायें प्रगट हो रही हैं, जो श्रुतरस में सराबोर हैं - ऐसे ज्ञानावतारी महिमावन्त दिव्यमूर्ति कहान गुरुदेव, इस भारत में अजोड़ हैं। जिस दिव्यमूर्ति के दर्शन से और जिनकी श्रुतधारा के श्रवण से चैतन्य में सुखादि निधि प्रगट होती है - ऐसे गुरुदेवश्री के चरण-कमल में हृदय बारम्बार नम्रीभूत हो जाता है, अन्तर उल्लसित हो जाता है।

परम कृपालु कहान गुरुदेव का इस पंचम काल में अद्वितीय अवतार है। जिनके दर्शन और अमृतमय वाणी, भगवान का विरह भुला दे ऐसे हैं; जिनकी वाणी की अनुपम धारा चैतन्य को पलटावे ऐसी अद्भुत है ऐसे, अहो! परम उपकारी कहान गुरुदेव की क्या महिमा हो!

श्री गुरुदेव के अन्तर में प्रगट ज्वाज्वल्यमान श्रुतज्ञानसूर्य द्वारा अनुपम रहस्य झरती अमृतवाणी निरन्तर सुनने का अपूर्व योग प्राप्त हुआ है, वह महाभाग्य है।

अहो श्री सद्गुरुदेव! मेरे जैसे पामर पर आपने अपार करुणा बरसायी है। आपकी क्या सेवा-भक्ति करें! जो करें, वह सब कम है। मन-वचन-काय से निरन्तर समीप रहकर आपकी चरण सेवा होवे, यही हृदय की गहरी भावना है।

जीवन आधार, दिव्यज्ञानधारी, परम कृपालु कहान गुरुदेव को इस पामर दास का परम भक्ति से बारम्बार नमस्कार।.... सूक्ष्म और तीक्ष्ण श्रुत शैली से, सर्वांगीण दिव्य अमृत-प्रपात बरसानेवाले अद्भुत गुरुदेवश्री के चरण-कमल में नमस्कार हो।....'

जिन्होंने वस्तुस्थिति का निर्भीकरूप से प्रतिपादन किया है, जो इस काल में वीतरागमार्ग के सच्चे दर्शक हैं, जो निस्पृह-निर्मोह हैं और अनुभव गंगाधारा में से प्रवाहित जिनके वचन आत्मार्थ को प्रेरित करते हैं – ऐसे ज्ञाननिधि पूज्य गुरुदेवश्री की महिमा करते हुए पूज्य सोगानीजी लिखते हैं : 'अरे विकल्प! यदि तुझे तेरी आयु प्रिय है, तो अन्य सबको गौण कर व गुरुदेव के संग में ले चल। वरना उनका दिया हुआ वीतरागी अस्त्र, शीघ्र ही तेरा अन्त कर डालेगा।

पूज्य गुरुदेव की स्मृति इस समय भी आ रही है व आँखों में गर्म आसूँ आ रहे हैं कि उनके संग रहना नहीं हो रहा है।

हे गुरुदेव! आपकी वाणी का स्पर्श होते ही मानो विश्व की उत्तमोत्तम वस्तु की प्राप्ति हो गई।

पामर दशावाले को 'मैं भगवान हूँ, मैं भगवान हूँ' की रटन लगाना, हे प्रभो! आप जैसे असाधारण निमित्त का ही कार्य है। परिणति को आत्मा ही निमित्त होवे अथवा भगवान (आत्मा)... भगवान (आत्मा) की गुंजार करते आप; अन्य संग नहीं – यह ही भावना।

अनन्त तीर्थङ्कर हो गए, लेकिन अपने तो गुरुदेवश्री ही सबसे अधिक हैं। गुरुदेवश्री के उपदेश में इतना खुलासा है कि इस नींव से धर्म, पंचम काल तक टिकेगा – ऐसा दिखता है। पूज्य गुरुदेवश्री ने वस्तुस्वभाव कितना स्पष्ट कर दिया है! वह तो पका-पकाया हलवा है।

महाराज साहब जगत गुरु हैं, जो अकेले सिद्धलोक में नहीं जाते, बहुत से जीवों को साथ लेकर जाते हैं।

महाराज साहब ने दुष्काल में सुकाल कर दिया है यह क्या कम महत्त्व की बात है? इस काल में जहाँ ऐसी बात सुनने को नहीं मिलती, वहाँ मूसलधार वर्षा कर दी है। अपने को गुरुदेवश्री ने ही सब दिया है।

गुरुदेवश्री के लिए मेरे हृदय में क्या है सो चीर कर कैसे बतलाऊँ? बस! यह तो मेरा ज्ञान ही जानता है। मैंने तो गुरुदेव को यहाँ (हृदय में) बैठा लिया है।'

अनुपम गुणधारी गुरुदेवश्री के अपार उपकार तथा आपश्री के प्रति अपरिमित भक्तिभाव के कारण इस कथा में एक ही बात बारम्बार कही गयी हो ऐसी सम्भावना है, परन्तु उसे पुनरुक्ति दोष न मानकर, गुरुदेवश्री के प्रति बहुमान की अभिव्यक्ति मानना....। तीर्थङ्करों की महिमा करने के लिये आचार्य व इन्द्र, 1008 नाम से सम्बोधन करते ही हैं न! तथा बाल तीर्थङ्कर का रूप निहारने के लिये सौधर्म इन्द्र, हजार नेत्र करता ही है न! तो फिर जिनके अपरिमित उपकार हैं – ऐसे गुरुदेवश्री की स्तुति-महिमा-गुणगान -अभिवादन-सम्मान करते-करते वही की वही बात बारम्बार कही गयी हो तो उसमें आश्चर्य नहीं है। तो प्रस्तुत है..............

कहान क्रमबद्ध कथा

भाग–2

सत् की प्रभावना

आज से 2565 वर्ष पूर्व इस भारतभूमि की पावन धरा पर, अन्तिम तीर्थङ्कर शासननायक श्री महावीर भगवान दिव्यध्वनि द्वारा अमृत की वर्षा करते थे। तीस वर्ष तक वह मङ्गलमय प्रपात बरसाकर पञ्चम काल शुरु होने में तीन वर्ष और साढ़े आठ महीने शेष थे, तब प्रभु जी पावापुरी से निर्वाणपद को प्राप्त हुए। तत्पश्चात् 62 वर्ष में, तीन केवली भगवन्त हुए — 1. श्री गौतमस्वामी, 2. श्री सुधर्मास्वामी, और 3. श्री जम्बूस्वामी — जिन्होंने दिव्यध्वनि का पवित्र प्रवाह अखण्डरूप से प्रवाहित रखा। तत्पश्चात् 100 वर्ष में, बारह अङ्ग के ज्ञाता पाँच श्रुतकेवली हुए, जिनमें अन्तिम थे श्री भद्रबाहुस्वामी। पश्चात् इसी परिपाटी में अङ्ग–पूर्व के ज्ञाता बहुत आचार्य हुए, जिन्होंने ज्ञानगङ्गा प्रवाहित रखी।

आगमज्ञानदाता श्री धरसेनाचार्य; षट्खण्डागम रचयिता श्री पुष्पदन्त और भूतबलि आचार्य; अध्यात्मश्रुत रचयिता श्री कुन्दकुन्दाचार्य; जिनशासन के मूल रहस्यों का उद्घाटन करनेवाली टीका रचनेवाले श्री अमृतचन्द्राचार्य; भक्तिमय भक्तामर के रचयिता श्री मानतुङ्गाचार्य; परमात्मस्वरूप का प्रकाश करनेवाले श्री योगीन्द्रदेव; जिनधर्म प्रभावक श्री समन्तभद्राचार्य, श्री अकलंकदेव तथा अध्यात्म का मीठा झरना बहानेवाले श्री पद्मप्रभमलधारिदेव इत्यादि–इत्यादि आकाश के आधार स्तम्भ समान वीतरागी आचार्यों, मुनिवरों ने तीर्थङ्करों के विरह में शास्त्रों की रचना करके, सनातन सत्यमार्ग को टिका कर रखा और आगे बढ़ाया।

इस शृङ्खला के एक भाग – कड़ीरूप आत्म–आराधक ज्ञानी धर्मात्मा हुए, जिन्होंने आत्मार्थपोषक बोध द्वारा मोक्षातुर आत्मार्थियों को अञ्जुली भर–भर ज्ञानामृत पिलाकर

उनके भव-संताप को शान्त किया। जिनमें मुख्य हैं — आचार्यकल्प श्री टोडरमलजी; अध्यात्मरसिक श्री राजमलजी पाण्डे; अध्यात्मकवि श्री बनारसीदासजी; अनुभव का प्रकाश करनेवाले श्री दीपचन्दजी कासलीवाल; शास्त्रों के भावों को प्रचलित भाषा में सरलता से समझानेवाले श्री जयचन्दजी छाबड़ा; गागर में सागर भरनेवाले श्री दौलतरामजी; तथा गृहस्थदशा में रहकर शीघ्र मार्गसाधक श्रीमद् राजचन्द्रजी इत्यादि।

इन सभी ने निज शुद्धात्मा की कल्याणकारी उपासना-साधना की और भव्य जीवों को भी उसी मार्ग की ओर लाये। स्वयं भवसमुद्र से तिरे और भक्तों को भी तिरने का उपाय बतलाया। स्वयं मोक्षमार्ग में विचरे और जिज्ञासुओं के भी पथ-प्रदर्शक बने।..... परन्तु तत्पश्चात् इस भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में, इस हुण्डावसर्पिणी पञ्चम काल में, किसके पावन पदचिह्नों पर मुक्ति का कारवाँ चल रहा है? किस सन्त के आत्मनाद सुनकर आत्मार्थी मुमुक्षु मोहनिद्रा में से जाग उठे हैं? द्रव्यानुयोग के स्वाध्याय द्वारा किसने समीचीन दृष्टि प्राप्त करायी है? पामर जीवों के अन्तर में प्रभुता का-परमात्मपने का विश्वास प्रगट करानेवाले कौन हैं? इन लाखों मोक्षगामी जीवों के सरदार-नेता-गुरु कौन हैं?...... कौन हैं?..... कौन हैं..... ?

कोना पगले पगले चाले मुक्तिनी वणझार,
कोना सादे जागे सर्वे आत्मार्थी नरनार;
अपार मुक्तिगामी जीवोनो तुं साचो सरदार,
ओ कहानगुरु! तुझ चरणकमलमां वंदन बारंबार.....1

स्वतंत्रतानो शंख फूंकी ने कर्यो असत् संहार,
साचो मुक्तिपंथ बतावी दूर कर्यों अंधकार;
केवली प्रभुना विरह भुलावी वर्तावी श्रुतधार,
जैनधर्म जयनाद गजावी वर्ताव्यो जयकार.......2

अनंत भवना अम दु:खियानो तुं छो तारणहार,
पामर अमने प्रभुता आपी दीघो आतमसार;
सत्य अहिंसक पवित्रतानुं आत्मजीवन जीवनार,
कहानगुरुनो जोटो जगमां क्यांय नहीं जडनार..... 3

जिन्होंने विश्व के समस्त भावों की स्वतन्त्रता का जयघोष करता हुआ शंख फूँक कर मिथ्यात्व को परास्त किया है; दुःखमुक्ति का मार्ग / उपाय बताकर भव्यों के अज्ञान अन्धकार का अभाव किया है; जहाँ सत् का दुष्काल है ऐसे इस भरतक्षेत्र में वर्तमान काल में केवली प्रभु का विरह भुलाकर श्रुतज्ञानरूपी मेघ की वर्षा बरसाकर, जैनधर्म की जय -जयकार प्रवर्तमान की है; जिनकी त्रिकाल अटल वीतरागतापोषक वाणी, सुपात्र जीवों के अन्तर को स्पर्श कर, ज्ञायकदेव का मङ्गल द्वार खोलती है और जो प्रतिकूलताओं से डरे - डिगे नहीं तथा अनुकूलताओं में ललचाये नहीं — ऐसे सिंहसमान पुरुषार्थी; कमलसमान अलिप्त; सूर्यसमान तेजस्वी; चन्द्रसमान शीतल; सागरसमान गम्भीर तथा बालकसमान निर्दोष, अध्यात्मयुगस्त्रष्टा, शुद्धात्मरसलीन, स्वानुभवविभूषित, सन्त धर्मात्मा **पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी..... कानजीस्वामी..... कानजीस्वामी.....!**

भव्य जीवों के भयङ्कर भावमरण का अभाव करने को अकषायी करुणा करके, विपुलाचल पर्वत पर त्रिलोकीनाथ श्री महावीर प्रभु ने अध्यात्मरस भरपूर सरिता बहायी थी। उस पावन अध्यात्मरस को आचार्य शिरोमणी श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने समयसारादि परम मङ्गलकारी परमागमों में संग्रहित किया है। इस संजीवनी समान चैतन्यरस का पान, चैतन्यरस के अखण्ड साधक, परमोपकारी, पूज्य सद्गुरुदेवश्री ने स्वयं करके, इस शताब्दी में सुख की साधना के कल्याणमय पंथ का पुनः उद्योत किया है।

आत्मवैज्ञानिक गुरुराज ने आगम, युक्ति और अनुभव के द्वारा वस्तुस्वरूप को सिद्ध करके, क्रियाकाण्ड में फँसे हुए और सम्प्रदाय की कैद में जकड़े हुए, वीतराग सर्वज्ञदेव प्रणीत जैनधर्म को मुक्त किया है। जिसका माप बाहर से नहीं आ सकता ऐसे अनुपम श्रुतधारी पूज्य गुरुदेवश्री ने अपनी साधनामय उज्ज्वल ज्ञानधारा द्वारा निश्चय -व्यवहार के सुमेलवाले द्रव्यदृष्टि प्रधान, ज्ञान-वैराग्य झरते अद्भुत प्रवचन प्रदान किये हैं। अनेकानेक शास्त्रों के, आचार्य-ज्ञानियों के मूल आशय को / हार्द को खोलनेवाले ये तलस्पर्शी व्याख्यान प्रदान करके, स्वानुभूतिमय यथार्थ मोक्षमार्ग का स्वरूप समझाया है और मुमुक्षु समाज पर वास्तव में वचन से अगोचर, अलौकिक, अनुपम, असाधारण उपकार किया है।

आपश्री नये पंथ के स्थापक नहीं थे, परन्तु वीतरागतत्त्व के प्रकाशक-प्रसारक थे। गुरुवर ने चक्रवर्ती की भाँति अखण्ड मार्ग प्रभावना की और सत् तत्त्व का निरूपण किया, जिसे लाखों अभ्यासी-विचारशील जीवों ने प्रमोद से मान्य किया। निःस्पृह और अन्तर्मुखवृत्ति के धारक गुरुराज की वाणी, श्रोताओं को जकड़ कर रखती है और सचोट प्रभाव डालती है। आपश्री की एक अनुपमता यह है कि आपश्री ने जो अनुभव किया है, वही कहा है; कृत्रिमता से कुछ नहीं कहा। इस पवित्र भारतभूमि में अभी तत्त्वज्ञान की जो बाढ़ आयी है, सच्ची समझ की लहर उछल रही है, उसका सम्पूर्ण श्रेय आपश्री को ही है। आपश्री की स्वानुभवरसभरी कल्याणमयी प्रवचन-गङ्गा में स्नान करके मोक्षार्थी जीव, पावन बनते हैं और पवित्र साधनापथ में प्रयाण करते हैं।

चैतन्यसूर्य कहान गुरुदेव की मोहतमनाशक अनुपम वाणी का समस्त भक्तजनों पर महान उपकार है। असाधारण अनन्त उपकारी गुरुदेवश्री और आपश्री की लोकोत्तर अनुभव वाणी की महिमा क्या करना? किस प्रकार व्यक्त करना? तत्त्वरसिक जिज्ञासु जीव, शुद्धात्मतत्त्वस्पर्शी, परमशान्तरसमयी, स्याद्वादसुगन्ध से महकती, पुरुषार्थरंग से रंगी हुई और चैतन्य के मधुर शब्दगान से गूँजती अमृतमयी गुरुवाणी से आत्मार्थ को प्रगट करके, पुष्ट करके, साधना की सच्ची दिशा प्राप्त करके, उपासनामार्ग की आराधना करते थे, करते हैं और करते रहेंगे।

जो मोक्षमार्ग में स्वयं विचरे हैं और दिव्यश्रुतधारा द्वारा हम जैसे पामर जीवों को मोक्षमार्ग की प्राप्ति का उपाय बतलाया है — ऐसे हे मोक्षमार्गपथिक गुरुदेव! आपश्री की उत्तमवाणी में सम्यग्दर्शन का माहात्म्य निरन्तर बरसता है। आपश्री की यह अध्यात्मवाणी सुनने का अमूल्य लाभ आपश्री की कृपा से हमें मिल रहा है, वह हमारा परम.... परम सद्भाग्य है; आपश्री ही हमारे जीवनशिल्पी हैं और शाश्वत हित के मार्ग की ओर ले जानेवाले हैं।

आपश्री, सांसारिक विडम्बनाओं, प्रपञ्चों और मायाजाल से भववन में अटकते -भटकते-उलझते हुए जीवों के पथ-प्रदर्शक बनकर तथा ज्ञान-वैराग्य का पाथेय बँधाकर, पुरुषार्थ के सत्मार्ग में प्रयाण करने की प्रेरणा प्रदान करनेवाले हो। आपश्री जैसे महापुरुष

का हमें योग प्राप्त हुआ, वह हमारा महाभाग्य है; आपश्री की तत्त्व–भरपूर वाणी सुनने को मिली, वह हमारा महा–महाभाग्य है और उस वाणी में से जिसने तत्त्व ग्रहण किया, वह तो महा–महासौभाग्यशाली है। आपश्री ने सत् के नगाड़े बजाकर, अन्तर हृदय के भावों को खोला, वह सर्वोत्कृष्ट उपकार है। आत्मार्थी जीव, आपश्री के उन अनुभवरस भीगे भावों को पहचान लेते हैं।

आपश्री फरमाते हो कि विश्व के समस्त ही पदार्थ — चाहे वे जड़ हों या चेतन –स्वयंसिद्ध हैं और अनन्त शक्ति से पूर्ण हैं। वे एक–दूसरे से अत्यन्त भिन्नरूप से अपनी स्वरूपसीमा में ही रहते हैं। पदार्थ, रूपी हो या अरूपी, एक–दूसरे को परस्पर स्पर्श नहीं करते होने से परिपूर्ण शुद्ध हैं। इसलिए चैतन्यपदार्थ आत्मा भी स्वयंसिद्ध, निरपेक्ष, शुद्ध है। वह अपने में परिपूर्ण, पर से अत्यन्त भिन्न, एक स्वतन्त्र सत् है; क्योंकि जो सत् होता है, वह स्वतन्त्र, स्वाधीन, अहेतुक – निरपेक्ष ही होता है। पर से भिन्नपना, स्व से एकपना और अपना पूर्णपना वह सत् का लक्षण है। नहीं तो वह सत् क्यों हो ? जैनदर्शन का यह एक मौलिक तथ्य आपने स्वानुभवपूर्वक प्रसिद्ध किया है।

आपश्री समझाते हो कि प्रत्येक का आत्मतत्त्व सौ टंच सोने जैसा परिपूर्ण शुद्ध होने पर भी, अनादि काल से जीवों को अज्ञान और अविश्वास रहा है। जिससे स्वयं को शुद्ध और परिपूर्ण माना ही नहीं और पड़ोसी–भिन्न ऐसे देह–रागादि की सत्ता में ही मुग्ध–मोहित बनकर अपनापन माना है, अहङ्कार किया है। रागादिभावों में 'मैं पने' की यह वृत्ति, महा अपराध है; क्योंकि उसमें विश्व के अनन्त अन्य भावों को अपने अधिकार में लेने की बुद्धि है, जिसके दण्डरूप निगोद फलित होता है। ऐसा भयङ्कर अज्ञान किसलिए है ? इसका कारण अपने से दूर अन्यत्र कहीं ढूँढ़ना महाभूल है। यह अज्ञानपरिणाम, आत्मा ने स्वयं ही किया है और स्वयं से ही अज्ञानी बन रहा है।

भिन्न सत्तावाली वस्तुओं में कर्ता–कर्मपना कभी भी नहीं होता। हाँ, कथन में अन्य की सापेक्षता बतलायी जाती है, तथापि वस्तुएँ तो अत्यन्त निरपेक्ष ही हैं। यदि कोई अन्य — परमात्मा या कर्म आदि — उसे अज्ञानी बनावे तो वह किसी का गुलाम—किसी के हाथ की कठपुतली—ही बन जाएगा और इससे पुरुषार्थ करके अज्ञान मिटाने का उसका अधिकार ही छिन जायेगा।

अनादि से ऐसे अज्ञान के कारण चतुर्गति परिभ्रमण के प्रवाह में बहते जीव को जब तत्त्व समझने की छटपटी-जिज्ञासा जगती है, तब स्वानुभूतिप्राप्त सत्पुरुष का सुयोग महासद्भाग्य से प्राप्त होता है। विचारवन्त जिज्ञासु, उनकी अज्ञाननाशक मङ्गलमय वाणी सुनता है; ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा की महिमा हृदय में जागृत होती है और महापुरुषार्थ द्वारा चैतन्यधाम निज परमात्मा का अवलम्बन लेकर, सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्राप्त करता है।

हे स्वर्णपुरी के सन्त! आपश्री ने भवपरिभ्रमण के — जन्म-मरण के — दुःख का अन्त लानेवाली वीतरागवाणी बरसायी तथा 'द्रव्यदृष्टि वह सम्यग्दृष्टि;' 'दर्शनशुद्धि से ही आत्मसिद्धि' — इत्यादि आत्महितकारी उत्तम सूत्र प्रदान करके, हमें भवसागर से उभारा है और सम्यग्दर्शन-ज्ञानमय आराधनापंथ की ओर लगाया है। सम्यग्दर्शन के सूक्ष्म और अद्भुत स्वरूप का ख्याल इस युग में किसी को स्वप्न में भी नहीं था; ऐसे समय में आपश्री ने सम्यग्दर्शन का स्वरूप, उसका आधाररूप विषय और उसकी प्राप्ति का उपाय बतलाकर, इस युग में एक सानन्द आश्चर्य सृजित किया है। आपश्री, सम्यग्दर्शन और उसके विषय की महिमा उल्लसित भाव से गाते-गाते कभी थकते नहीं थे। स्वानुभवमुद्रित अध्यात्मविद्या के प्रदाता हे गुरुदेव! वास्तव में आपश्री इस काल में, इस क्षेत्र में, सम्यग्दर्शन के आविष्कर्ता हो और हम भक्तों को आपश्री का यह सबसे महान-सर्वश्रेष्ठ वरदान है।

जिस काल में जड़ क्रियाकाण्ड, दाम्भिक धर्माचरण और विपरीत अभिप्राय ने समाज को चारों ओर से घेर लिया था तथा धर्म की मूलभावना और अध्यात्म का अन्तिम ध्येय चूक गये थे, उस काल में स्वानुभूतिमय सत्धर्म को पुनः प्रकाशित करनेवाले पूज्य गुरुदेवश्री ने मोक्षमार्ग के अङ्गभूत सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की तरह, सम्यक्चारित्र का भी यथार्थ, विशद् स्वरूप प्रस्तुत किया है। आपश्री स्वयं निजस्वरूप के आचरणरूप चारित्र के महान उपासक थे और सकलचारित्रवन्त दिगम्बर सन्तों की अन्तर्बाह्य परिणति का भावभीना वैराग्यमय वर्णन करते अघाते नहीं थे। आपश्री के अन्तःकरण में से हजारों बार ऐसे उद्गार सहज निकलते थे कि वनविहारी वीतरागी सन्तों के दर्शन कब हों? 'कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जब?' प्रचुर स्वसंवेदनमय दशा का अपूर्व अवसर कब आयेगा? महासमर्थ श्री कुन्दकुन्दाचार्य, श्री अमृतचन्द्राचार्यादि अनेक भावलिङ्गी सन्तों के चरणकमल

की भक्ति से आपश्री का चित्त सदा भीगा रहता था। उग्र आनन्द में झूलते इन मुनिवरों के हृदयमर्म को आपश्री ही वास्तव में पहचान सके हैं।

जिस समय चारित्र, कष्टदायक और दुःखी होकर प्राप्त करनेयोग्य माना जाता था तथा शरीर आदि की कोरी क्रिया में और शुभराग की काली कोठरी में चारित्र कैद हो गया था, तब चारित्र के इन महान उपासक ने सत्य का शंखनाद फूँका कि चारित्र न तो केवल नग्नत्व में है या महाव्रत के पालन में; वह तो स्वरूप की लीनता-एकाग्रता-रमणता -स्थिरतारूप आनन्दमय परिणति है। इस प्रकार चारित्र का वास्तविक स्वरूप समझाकर, उपसर्ग-परीषह सहन करना, इन्द्रियों का दमन करना, भयङ्कर काय-क्लेश करना इत्यादि में चारित्र जैसी आह्लादक परिणति को समायोजित करने के समस्त मिथ्या प्रयत्नों को, इस सन्त ने विफल बनाया है।

श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र के साथ-साथ जैनदर्शन के मूलभूत सिद्धान्तों का भी विवेचन आपश्री की मङ्गलकारी वाणी में हुआ है। आपश्री ने निश्चय-व्यवहार; उपादान-निमित्त; क्रमबद्धपर्याय; अनेकान्त-स्याद्वाद आदि विषयों का स्वानुभवपूर्वक अत्यन्त प्रमाणिक, आगमसम्मत और तर्कपूर्ण सांगोपांग प्रतिपादन किया है, जो विद्वानों को आश्चर्यचकित करता है। आत्मानुभूति के लिए आवश्यक ऐसा जैनदर्शन का कोई भी सिद्धान्त अस्पर्शित -बाकी नहीं रहा कि जिसका रहस्य न समझाया हो; जिनसिद्धान्तों का ऐसा स्पष्ट और विस्तृत विवेचन सैंकड़ों वर्षों में नहीं हुआ।

चैतन्यरत्न के पारखी जवेरी, स्वतन्त्रता की घोषणा करनेवाले सिंहकेसरी, परमार्थमार्ग के पथिक और कल्याणमार्ग के प्रदर्शक गुरुदेवश्री को 'भेदज्ञान का अवतार' कहने में अतिश्योक्ति नहीं है। भक्तों के जीवनशिल्पी की आध्यात्मिक ऊँचाई मधुर संगीत की तरह अवर्णनीय है। इन ज्ञानतेज के प्रभावशाली महान व्यक्तित्व से वर्तमान में जो प्रभाव पड़ा है और प्रकाश हुआ है, वह अनुपम है। आपश्री के प्रवचनों की फुलझड़ी जहाँ खिरने लगती है, वहाँ शान्ति का साम्राज्य छा जाता है और वस्तुस्वरूप का सिंहनाद प्रवाहित होने लगता है। आहा...! क्या स्वभाव के साथ सम्बन्ध करानेवाली यह कथा और उसमें आयी हुई पर एवं विभाव का सम्बन्ध तोड़ने की विधि! जीवों को एक वैज्ञानिकदृष्टि मिलती है,

जो ज्ञाननेत्र खोल डालती है और भ्रान्ति / विपरीतमान्यता कपूर की तरह उड़ जाती है तथा हृदय पूर्णरूप से स्वीकार करता है कि वस्तुस्वरूप यही है। गुरुवर की वाणीवर्षा से सरल जीव, आत्महित के इच्छुक बनते हैं; पात्र जीव, आराधना करने को तत्पर होते हैं और पुरुषार्थी जीव, आत्मरुचि जगाकर अनुभव करने को उद्यमी होते हैं।

45 वर्ष के दीर्घ काल तक अध्यात्म की शीतल-शान्त वर्षा बरसाकर, आपश्री ने परमात्मा का विरह भूलाकर, चौथा काल प्रवर्तित किया है; सन्तों का अन्तर रहस्य खोलकर मिथ्यात्व का मूल हिला डाला है और पाखण्ड को दूर किया है। आबाल-गोपाल को आत्मतत्त्व की धुन लगानेवाले गुरुदेवश्री की क्षतिरहित पूर्ण वाणी की यह अजायबी -विशिष्टता है कि वर्षों के धारावाही प्रवचनों में, अज्ञानी की तरह, कहीं पूर्वापर विरोध या राग का पोषण नहीं है। आपश्री के व्याख्यान आज भी आपश्री की निर्मल और तीक्ष्ण सम्यग्प्रज्ञा को प्रसिद्ध करते हैं और शास्त्रपाठियों के गर्व को हर लेते हैं। शाश्वत शान्ति -सुख प्राप्त करने की विधि बतलाते हुए आपश्री के प्रवचन, हजारों युगों तक शान्तिपिपासु / जिज्ञासु जीवों को सत्यमार्ग बतलाते रहेंगे। भवाताप से त्रस्त जीवों को इस प्रवचन - अमृत से सुख की राह तथा राहत मिली हैं।

गुरुदेवश्री ने लगभग अर्द्ध शताब्दी तक आध्यात्मिक सफर में प्रवचनधारा बहाकर, आत्मवैभव-आत्मलक्ष्मी का खजाना खोल दिया और कहा 'लूटो रे जगत के जीवों लूटो!' अनेक पराक्रमी पुरुषार्थी जीव, वह ज्ञानभण्डार प्राप्त कर निहाल हुए; हजारों आत्मार्थियों ने शक्ति अनुसार ज्ञानपाथेय बाँधा और लाखों भाविक जीवों ने इस अलौकिक सन्त के चरण-कमल में मस्तक झुकाकर, कृपादृष्टि प्राप्त कर, धन्य हुए। आपश्री की सिंहध्वनि ने जैनसमाज को झिंझोरकर जागृत किया है और तत्त्वविचार के मार्ग की ओर लगाया है। वह मङ्गलध्वनि आज, कल और पंचम काल के अन्त तक, भव्यजनों को आत्महित का पंथ बताती रहेगी — इसमें कोई सन्देह नहीं है।

इन ज्ञानानुभूतिप्राप्त महापुरुष का आन्तरिक जीवन समझना वह ब्रह्माण्ड की थाह लेने से भी अधिक कठिन है, क्योंकि सत्पुरुषों का जीवन, बाह्य भावों से रहित, आत्मसाधनामय होता है। वे सार्थक जीवन जीकर आत्मश्रेय करने के साथ-साथ, पात्र

जीवों को आराधना के लिये आवश्यक मार्गदर्शन भी देते हैं। ज्ञान–वैराग्यमय जीवन जीनेवाले इन महात्मा का अन्तरङ्ग जीवन जैसा उज्ज्वल था, वैसा बाह्य जीवन भी निर्मल –पवित्र था। सम्यक्श्रद्धा–ज्ञानरूप दिव्यपरिणति के साथ–साथ, बाहर में अत्यन्त नियमित और संयमित दिनचर्या; सादा और अल्प आहार; आगम अनुरूप सत्यवाणी और करुणारस भरपूर सुकोमल हृदय, आपश्री के विरल–अद्भुत व्यक्तित्व के अविनाभावी अङ्ग थे। वास्तव में तो निज शुद्धात्मा का अविराम तथा बहुमान भरा चिन्तन–मनन और उसे पोषण देता हुआ स्वाध्याय ही आपश्री का जीवन था। आपश्री के साधनामय जीवन के ऐसे प्रत्येक अङ्ग–अंश–कार्य सबके लिए सदा अनुकरणीय हैं, अनुसरणीय हैं। सचमुच ही आपश्री इस क्षेत्र के, इस काल के, एक अमल आभूषण थे कि जिन्हें प्राप्त कर यह युग गौरवान्वित हुआ था।

आपश्री के चरणकमल से पृथ्वी पावन हुई थी, दर्शन से मुमुक्षु मुदित बने थे, भक्ति से भक्त भाग्यवन्त हुए थे और वाणी से श्रोता शान्ति का अनुभव करते थे। मोहनिद्रा में सोये हुए जीवों को 'तू भगवान आत्मा है' — ऐसी मीठी, मधुर बाँसुरी बजाकर जगानेवाले, अध्यात्म भागीरथी को इस धरा पर उतारकर मुमुक्षु हृदय तक पहुँचानेवाले, जीवनभर ज्ञायकदेव के गीत गानेवाले और मोक्षमार्ग में केलि करनेवाले भेदविज्ञानी गुरुदेवश्री का व्यक्तित्व ही अनोखा था। ज्ञानपिपासु जीवों ने सम्मान से और क्रियाकाण्डी जीवों ने टीका से — दोनों प्रकार से, आपश्री का नाम सर्वत्र प्रचलित किया है। इस बीसवीं शताब्दी में समस्त जैन समाज में बहुचर्चित व्यक्ति कौन? यदि ऐसा पूछा जाये तो पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का नाम सबसे पहले आयेगा।

अनेक जिनमन्दिरों का निर्माण, अध्यात्म और भक्ति भरपूर तीर्थयात्राएँ तथा विपुल मात्रा में जिनवाणी का प्रकाशन इत्यादि द्वारा वीतरागतामय जैनधर्म की महान प्रभावना जिनके निमित्त से हुई है – ऐसे अध्यात्मक्रान्ति के सूत्रधार पूज्य गुरुदेवश्री ने जैनशासन में एक अजोड़ प्रकरण जोड़ा है। आपश्री ऐसी क्रान्ति के नायक थे कि जिसका जन्म राग–द्वेष में से नहीं, परन्तु ज्ञान–वैराग्य में से हुआ था और जिसमें आकुलता–कषाय नहीं थी, परन्तु अनाकुलतामय शान्ति का वेदन था। आपश्री ने गहन तात्त्विक विचारों द्वारा जो

शान्त आध्यात्मिकक्रान्ति की थी – अध्यात्म का शंख बजाकर आन्दोलन जगाया था – वह जैनधर्म के इतिहास में बेमिसाल है; बीसवीं शताब्दी का महा चमत्कार है।

शास्त्रों के पृष्ठों में रहे हुए तत्त्व को जीवन में उतारकर मार्ग की उन्नति और वृद्धि की, यह कार्य जैनधर्म के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा जायेगा। लाखों जीवों ने इस धर्मक्रान्ति को पहचानकर उसका अनुमोदन किया था, समर्थन दिया था और उसमें जुड़कर आपश्री के अनुयायी बने थे। इस प्रकार निःसन्देह आपश्री अनोखे युगपुरुष थे और जैनदर्शन का वह अनन्य स्वर्णयुग–काल था। इस युगपुरुष का मुक्तिसन्देश युग–युग तक जीवों का कल्याण करेगा, इसमें दो मत नहीं हैं।

सहजानन्द की पवित्र अनुभूति करनेवाले गुरुराज एक अलौकिक, अनुपम, दिव्य महापुरुष थे। आपश्री से वर्तमान युग तो प्रभावित हुआ ही है अर्थात् आपश्री के ज्ञानप्रकाश का प्रभाव आज तो विद्यमान है ही, परन्तु युगों तक भी वह मार्ग को प्रकाशित करेगा। आपश्री द्वारा प्रतिपादित सत्य आज और भविष्य में भी सुखवाँछक जीवों को सुखपंथ बतलाया करेगा। ऐसे सन्त का अन्तर्बाह्य पवित्र जीवन, आत्मसाधना की महान प्रेरणा दे इसमें आश्चर्य नहीं। तो, मुमुक्षुओं के श्रद्धा–भक्तिपुष्प को निस्पृह–अलिप्तभाव से स्वीकार करनेवाले पूज्य गुरुदेवश्री की जीवनयात्रा — **कहान क्रमबद्ध कथा —** आत्मसाधक जीवों को सत् और सन्त — दोनों के प्रति परम बहुमान, श्रद्धा, भक्ति जगाकर आत्मार्थता का पोषण करो — यह भावना...... अभ्यर्थना..... प्रार्थना...... ।

कहान क्रमबद्ध कथा, भाग–एक में हमने देखा कि जिनका जन्म आत्महित के लिये ही था — ऐसे इस महात्मा ने सौराष्ट्र के उमराला गाँव में विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज को पिता मोतीचन्दभाई के आँगन में, माता उजमबा की कूख से, अवतार लेकर सौराष्ट्रभूमि को शृङ्गारित किया। जन्म समय में प्रकृति द्वारा किए हुए प्रकाश ने आभास दे ही दिया था कि यह बाल महात्मा, भारत भर में ज्ञानप्रकाश करेगा।

वैशाख सुद बीजने वार, उजम्बा घेर कहान पधार्या;
गर्ज्या दुंदुभिना नाद, उमराला गामे कहान पधार्या.....
न माय आनंद कुटुंबीजन हैये, भाग्यवान मोतीचंदभाई..... उजम्बा.....
कहानकुंवरनो जन्म ज थातां, गंधोदक वृष्टि थाय..... उमराला.....
कहानकुंवरनो जन्म ज थातां, मनवांछित कुदरत थाय.... उजम्बा.....
कहान जनमतां भरतखंड डोल्युं, जनम्या अनुपम कहान..... उमराला.....
मोतीचंदभाई घेर नृत्य आज थाय छे, घेर घेर मंगल थाय.... उजम्बा.....
देवदेवेन्द्रो मंगल आज गाय छे, भरतखंडमां डंका थाय.... उमराला.....

आज मंगल बधाई वागती रे, कहान कुंवर जन्म्या अहो आज,
आज गुरुजी पधार्या भरतमां रे....
धन्य धन्य उमराला गामने रे, धन्य धन्य उजमबा मात... आज गुरुजी....
धन्य मात पिता कुल जातने रे, जेने आंगण जन्म्या बाल कहान.... आज गुरुजी....
आज तेज थया जन्मधाममां रे, एना भरतखंडमां प्रकाश.... आज गुरुजी....
आज आनंद मंगल घेर घेर थया रे, ठेर ठेर अहो लीला लहेर... आज गुरुजी....

आपश्री ने सत्य से बहुत दूर जन्म लेकर भी स्वयंबुद्ध की तरह, सत्य की शोध की और प्रचण्ड पुरुषार्थ से प्राप्ति भी की। अरे! पूर्व जन्म में प्राप्त किये हुए संस्काररूपी पूँजी लेकर जन्मे इन वीतरागमार्ग के ज्योतिर्धर ने जड़क्रिया में फँसे हुए जैनजगत को ज्ञानक्रियारूप यथार्थ राह समझाकर, जागृत किया और जैनविश्व को मूल में से ही बदल डाला।

होनहार धर्मात्मा को बालपन से ही सत् की छटपटी-जिज्ञासा थी और धर्म की ओर झुकाव था। स्वयं तेजस्वी बुद्धिवाले होने पर भी, शान्त-स्थिर और विचारक थे तथा बाह्य विषयों के प्रति उपेक्षावृत्तिवाले वैरागी और सत्यनिष्ठ भी थे। बचपन से ही मुखमण्डल पर निडरता, निर्दोषता, निखालिसता, निस्पृहता, सरलता, कोमलता, गम्भीरता, उदासीनता, सौम्यता, धैर्यता तथा बुद्धि और वीर्य का तेज झलकते थे। जो आपश्री की असाधारण अलौकिकता को प्रसिद्ध करते थे। गहरी तीक्ष्ण दृष्टि, किसी भी प्रसङ्ग में उसके हृदय तक उतरकर निर्णय करने की आदत, विचक्षण निरीक्षण, तीव्र स्मरण शक्तिरूप बुद्धिमत्ता,

मधुर भाषीपना, उपेक्षा करने की वृत्ति, प्रमाणिकता इत्यादि अनेक असाधारण आदर्श गुण तो बाल्यकाल में ही खिल उठे थे। बालवय से ही एकान्तप्रियता उनकी चिन्तनशील प्रकृति की द्योतक थी।

बाल कुंवर कहान जुदा हता कोई, खेलताता ज्ञानकुंज मांही....
उजमबा घेर कहान पधार्या....
वीत्या वीत्या ते कांई बालकाल वीत्या, लागी धून आतमानी मांही,
उमराला गामे कहान पधार्या...
बाल कुंवर कहान ए लाडीला रे, मात पूरे कुंवरना कोड,
आज गुरुजी पधार्या, भरतमां रे...
प्रभु पारणेथी आत्मनाद गाजता रे, एनी मुद्रा अहो अद्‌भुत,
आज गुरुजी पधार्या, भरतमां रे...

तेरह वर्ष की उम्र तक जन्मधाम में रहे। उस दौरान लौकिक शिक्षण प्राप्त किया और जैनशाला में धार्मिक अभ्यास भी किया। कक्षा में प्रथम नम्बर रखनेवाले तेजस्वी विद्यार्थी थे, तथापि शाला के अभ्यास में सन्तोष नहीं हुआ और 'मैं जिसकी शोध में हूँ, वह यह नहीं' — ऐसी खटक निरन्तर रहती होने से सत् के वियोग में एक बार तो रो पड़े थे। दस वर्ष की उम्र में देखे हुए 'छप्पनिया दुष्काल' की करुण छाप—गहरा असर — मन पर ऐसा पड़ा कि पशुओं की वेदना देख न पाने से हृदय काँप उठा था। एक साधु की शान्त-गम्भीर चाल देखकर, वैरागी जीवन के प्रति चित्त आकर्षित हुआ था। इन्हीं वर्षों में सबसे बड़े भाई और माताश्री का वियोग हुआ था।

उमराला के बाद पालेज के नौ वर्ष के निवास के दौरान पिताजी के अवसान के बाद, पाँच वर्ष तक ईमानदारी से, तथापि ममतारहित उदासीनता से व्यापार किया। प्रमाणिकता से व्यापार करने से इज्जत-साख तो बढ़ी थी, परन्तु वैरागी युवा कानजी का चित्त व्यापार में या संसार के कार्य में नहीं लगा। मन, व्यापारमय या संसारमय नहीं हुआ, अन्दर में सन्तोष नहीं हुआ; क्योंकि जिसकी शोध थी, वह प्राप्त नहीं हुआ था। दुकान में कोई ग्राहक न हो तो दूसरे लोग कोई न कोई अन्य काम करने लगते, परन्तु कानजी तो

शास्त्र लेकर पढ़ने बैठ जाते; क्योंकि धर्म की ही लगन थी न! मुझे मेरा हित करना है, यही भावना पहले से थी न!!

संसार के चाहे जैसे चित्र-विचित्र प्रसङ्गों में भी, अपने ध्येय से किञ्चित् भी विचलित हुए बिना, उनका आत्मा ध्येय की प्राप्ति में ही प्रयत्नशील रहता था। अविनाशी सुख के महा मार्ग की सत्यशोध के प्रति झुकाव सदा रहता था। संसार के दुःख से बस हो और इस जीवन में भव का अन्त होकर शाश्वत हित हो — ऐसा अपूर्व अलौकिक कार्य कर लेना है - ऐसी भावना निरन्तर चलती थी। जिसके कारण साधुओं का संग और वैराग्य खूब रुचते थे। दुकान पर भी तीक्ष्ण बुद्धि तथा स्थिर चित्तवृत्तिपूर्वक वैराग्यप्रद पुस्तकें पढ़ते और ममता घटाने के लिए उपवास आदि भी करते थे। उनके शास्त्र अध्ययन-मनन-मन्थन आदिरूप धार्मिकरुचि-प्रवृत्ति, उदासीन जीवन, सज्जनता और सरल अन्तःकरण इत्यादि उत्तमता के प्रतीक समान गुण देखकर, सम्बन्धीजन 'भगत' के नाम से सम्बोधित करते थे।

न्याय के बिना बलजोरी से कोई भी बात स्वीकार कर लेना, यह युवा कानजी के स्वभाव में ही नहीं था। उनकी सत्यनिष्ठा की परीक्षा का और क्षमा-उदारता का प्रसङ्ग 'अफीम का झूठा केस' पालेज में बना था। प्रमाणिकता का प्रमाण देता हुआ प्रसङ्ग अर्थात् 'चोरी के माल' का प्रसङ्ग; उनके सरल अन्तःकरण और निर्दोषता का प्रसङ्ग अर्थात् 'व्यापारी भोजन करने आयेंगे' - ऐसा कहने का प्रसङ्ग; किसी को भी सहज-निर्दोषरूप से तथापि निडरता से सत्य कहने का प्रसङ्ग अर्थात् भागीदार को 'तुम तिर्यञ्च होओगे' यह कहने का प्रसङ्ग; मुम्बई स्टेशन में घटित अधिक वजन के टिकट का प्रसङ्ग उनकी नीतिमयता का प्रमाण है।

व्यापार के लिए बाहर गाँव जाना होता था, तब फुरसत के समय नाटक देखने जाते। उदीयमान युवावस्था में रग-रग में वैराग्य की लगन होने से, नाटक के वैराग्यमय दृश्य देखकर स्वयं वैराग्यरस से भीग जाते और संसार असार लगता। ऐसे ही एक प्रसङ्ग में पालेज में रामलीला देखते हुए, पूर्व के संस्कार प्रथम बार प्रस्फुटित हो उठे। जिससे वैराग्य के शान्तरस से सराबोर और उज्ज्वल भावीसूचक भव्य काव्य अन्तर स्फुरणा से

सहज रच गया : '**शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।**' धन्य यह वैराग्य-उदासीनता!!

अब तो वैराग्य के पूर को ढलान मिल गयी। वैराग्य का पलड़ा झुकने लगा। ज्ञान-व्यापार के अभिलाषी कानजी का चित्त जितना धर्मसाधना में लगता, उतना पैसे के व्यापार में या दुकान-घर-संसार में नहीं लगता था और धर्म-सत्शोध का अन्तर व्यापार उग्र होने लगा। वैराग्यरस से भीगे हुए / सराबोर कानजी ने रात्रि का आहार-पानी और अचार तो छोड़ा ही था; अब ब्रह्मचर्य के प्रेमी-शील के तेज से शोभित-कानजी ने, जवानी का रंग लगे उससे पहले, कुमारवय में ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया और 'मुझे मेरे आत्मा का करना है तथा सत् की शोध और आराधना निवृत्तियोग में ही सरलता से हो सकती है, इस कारण दीक्षा लेनी है' — ऐसे भाव जागृत हुए।

वैराग्य के रंग में रंगे हुए, जगत से अलिप्त-उदासीन और सत् के जिज्ञासु बाईस वर्षीय युवा कानजी ने सत् की शोध के लिए स्थानकवासी सम्प्रदाय के साधु होने का निश्चय किया और उसके लिए दुकान-व्यापार छोड़कर, दो वर्ष गुरु के पास अभ्यास भी किया। गारियाधार में किये हुए संस्कृत भाषा के अभ्यास से इस निर्णय पर पहुँचे कि मात्र भाषाज्ञान से शास्त्र के यथार्थ अर्थ समझ में नहीं आयेंगे। इसके लिए या तो गुरुगम अथवा गहरा अभ्यास चाहिए। दीक्षा लेने से पूर्व एक प्रश्न उत्पन्न हुआ था कि यदि साधु उपाश्रय का प्रयोग करे तो अनुमोदना कोटि टूटती है। इस सम्बन्ध में बहुत उथल-पुथल चली और गुरु से भी सन्तोषकारक उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। अन्ततः निर्णय लिया कि सत्य मुझे ही खोजना है।

एकान्त-निवृत्ति के प्रेमी कानजी ने कल्याण की भावना से उज्ज्वल गृहस्थ जीवन का उदासीनभाव से परित्याग किया और संवत् १९७० में २४ वें वर्ष में दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा प्रसङ्ग अत्यन्त धूमधाम से मनाया गया। इस प्रसङ्ग में बल्लभीपुर से खास राजदरबार की पोशाक लायी गयी थी और दीक्षा-यात्रा के समय हाथी पर दो व्यक्ति चँवर ढोलते थे। सामान्यरूप से धोती, आलपाक का कोट, जरी की टोपी और कंधे पर खेस, ये उनका पहनावा था। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फटी थी और कुछ गलत हो रहा

है — ऐसी शङ्का भी हुई थी। अन्त में जब दीक्षा के लिए बड़े भाई खुशालभाई से आज्ञा माँगी, तब अति प्रेम के कारण वे मूर्छित हो गये थे।

आपश्री ने दीक्षा के नियमानुसार घर-बार, कुटुम्ब-परिवार, धन-दौलत इत्यादि सब ही छोड़ा और साधु के बाह्य आचरण-चारित्र का पालन दृढ़ता से शुरु किया। ज्ञानी-ध्यानी कानजीस्वामी को साधुपने में शास्त्र-अभ्यास की ऐसी तो धुन रहती थी कि भोजन की भी उपेक्षा रहती। आत्महितार्थ संसार-त्यागी हुए और एकाग्रचित्त से शास्त्र स्वाध्याय करते हुए कानजीस्वामी को शारीरिक आवश्यकताओं के लिये समय व्यतीत करना पड़ता था वह भी असह्य होता था।

होनहार महात्मा को महामूल्यवान मानवजीवन में आत्महित कर लेना है, यही भावना रहती थी और भव का अन्त करना है, यही जीवन का एकमात्र स्पंदन था। स्वयं को ज्ञान-पिपासा और सत् की शोध होने से गुरु, गुरुभाई इत्यादि के साथ चर्चा-वार्ता होती थी। संवत् 1972 की चर्चा के समय गुरुभाई ने कहा : 'केवली ने देखा होगा वैसा होगा, हम क्या कर सकते हैं ?' जिनका जीवनमन्त्र पुरुषार्थ था, ऐसे स्वयं ने कहा : 'जिसके ज्ञान में केवली बैठे, उसके भव होते ही नहीं; उसके भव भगवान ने देखे ही नहीं।' तदुपरान्त पात्र रंगने का प्रसङ्ग भी बना था।

व्याख्यान के समय आपश्री की तर्कबद्ध, सिंहगर्जना समान वाणी सुनने से कायरों के कलेजे काँप उठते थे। आपश्री के यथार्थ तर्क के सामने कोई बोल नहीं सकता था। 'जीव स्वयं स्वतन्त्ररूप से राग करता है; कर्म से वह बिल्कुल नहीं होता'; 'सम्यग्दृष्टि को ही सच्ची मूर्तिपूजा होती है' इत्यादि अद्‌भुत न्याय, पूर्व के संस्कार से और स्वयं के अभ्यास से प्रसिद्ध किये थे। पुरुषार्थ के स्वामी कानजीस्वामी किसी भी बात के मूल में पहुँचते, परखते और फिर प्रसिद्ध करते।

आपश्री को भूतकाल की राजकुमारपने की अवस्था के तथा भावी के संकेतरूप स्वप्न आते थे। पूर्व में सुनी हुई तीर्थङ्कर की ॐकार ध्वनि के भनकार-नाद भी तीन बार आये थे। इस प्रकार साथ में लाये हुए संस्कार जागृत होते थे और साथ-साथ सनातन सत्य की अविरल शोध वृद्धिंगत होती थी। बहुत अधिक प्रश्न उठते, चर्चाएँ होतीं, परन्तु

समाधान नहीं मिलता था। स्थानकवासी के बत्तीस सूत्रों का अभ्यास – वाँचन भी हर वर्ष करते, परन्तु हल नहीं निकलता; क्योंकि आपश्री तर्क की कसौटी पर कसे बिना, विवेक बिना, मात्र अन्धश्रद्धा से कोई बात मानते नहीं थे।

आपश्री, ज्ञानपिपासासहित चारित्र का पालन कड़क रीति से करते थे। नियमानुसार आहार न मिले तो उपवास करते थे। आपश्री के आत्मार्थीपने की और उग्र चारित्र की सुहास जैनजगत में फैल गयी थी और लोग 'काठियावाड़ का कोहिनूर' के रूप में महिमा करते थे। विहार करते-करते जहाँ-जहाँ आपश्री पधारते, वहाँ-वहाँ लोगों के झुण्ड के झुण्ड दर्शन करने और प्रवचन सुनने उमड़ पड़ते। लोग आपश्री को प्रभुतुल्य मानते, पूजते और आपश्री भक्तों के हृदय सिंहासन पर विराजते थे, तथापि स्वयं तो इन सबसे निस्पृह थे। आपश्री किसी से कुछ नहीं माँगते, सहजरूप से मिले तो लेते – ऐसी वृत्ति थी, तो भी अभी तक सत् की शोध शान्त नहीं हुई थी, क्योंकि सत् की प्राप्ति नहीं हुई थी और सम्प्रदाय की बात के साथ स्वयं का मेल नहीं खाता था; इसलिए मनोमन्थन-खटक-उथल-पुथल रहा करती थी कि 'मैं जिसकी शोध में हूँ, वह सत् मिला नहीं और जो मिला है उसमें सत् है नहीं'। आपश्री के सत् जिज्ञासु हृदय को सम्प्रदाय की रूढ़िगत क्रिया में आत्मप्राप्ति के उपाय का अत्यन्त अभाव दिखता और वह सतत खटकता था; इस कारण स्वयं सत् का संशोधन सदा ही किया करते थे।

परन्तु जहाँ सच्ची भावना से शोध है, वहाँ प्राप्ति भी है। तीव्र छटपटी-सच्ची लगन हो तो सत् मिलता ही है। आपश्री के जीवन में वीरशासन के उद्धार का एक पवित्र प्रसङ्ग बना, जिसने आपश्री के जीवन तथा जीवनदिशा को बदल डाला। कुदरत के किसी धन्य पल में संवत् 1978 के फाल्गुन मास में दामनगर में महासमर्थ दिगम्बर आचार्य श्रीकुन्दकुन्दाचार्य विरचित श्री समयसारजी परमागम प्राप्त हुआ और हृदय पुकार उठा कि **'यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** जो चाहिए था, वह प्राप्त होने पर आपश्री का आत्मा अपूर्व आनन्द से नाच उठा। आपश्री ने घूँट भर-भरकर समयसार के भवनाशक अमृत का पान किया और ज्ञानबल द्वारा उसके अन्तरंग भावों को बाहर निकालकर, जीवन में उतारा। आपश्री की शाश्वत् शान्तिप्राप्ति की इच्छा अब शान्त हुई और शङ्काओं का

समाधान होने लगा। तत्पश्चात् तो धीरे-धीरे अन्य दिगम्बर शास्त्र मिलने से निर्णय हुआ कि सम्प्रदाय का मार्ग सत्य नहीं; सत्यमार्ग तो कोई अलग ही है। दिगम्बर सन्तों की स्वानुभूतिपूर्वक की तर्कबद्ध वाणी, तर्क की कसौटी में – न्याय की परीक्षा में – खरी उतरी; इस कारण अन्तर में परिवर्तन होने लगा और ज्ञानकला खिलने लगी। इस प्रकार समयसार ने आपश्री के जीवन में अद्‌भुत-अलौकिक-अचिन्त्य-अनुपम उपकार किया है।

कानजीस्वामी जगत के मान-सम्मान से अलिप्त आत्मलक्षी जीवन जीते थे। वस्तु स्वतन्त्रता के – स्वाधीनता के – सिद्धान्त निडरता से-निःशंकता से स्थापित करते और निर्भयरूप से सबको सत्य कहते। 'खोजी जीवे, वादी मरे', 'तत्त्वज्ञान पण्डिताई-भाषाज्ञान का विषय नहीं है', 'शब्दों से शास्त्रों का हल नहीं आयेगा', 'जिस भाव से तीर्थंकर प्रकृति बंधे वह धर्म नहीं', 'महाव्रत का भाव आस्रव है', 'जिसने कालद्रव्य नहीं माना, उसे स्वकालरूप निर्मलपरिणमन नहीं होता', 'रुचि का प्रारम्भ विपरीत या शिथिल हो तो कार्यसिद्धि कैसे हो?' 'प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र है', 'जड़-चेतन भिन्न हैं', 'शुभराग से वीतरागता की जाति पृथक् है', 'स्वानुभूति प्रगट करने योग्य है' — इत्यादि न्यायपूर्ण बातें ज्ञान में स्पष्ट हो गयी होने से, तत्त्वनिष्णात कानजीस्वामी उनका निःशंकपने से प्रतिपादन करते थे। लोगों के प्रश्न / तर्कों का न्यायसंगत दृष्टान्तसह सर्वांग समाधान करके, सत् का उद्‌घाटन करते और धार्मिक वातावरण का सृजन करते थे। लोग कहते — 'कानजीस्वामी के इर्दगिर्द केवलज्ञान चक्कर मारता है', 'कान पकड़ावे वह कानजीस्वामी'।

दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से सत्‌स्वरूप समझ में आने लगा और मूल / सच्चे मार्ग का ख्याल आ गया। संवत् 1987 से ऐसे विचार आने लगे कि अब परिवर्तन करना है। क्योंकि अन्तरंग में 'दिगम्बरधर्म सच्चा है' — ऐसी प्रतीति / श्रद्धा हो गयी थी और बाहर में वेष कोई दूसरा था यह खटकता था तथा स्पष्ट रीति से वस्तुस्वरूप नहीं कहा जा सकता था वह भी चुभता था। परिवर्तन के लिए योग्य स्थल की शोध में थोड़ा समय व्यतीत हुआ। अन्त में निर्णय किया कि संवत् 1990 के वर्ष का चातुर्मास राजकोट सदर में करके परिवर्तन करना। राजकोट के इस चातुर्मास दरम्यान भाद्रपद शुक्ल अष्टमी से शुरु करके परमागम श्री समयसारजी की गाथा 1 से 99 पर सभा में प्रवचन दिये। जिसमें

एक सूत्र दिया 'पूर्णता के लक्ष्य से शुरुआत ही, वास्तविक शुरुआत है'।

आपश्री ने 21 वर्ष सौराष्ट्र के गाँव-गाँव में विहार करके, वाणीरूपी गंगा द्वारा अनेक भव्यों को पावन किया। हजारों लोग आपश्री की मीठी-मधुर वाणी सुनने उमड़ पड़ते और मन्त्रमुग्ध होकर सुनते थे। आपश्री की वाणी का जादू सब पर छा जाता था। अडिग श्रद्धान, विशाल ज्ञान, दृढ़ चारित्र, मनहर वाणी इत्यादि से भक्तों के हृदय में आपश्री का स्थान अजोड़ था। ऐसा होने पर भी, बाह्य में सम्प्रदाय का वेश था — यह विषम परिस्थिति अब असह्य हो गयी थी। जिससे दीर्घ विचारयात्रा-मनोमन्थन करके वज्रसमान निश्चयपूर्वक घोषणा की कि 'मैं सम्प्रदाय में नहीं रहूँगा'। जिनका वीर्य प्रस्फुटित हो रहा हो उसे कौन रोक सकेगा? जो निरपेक्षरूप से मुक्त विचरते हों वह प्रतिबन्ध में कैसे रहे? पुरुषार्थी निःकाँक्ष पुरुष, किसी भी राग में बहकर सत् को गौण कैसे करे? स्वयं को दुनिया न स्वीकार करे तो भी सत्य मान्यता में टिके रहने की जिनकी दृढ़ता थी — ऐसे अध्यात्म शूरवीर, निःशंकता-निधान कानजीस्वामी ने न्याय के बल पर सम्पूर्ण जगत को चुनौती दी और सत् के लिए सबकुछ तिलांजली देने को तैयार हुए।

इस निर्णय से जैनजगत में बहुत खलबलाहट मच गयी, बहुत ऊहापोह हुई और आक्रोश का सृजन हुआ। निन्दा-विरोध की आँधी भी उठी, परन्तु स्वयं तो किसी भी लालच-प्रलोभन या डर बिना मेरु समान अडिग-अडोल-अविचल रहे। सत् की साधना के लिए अनुकूलता का राग और प्रतिकूलता का भय छूट गया। विरोधी के प्रति तो समभाव-करुणा आती थी। सिंहसमान निडर, सागरसमान गम्भीर, सहृदयी वीरपुरुष, ऐतिहासिक पराक्रम करने के लिए सोनगढ़ आये और निर्णय किया कि यहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक मकान में परिवर्तन करना है।

प्रचण्ड पुरुषार्थी, तत्त्व की मस्ती में मस्त, वीर-अध्यात्ममार्ग-उद्योतक पूज्य गुरुदेवश्री ने संवत् 1991 महावीर-जयन्ती के मंगल दिन, मंगलवार को दोपहर के 01.15 बजे, मस्त गजराज की तरह, जिसमें 21 वर्ष और चार महीने साधुरूप से रहे, उस सम्प्रदाय को छोड़ दिया। सामान्य जीव, गृह-कुटुम्ब, कंचन-कामिनी, पद-प्रतिष्ठा इत्यादि सब तो छोड़ सकते हैं-छोड़ते भी हैं, परन्तु मताग्रह के पाश से मुक्त नहीं हो पाते।

फलस्वरूप सत् प्राप्त नहीं होता, परन्तु पूज्य गुरुदेवश्री ने परिवर्तन करके सम्प्रदाय के आग्रह को–पक्ष को खुली चुनौती दी और विजयी भी हुए। तीव्र विरोध के समय भी आपश्री निश्चल रहे वह पुरुषार्थ का; और परिवर्तन के समय विरोध करने कोई प्रत्यक्ष नहीं आया वह पुण्य का सूचक है। यह घटना जैन इतिहास में सीमाचिह्नरूप बनी है। आपश्री ने भले ही साम्प्रदायिक रूढ़ि–मान्यताएँ छोड़ी, तथापि अखण्ड ब्रह्मचर्य, यम–नियम–संयम पालन, आहार–विहार शुद्धि, सादी–सात्विक जीवनशैली इत्यादि गुणों का दृढ़तापूर्वक पालन करते ही रहे।

सुवर्णपुरे आव्या एक संत, पधार्या भव्योने तारवा........

जेनी मुद्रामां शांतरस छवाणां, वाणीमां अमीरस धार.... पधार्या भव्यो ने तारवा....

अंतरपटमां गूढता भरी छे, कणवी महा मुश्केल.... पधार्या भव्योने तारवा....

अंतरहृदयमां करुणानो पिण्ड छे, दृढ़तानो नहीं पार.... पधार्या भव्योने तारवा....

शासनस्तम्भ पूज्य गुरुदेवश्री के परिवर्तन का प्रसंग अर्थात् जिनशासन की सातिशय प्रभावना का सूर्योदय! तत्त्वजिज्ञासुओं के लिए तो वह एक वरदानरूप ही सिद्ध हुआ है, क्योंकि उससे सत्शास्त्र शीघ्रता से प्रकाशित होने लगे तथा परमागमों का अभ्यास करने की होड़ शुरु हुई। इस प्रभावनाप्रकाश ने मात्र भारत में ही नहीं, विदेशों में भी उज्ज्वलता फैलायी है। यह कार्य वीतरागधर्म को पंचम काल के अन्त तक टिकाने में निमित्त बनेगा यह निःसन्देह है। आपश्री के इस अपूर्व कार्य ने वस्तुस्वरूप को सूर्यसमान प्रकाशित करके, अनेक जीवों के जीवन की दिशा को बदल दिया। इस अवसर पर आपश्री ने परिवर्तन करने का कारण दर्शाता हुआ एक निवेदन लिखकर दिया था।

परिवर्तन के पश्चात् अपूर्व उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री सोनगढ़ में क्या करते हैं — यह देखने को जिज्ञासा / कौतुहलवृत्ति से बहुत से जीव आते थे। स्वयं तो किसी भी पूर्वाग्रह बिना धर्मशास्त्रों के विशद् अभ्यास में और आत्मचिन्तन में मग्न रहते। यह देखकर तथा आपश्री की शान्त–शीतल वाणी सुनकर, सुपात्र जीव शान्त हो जाते थे। सम्प्रदाय के श्रेष्ठ गुरुपद की शान–शौकत को निस्पृह–निरपेक्षभाव से छोड़नेवाले पूज्य गुरुदेवश्री की सिंहवृत्ति और निर्मानता के समक्ष, जीव झुक जाते और भक्ति का प्रवाह फिर से जुड़ जाता।

अचिन्त्य ज्ञानधारी कहानगुरु के पवित्र जीवन और अध्यात्मवाणी की बात जैसे-जैसे फैलने लगी, वैसे-वैसे अधिक से अधिक जीवों को उनके प्रति पुनः बहुमान -भक्तिभाव जागृत हुआ। आत्मार्थियों के जीवन-आधार सोनगढ़ में बसे तो आत्मार्थी जीव भी वहाँ आकर्षित होकर आने लगे। अब, स्वर्णपुरी की ओर मुमुक्षुओं का प्रवाह बहने लगा और सत् का मार्ग खुल गया।

जिस समय वीतरागपने से विमुखता बढ़ती जा रही थी — ऐसे समय में मंगल परिवर्तन द्वारा योगीराज पूज्य गुरुदेवश्री ने इस युग में एक अनुपम शुद्ध आध्यात्मिक क्रान्ति का सृजन किया। आपश्री ने ऐसी क्रान्ति का सूत्रपात किया कि जो सैकड़ों वर्षों में नहीं हुई। जब नामधारी कुलपरम्परा के जैन रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, शुष्कज्ञान, और कोरे कर्मकाण्ड में अटक गये थे तथा उनके पास धर्म जैसी कोई वस्तु ही न होने पर भी, धर्म करने का अभिमान का सेवन करते थे, तब इस महासमर्थ सत्पुरुष ने समयसार आदि जिनागमों का मन्थन, चिन्तन, घोलन करके, प्रत्येक पदार्थ की परिपूर्ण स्वतन्त्रता प्रसिद्ध की।

भाषा सादी और सरल होने पर भी, जिन शब्दों में गजब का अर्थगाम्भीर्य भरा है ऐसी आगम और अध्यात्म के निचोड़रूप वाणी द्वारा अध्यात्ममार्ग के इन पावन पथिक ने फरमाया कि 'अन्य पदार्थ के कार्य में हस्तक्षेप करने का अभिप्राय ही सर्व दुःख का कारण है। सर्व जीव अपने किये हुए कार्य का ही फल भोगते हैं तथा अन्य चीज का कर्तापना अंशमात्र भी है ही नहीं।' इस प्रकार अन्य द्रव्य के कर्तापने का निषेध करके, धर्म विरोधी पुण्य-पापभावों को अधर्मरूप प्रसिद्ध करके और निज शुद्ध चैतन्यसत्ता का अवलम्बन ही धर्म है — ऐसा सत् सिद्धान्त बतलाकर, इस निकृष्ट काल में सनातन वीतराग जैनधर्म की-आत्मधर्म की-प्राणप्रतिष्ठा की। अहो! ऐसे अनुभवी पुरुष देखने को कहाँ मिलते हैं!!

जिस समय सजीवन ज्ञानमूर्ति पूज्य गुरुदेवश्री ने सोनगढ़ में परिवर्तन किया, उस समय धर्मसाधनारूप में आध्यात्मिक चिन्तन होता ही नहीं था। कदाचित् कहीं चिन्तन होता था तो उसमें अध्यात्म नहीं था, मात्र विकल्प की शुष्कता थी। आगमभाषा से आत्मा कहा तो जाता था 'शुद्ध', परन्तु वास्तव में माना जाता था 'अशुद्ध'। अरे! आत्म-आराधना

में श्रद्धा या समझ का कोई स्थान ही नहीं था। जीव, बाह्य क्रियाकाण्ड के कर्तृत्व की और स्थूल अल्प शास्त्रज्ञान की चक्की में घुन की तरह पिसकर, नरक-निगोदरूप विनाश के मार्ग पर जा रहे थे। बड़े-बड़े कहे जानेवाले चारित्रवन्त महात्मा और शास्त्रज्ञानी धर्मात्मा भी त्याग-वैराग्य और ज्ञान के नाम पर पुण्य-पाप के भंवर में फँस गये थे तथा उनमें से निकलने का कोई रास्ता दिखाई नहीं देता था। ऐसे काल में इस सत्यशोधक सन्त महात्मा ने दिगम्बर परमागमों का एकान्त में गम्भीर अवगाहन करके, स्वयं ने सत् ढूँढ़ निकाला, उसकी प्राप्ति की और जिज्ञासुओं को भी सत् की प्राप्ति का पंथ बतलाया।

कहानगुरु ए बंसरी बजावी, मीठा ए बंसरीना सूर... सुवर्णपुरे कहान विराजे...
चालो सहु ये सुणवा जईए, मीठा आ बंसरीना सूर.... सुवर्णपुरे....
अवधूत अलख जगाडनार संत आ, देवो ने आश्चर्य थाय... सुवर्णपुरे....
अध्यात्मरसनो रसीलो संत आ, श्रुतसागर ऊछव्या महान... सुवर्णपुरे....
पाक्या छे युगप्रधानी संत आ, सेवकने हरख न माय... सुवर्णपुरे....
ऐवा संतनी चरणसेवाथी, भवना आवे छे अंत.... सुवर्णपुरे....
पंचमकाले अहो भाग्य खील्या छे, वंदन होजो अनंत.... सुवर्णपुरे....

अब, हम अवलोकन करते हैं, सनातन सत्य वीतराग दिगम्बर जैनधर्म अंगीकार करने के पश्चात् शासन प्रभावक सन्त पूज्यश्री कहान गुरुदेव द्वारा हुई सत् की अभूतपूर्व प्रभावना के अनेक प्रसंग —

★ ★ ★

विक्रम संवत् 1991 (सन् 1935)

परिवर्तन वर्ष

भक्तों के परमाधार पूज्य गुरुदेवश्री 'स्टार ऑफ इण्डिया' में विराजमान हैं। मकान के बाहर एक गाय को हड़किया होता है और तड़फती है। तभी एक सिपाही निकलता है उसे सम्बोधित कर कहते हैं 'देखो! जगत में पुण्य-पाप है या नहीं? तो यह पाप का फल है।' यह बात तो सही है न? कि किये हुए भावों का फल मिले बिना रहता ही नहीं।

परम करुणावन्त कहान गुरुदेव बहुत बार भक्तों को स्वयं के जीवन के संस्मरण अपने-मुख से कहते थे। चलो, हम भी उनमें से कुछ याद करें :

बाल कानजी स्कूल में पढ़ते थे उस समय की बात है। उनके नरोत्तम मास्टर कणबीवाड़ में अकेले रहते थे। वे रसोई बनाते तब होशियार विद्यार्थियों को घर बुलाते। कानजी भी होशियार होने से उन्हें बुलाते और कहते – 'स्कूल में जो पाठ मैं पढ़ानेवाला हूँ वह पढ़कर आना, जिससे मैं अर्थ करूँ तब, तुम जो समझे हो और मैंने जो अर्थ किया, उसमें क्या अन्तर पड़ता है — उसका पता चलेगा।' सत्य ही है न! कि इस प्रकार श्रोताओं को भी प्रवचन में आनेवाले विषय को पहले से पढ़ लेना चाहिए।

एक बार कुछ दिन गारियाधार रहकर वापस उमराला आकर स्कूल में गये, तब कानजी को अन्तिम नम्बर में बैठना पड़ा। इससे उन्हें बहुत ही रोना आया कि मेरा अन्तिम नम्बर? यद्यपि बाद में दूसरे महीने में, होशियार होने से, पहले नम्बर पर आ गये।

परीक्षा के समय भी कानजी को विशेष कुछ अन्तर नहीं पड़ता था, क्योंकि होशियार विद्यार्थी होने से जब भी परीक्षा देते, तब पहले नम्बर ही पास होते।

कानजी स्कूल के लौकिक अभ्यास में सभी कक्षाओं में प्रथम नम्बर से पास होते थे, तथापि धर्म के संस्कार के कारण तथा जैनशाला में पढ़ने के लिए स्कूल जाना छोड़ दिया। जैनशाला पहले, स्कूल बाद में। वाह! क्या उत्तम भावना!!

एक बार पतंग चढ़ाते समय कानजी से दूसरे की पतंग कट गयी। इससे दूसरे

लड़के को दु:ख हुआ। उसका दु:ख देखकर कानजी को अत्यन्त शर्मिन्दगी हुई और तब से हमेशा के लिए पतंग उड़ाना बन्द कर दिया। बालपन से ही कैसा कोमल हृदय!

पूर्व के संस्कार होने से पहले से ही धर्म का रस था। लघुवय से ही धर्म का मार्ग क्या है? सत्य क्या है? यह जानने – शोधने की लगन रहती और इसी से ही अन्यत्र चित्त नहीं लगता था। विक्रम संवत् 1964 / 65 की साल से ही शास्त्र और अन्तर का अभ्यास शुरु हो गया था। सबसे पहले 'अध्यात्म कल्पद्रुम' नामक वैराग्यप्रेरक पुस्तक पढ़ी, फिर आचारांग आदि पढ़े। बालवय से ही सत्य की खोज सातिशयरूप से — अत्यन्तरूप से रहती होने से, उस सम्बन्धी विचार भी बहुत आते थे। जिनके फलस्वरूप रामलीला देखते–देखते ही धुन चढ़ गयी और अन्दर से बात आने लगी..... '**शिवरमणी रमनार तूं...... तूं ही देवनो देव....**'

सज्झायमाला के चार भाग पालेज में पढ़े थे। उसका एक पद बहुत रुचता था —

सहजानंदी रे आतमा, शुं सूतो निचिंत रे;
मोहतणा रे रणिया भमे, जाग जाग मतिवंत रे;
लूटे जगतना जंत रे, नाखी वांक अनंत रे;
विरला कोई उगरंत रे.... सहजानंदी रे आतमा.....

पालेज में एक दिन निर्जल उपवास किया। फिर पूरे दिन दुकान का कामकाज करते हुए शाम को ऐसी प्यास लगी कि कुँवरजी भाई की दुकान पर जाकर, पिछले भाग में घड़ा रहता था उसमें से पानी पी लिया। अहो! निज दोष का निर्दोषरूप से कैसा स्वीकार!!

पालेज की ही बात है। दुकान पर माल खरीदने बहुत लोग आते थे, उनमें से किसी–किसी ग्राहक के साथ धार्मिक चर्चाएँ भी होती थीं। एक बार ग्राहक कहता है : 'ईश्वर जगत का कर्ता है।' युवा कानजी ने कहा : 'तो फिर ईश्वर का कर्ता कौन है?' उत्तर मिला : 'कोई नहीं।' यह सुनकर धर्मरसिक कानजी ने प्रश्न किया : 'तो फिर जगत का भी कोई कर्ता नहीं — ऐसा मानने में क्या आपत्ति है?' व्यापार आदि करते हुए भी युवा कानजी धर्म को भूले नहीं हों!

विक्रम संवत् 1966 / 67 की बात है। दुकान के लिये माल लेने मुम्बई जाना हुआ।

उस समय 'कोलाबा' देखने के लिये जाने का प्रसंग बनने पर, देखा तो सट्टे का एक व्यापारी आवेश में आकर 'लिया-दिया' — ऐसा बोला करता है। यह देखकर उसी समय ही मन में ऐसा लगा कि 'यह पागल-मूर्ख जैसा है।' वर्षों पहले ऐसा विचार आया था हों।

विक्रम संवत् 1969 में विवाह प्रसंग में बारात में जाना हुआ। विवाह के गाँव में बारात को पहुँचने पर रात्रि हो जानेवाली थी। इसलिए कानजी ने कहा : 'मैं रात्रि में नहीं खाता। बारात की अगवानी करेंगे और देर लगेगी तो मैं रात्रि में नहीं खाऊँगा।' इस कारण जो कुछ खाने को मिला, वह खाकर रास्ते में ही रात्रि भोजन का प्रत्याख्यान कर लिया। एक बार नियम या प्रतिज्ञा लेने के बाद भंग थोड़े ही किया जाता है?

एक बार गारियाधार में बहिन के घर जाना हुआ। वहाँ सामूहिक भोजन के प्रसंग पर तबीयत ठीक नहीं होने से भोजन करने नहीं गये। इस कारण भोजन करानेवाले ने आग्रह किया कि भोजन करने आओ। कुछ नहीं तो छाछ-चावल खाना, परन्तु भोजन के लिए आओ। क्योंकि इन सबमें कोई तीर्थंकर का जीव भी हो सकता है, उसका लाभ नहीं छोड़ा जा सकता। अव्यक्तरूप से कही गयी यह बात सत्य ही है न!

दीक्षा लेने के बाद प्रथम चातुर्मास बोटाद में किया था। उस समय, विक्रम संवत् 1970 के आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा के दिन, रतनसी भावसार कहते हैं : 'महाराज! ढालसागर नाम की पुस्तक पढ़ो, लोग इकट्ठे होंगे।' उनसे कहा : 'भाई! यह सब तो विकथा है।' उसने प्रश्न किया : 'परन्तु गुरु तो पढ़ते हैं न?' समाधान करते हुए कहा : 'गुरु पढ़ते हैं उससे क्या हुआ? उसमें तो लोकरंजन की - लोग इकट्ठे हों ऐसी - बात है; उसमें धर्म की बात कहाँ है? जिसमें वैराग्य की बात और आत्मा की कथा नहीं, वह सब विकथा ही है और लोकरंजन के लिए धर्म का उपदेश नहीं होता!' देखो! लोग प्रसन्न रहें वैसी बात कहने योग्य है या आत्महितकारी सत्य बात कहने योग्य है?

जब-जब संवत् 1972 में 'सरवा' गाँव में हुई चर्चा की बात निकलती, तब पुरुषार्थमूर्ति गुरुदेवश्री उत्साह में आ जाते और बहुत हर्ष से उसकी बात करते। एक बार कहा : 'उस चर्चा की शुरुआत इस प्रकार हुई। उस दिन गुरुभाई जगजीवनजी बचा हुआ आहार कुत्तों को डालते-डालते ऐसा बोलते थे कि 'वोसरे... वोसरे...' अर्थात् त्याग करता

हूँ। तुरन्त ही उनसे कहा : 'तुम यह क्या करते हो ? भगवान की आज्ञा की मस्करी करते हो ?' स्थानकवासी सम्प्रदाय में ऐसा नियम है कि बचा हुआ आहार रोडी में फेंक देना, परन्तु दूसरों को नहीं खिलाना। ऐसा नियम होने पर भी और गुरुभाई को सूचना देने पर भी उन्होंने आहार नहीं फेंका, परन्तु कुत्तों को खिलाया। इस प्रकार दिन भर भगवान की – केवली की बात मन में घुलती रही और रात्रि में चर्चा हुई।

कानजीस्वामी चर्चा के अन्त में गुरु, गुरुभाई, सम्प्रदाय इत्यादि सब छोड़कर जाने की तैयारी करते थे, तब गुरु ने कहा : 'शान्त हो भाई! यह भूल बड़ी नहीं है।' नम्रता से, तथापि दृढ़ता से जवाब दिया : 'यह जीव नौवें ग्रैवेयक गया तब भी यह मूल भूल–शल्य रह गयी थी।' ऐसा कहकर पास के कानियाड गाँव चले गये। उस समय दिगम्बर शास्त्र कहाँ मिले या पढ़े थे, परन्तु अन्दर में आत्मा था न ? पूर्व के संस्कार होने से यह सब बातें अन्दर में से आती थी और इससे सम्प्रदाय के आग्रही जीवों के साथ बहुत घर्षण होता था।

विक्रम संवत् 1972 में राणपुर में चातुर्मास किया। उस प्रसंग पर श्रावण कृष्ण एकम से भाद्रपद शुक्ल पंचमी तक पचास दिन व्याख्यान दिए थे।

संवत् 1978 में दामनगर में ग्रन्थाधिराज 'समयसार' प्राप्त होने पर, उसे लेकर गाँव के बाहर जंगल में पढ़ने के लिये चले जाते और शाम को वापस आते। इससे एक साधु ने कहा : 'आप वहाँ क्या पढ़ते हो ?' उत्तर दिया : 'द्रव्य–गुण–पर्याय पढ़ता हूँ।' जिन्हें कुछ पता ही न हो, उन्हें क्या कहना ? 'समयसार' मिला और पढ़ा, तत्पश्चात् द्रव्य–गुण –पर्याय सम्बन्धी बात प्रसिद्ध में कहना शुरु किया। इसी वर्ष में 'समयसार–नाटक' और 'अनुभव–प्रकाश' भी प्राप्त हुए।

इसी वर्ष में ऐसा स्वप्न आया कि एक कागज का पन्ना आकाश में से उतरता है और उसमें ओम् (ॐ) के माहात्म्य के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है। भाव ओम् अर्थात् आत्मा तथा ओम् में पंच परमेष्ठी समाहित हैं। जिसके अन्तर में जो घुलन चलता है, वह स्वप्न में भी आये बिना रहता ही नहीं।

विक्रम संवत् 1979 आषाढ़ कृष्ण तृतीया या चतुर्थी का प्रसंग है। एक साधु से प्रश्न किया – 'बत्तीस सूत्र के मूलसूत्रों में उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य शब्द कहाँ है ?' उत्तर नहीं

मिला। देखो! मूल वस्तुस्वरूप का अनुभव–ज्ञान होवे तो वाणी में या लिखने में आवे न!

इन दिनों में ही तत्त्वविचारणा करते–करते ऐसा ख्याल आया कि किसी समय एक ही समय में असंख्य सम्यग्दृष्टि जीव स्वर्ग में उत्पन्न हो सकते हैं, क्योंकि ढाई द्वीप के बाहर असंख्य तिर्यंच सम्यग्दृष्टि हैं। परन्तु उन सबकी आयुष्य की स्थिति एक समान नहीं होती, क्योंकि यदि ऐसा होवे तो वे सब एक साथ – एक ही समय में – मनुष्यपने में जन्मे; परन्तु ऐसा तो हो नहीं सकता, क्योंकि मनुष्य की संख्या असंख्यात होती ही नहीं। न्यायपूर्ण विचारणा योग्य है न!

संवत् 1980 में गिरधरभाई वोरा कहते हैं : 'श्रावक को मुनिपद और केवलज्ञान की भावना नहीं होती। क्या खाते–पीते या अन्य कार्य करते हुए ऐसी भावना होती है ?' उत्तम बोधिबीज प्राप्त ज्ञानी–धर्मात्माओं की दशा का वर्णन करते हुए उत्तर दिया : 'हाँ! श्रावक को ऐसे समय में भी मुनिपद और केवलज्ञान प्राप्त करने की भावना होती है।' अहो! सम्यक्श्रद्धावन्त ज्ञानी किसे कहें ?

एक बार एक साधु कहता है : 'हमें सब पता है कि सम्प्रदाय में सत्य बात नहीं है, परन्तु कहना किसे ? क्योंकि सम्प्रदाय मार डाले ऐसा है।..' वीर का मारग है शूरों का, नहीं कायर का काम रे.....

जामनगर में एक भाई चर्चा करने के आशय से कहते हैं : 'आप दया, दान आदि में धर्म नहीं कहते वह भूल है। ऐसा कहने से तो सभी लोग स्वच्छन्दी हो जायेंगे और बिगड़ जायेंगे।' किसी भी प्रकार की अरुचि बिना मधुरता से कहा : 'भाई! पहली बात यह है कि हम किसी के साथ चर्चा नहीं करते; दूसरी बात यह है कि हम जो मानते हैं वह हमारा स्वतन्त्र अभिप्राय है।' वीर पुरुष की वीरता देखी! तथा सत्य कहने से किसी जीव को नुकसान नहीं होता यह निःसन्देह बात है।

यहाँ जामनगर में ही विक्रम संवत् 1982 में कहा : 'इस जीवन में मरण तक सब अनुकूलता रहे, इसके लिए जीव उपाय करता है; परन्तु इस भव के बाद मेरा क्या होगा – उसका विचार भी कहाँ करता है ?' वाह, कैसी मार्मिक बात!

सम्प्रदाय में व्याख्यान के समय बहुत बार फरमाते थे : ''हे भगवान! आपका मार्ग

न पलटे — ऐसा अटल है, परन्तु महापुरुषार्थ से प्राप्त हो ऐसा है।' भगवान वाणी द्वारा कहते हैं कि 'हे जीव! दुनिया के मार्ग के साथ, मेरे मार्ग की तुलना मत करना।''

संवत् 1982 का चातुर्मास वढ़वान में था। तब एक बार शाम को 8 से 10 व्यक्ति बैठे थे उन्हें सम्बोधित कर कहा : 'दो मित्र थे। उनमें से एक मित्र ने दूसरे को सौ रुपये उधार दिये और बही में लिखे। समय व्यतीत होने पर दोनों मित्र अचानक मरण को प्राप्त हुए। एक के पुत्र ने – जिसने पैसे दिये थे उसके पुत्र ने – बही में दो शून्य चढ़ा दिये और दूसरे के पुत्र ने – जिसने पैसे लिये थे उसके पुत्र ने – बही में से रकम ही निकाल दी। इसी प्रकार तीर्थंकर की मूर्ति तो है, परन्तु उस पर गहना इत्यादि कुछ भी नहीं होता। तथापि मूर्तिपूजक श्वेताम्बरों ने प्रतिमा पर, दो शून्य चढ़ाने की तरह, आंगी इत्यादिरूप शृंगार किया और स्थानकवासियों ने तो, रकम ही निकाल देने की तरह, प्रतिमा–मूर्ति ही पूर्णतः उड़ा दी – निकाल दी, ऐसा हुआ है।' बात तो ठीक है न?

समयसार मिला तब से ही अध्यात्म शास्त्रों की शोध–खोज चालू थी। जिसके फलस्वरूप 'स्वात्मानुभवमनन' (पुस्तक) इस वर्ष – 1982 में वढ़वान में प्राप्त हुई। जिसे लेकर जंगल में एकान्त में पढ़ते। यहीं 'पुरुषार्थसिद्ध्युपाय' मिलने पर उसका भी स्वाध्याय किया। तदुपरान्त वीरजीभाई वारिया से 'पंचास्तिकाय' और 'पंचाध्यायी' ग्रन्थ जामनगर में प्राप्त हुए।

इसी वर्ष में सर्वज्ञ भगवान सम्बन्धी चर्चा के समय कहा — 'वीतराग की वाणी में राग रखने की बात नहीं होती। उनकी भाषा – वाणी ही ऐसी होती है कि जिससे जन्म –मरण का अभाव हो। सम्प्रदाय में जैसी बात आती है, वैसी वाणी उनकी नहीं होती तथा वीतराग की वाणी जैसा कहती है वैसा करे, उसे भव हो — ऐसा भगवान ने जाना ही नहीं!' वाह, क्या तर्कपूर्ण बात!

विक्रम संवत् 1983 में तिथि के सम्बन्ध में सम्प्रदाय में विवाद हुआ। इस प्रसंग में कहा : 'धर्म के माल बिना का यह सब विवाद है।' अर्थात् मूलवस्तु रह गयी है और निरर्थक बात का विवाद हो रहा है।

संवत् 1987 का चातुर्मास पोरबन्दर करने के लिए उस तरफ विहार किया। तब पोरबन्दर से छह मील दूर एक गाँव आया। वहाँ आहार के लिए साधारण बाजरे की रोटियाँ और छाछ ही मिले। भोजन का समय होने पर पोरबन्दर के गृहस्थ उच्च प्रकार का भोजन लेकर उस गाँव में आये। उनसे कहा : 'तुम हमारे लिये लाये हो, परन्तु हमारे लिये बनाया हुआ भोजन हमें स्वीकार्य नहीं, हम से नहीं लिया जा सकता।' गृहस्थ कहते हैं : 'परन्तु महाराज! यह साधारण रोटियाँ और छाछ ही लोगे?' उत्तर दिया : 'हाँ, जो रोटियाँ और छाछ मिली हैं वे बस हैं।' देखो, कानजीस्वामी की ऐसी सख्त क्रिया थी और हमेशा महीने के चार उपवास भी करते थे।

सम्प्रदाय के समय की बात है। एक साधु, मूत्र से कपड़े धोते थे। यह देखकर आपश्री ने सहजभाव से कहा : 'यह क्या करते हो? यह तो अघोरी जैसा काम करते हो।' तभी दूसरा साधु आपश्री को सम्बोधित कर बोला : 'यदि ऐसा नहीं रुचता है तो सम्प्रदाय में किसलिए रहते हो?' शान्तचित्त से उत्तर दिया : 'भाई! धीरे-धीरे क्या होता है वह देखो....।' जो कार्य अन्तर चित्त में सत्य नहीं लगता था, उसके त्याग के लिए परिवर्तन किया ही न?

एक बार विक्रम संवत् 1990 में भावनगरवाले सवाईलालभाई गाँधी के साथ मूली में चर्चा हुई। उन्होंने कहा : ''देखो, 'नाटक-समयसार' में (स्याद्वादद्वार, छन्द-9) पण्डित बनारसीदासजी कहते हैं कि आत्मा, कर्म के कारण पराधीन है।'' शास्त्र के यथार्थ मर्म समझाते हुए कहा : 'नहीं, ऐसा नहीं है। आत्मा, पर्यायदृष्टि करता है, उसकी अंश के ऊपर दृष्टि है; इसलिए पराधीन है और द्रव्यदृष्टि से स्वाधीन है।'

इसी वर्ष की राजकोट की बात है। कीरचन्दभाई कहते हैं : 'महाराज! पेट में रोटियाँ पड़े बिना धर्म कैसे हो?' उन्हें उत्तर दिया : 'यदि रोटियाँ पेट में पड़ने के बाद धर्म हो तो, यह प्रश्न होगा कि रोटियाँ पचे नहीं तब तक धर्म कैसे हो? और रोटियाँ पचे तो, मल-त्याग बिना धर्म कैसे हो? — यह प्रश्न होगा। फिर मल-त्याग होने पर पेट खाली होगा और फिर से भूख लगने पर, रोटियाँ पेट में पड़े बिना धर्म कैसे हो? यह प्रश्न खड़ा होगा। इसलिए तुम्हें खाने-पीने की प्रवृत्ति में रहना है या धर्म करना है?' वहीं का वहीं उसी समय उन्होंने स्वीकार किया : 'महाराज! सत्य बात है।'

यहीं एक तथाकथित पण्डित मिले। उन्होंने लिखा था कि 1800 सामायिक करना, 3600 कराना और 5400 अनुमोदन करना, इसमें पूरे वर्ष की सामायिक आ जायेगी। उनसे कहा : 'यह क्या विपरीत लिखा है ? तुम गप्प मारते हो।' बड़े पण्डित हो या कोई भी हो, सत्य कहने में कायरता क्यों ?

संवत् 1990 में आया हुआ एक मंगल स्वप्न आपश्री के ही शब्दों में....

ओम सहजस्वरूप परम सद्गुरवे नमः।

आश्विन शुक्ल पंचमी। रात्रि में श्रीमद् आकर मेरे पास बैठे थे, मेरे सामने देख रहे थे।

आश्विन शुक्ल नवमीं मंगलवार। रात्रि के सवा बजे अमृत चौघडिये में आया हुआ स्वप्न : श्रीमद् राजचन्द्र मेरे पास आकर, मेरे मुँह में पानी की तीन चम्मच अनुक्रम से डाली। मैंने उन तीन चम्मच का पानी मुँह में इकट्ठा करके, फिर पी गया। तुरन्त जागृत हुआ, अद्भुतता लगी... और विचार आया... भेदरत्नत्रय का पान कराकर, अभेदरत्नत्रय अनुभव में आया।

एक बार मोरबी में स्वप्न आया : स्वयं ऊपर की मंजिल में बैठे हैं और नीचे नाटक चलता है। उस नाटक में ऐसा आता है कि 'मुझे तिर जाना है संसार...।' स्वयं को आश्चर्य होता है कि स्वप्न के नाटक में भी इस प्रकार की बात आयी!! जिसे भव का अभाव हो गया है, उसे स्वप्न भी भव के अभाव सूचक ही आयेंगे न!!

सम्प्रदाय में चातुर्मास इस प्रकार किये :

संवत् 1970 का बोटाद, 1971 का लाठी, 1972 का राणपुर, 1973 तथा 1976 का दामनगर, 1977 का राजकोट, 1979 व 1980 का बोटाद, 1981 का गढ़डा, 1982 का वढ़वान, 1983 का दामनगर, 1984 का राणपुर, 1985 का लाठी, 1986 का अमरेली, 1987 का पोरबन्दर, 1988 का जामनगर और 1989 का राजकोट में किया। इस चातुर्मास के दौरान 'परदेसी राजा' के अधिकार पर प्रवचन किये। जिसे सुनने तीन-तीन हजार जिज्ञासु उमड़ पड़ते थे। 1990 का सम्प्रदाय के समय का अन्तिम चातुर्मास भी राजकोट में किया।

एक बार ऐसा भी स्वप्न आया कि दूज के चन्द्र में स्फटिक से लिखा हुआ दुज का अंक दिखता है। यह ऐसा सूचित करता है कि बोधिबीज – सम्यग्ज्ञान प्रगट हुआ है और अब मनुष्य के दो भव बाकी हैं। कभी–कभी स्वप्न भी भविष्य के सूचक होते हैं न!

परिवर्तन के पश्चात् ज्ञान, ध्यान, वैराग्य की आराधना में और स्वाध्याय, तत्त्वचर्चा में छह महीने व्यतीत होने पर, विक्रम संवत् 1991 – जिसमें सम्प्रदाय परिवर्तनरूप महा पराक्रम किया वह वर्ष–पूर्ण होता है।

सुवर्णपुरे वसे एक संत.... विराजे भव्यो ने तारवा....

अपूर्व अलख कोई ऐणे जगाडयो, जगाड्या अनेक भव्य जीव.. पधार्या भव्यों ने तारवा...
सोल कलाये ज्ञानसूर्य प्रकाश्यो, प्रकाश्यो चैतन्यराज..... विराजे भव्यों ने तारवा...
सद्‌गुरुदेववा अमृत पीरसे छे, सेवक वारी वारी जाय.... विराजे भव्यों ने तारवा...
सिंहकेसरीना सिंहनादेथी, जाग्या छे सर्व भक्त (जीव).... विराजे भव्यों ने तारवा...
सुवर्णपुरीमां नित्य गाजे छे, आत्मबंसी केरा सूर.... विराजे भव्यों ने तारवा...
दर्शनथी सत् रुचि जागे छे, वाणी थी अंतर पलटाय.... विराजे भव्यों ने तारवा...
ज्ञाता–अकर्तानुं स्वरूप समझावे, स्वपरनो बतावे भेद... विराजे भव्यों ने तारवा...
कल्पवृक्ष अम आंगणे फणीयुं, मनवांछित दातार.... विराजे भव्यों ने तारवा...
श्री गुरुदेवनी चरणसेवाथी, भवना आवे छे अंत.... विराजे भव्यों ने तारवा...
तन–मन–धन गुरु चरणे अर्पूं, तोये पूरुं नव थाय.... विराजे भव्यों ने तारवा...

★ ★ ★

विक्रम संवत् 1992 (सन् 1935-36)

एकान्त साधना वर्ष

इस वर्ष वढ़वान के टी.जी. शाह सोनगढ़ आते हैं। सातिशय ज्ञान-वाणी के धारक पूज्य गुरुदेवश्री कहते हैं : 'सिद्ध भगवान सबसे बड़े हैं।' टी.जी. शाह पूछते हैं : 'वे किसका काम करते हैं ?' उत्तर मिलता है : 'वे किसी का कुछ भी काम नहीं करते, मात्र अपने आनन्द का अनुभव करते हैं।' पूरक प्रश्न : 'तब तो सिद्ध भगवान बहुत स्वार्थी कहलाये ?' समाधान : 'बहुत क्या ? सिद्ध भगवान पूरे स्वार्थी हैं।' टी.जी. शाह आश्चर्यपूर्वक कहते हैं : 'अरे ! पर का कुछ भी नहीं करते ? वे इतने बड़े हुए तो भी दूसरे का काम नहीं करते ?' उनका ऐसा कहना था कि हम छोटे हैं तो भी सबका काम करते हैं, जबकि सिद्ध भगवान बड़े होकर भी दूसरे का काम नहीं करते ? अरे...रे!! जैन होकर भी पर की कर्ताबुद्धि का कितना जोर ?

इस वर्ष पण्डित बनारसीदासजी द्वारा लिखित 'परमार्थवचनिका' पढ़ने में आती है।

चैत्र मास में व्याख्यान में 'परमात्मप्रकाश' शास्त्र पूर्ण होता है।

पर्याय में परमात्मपने का प्रकाश हो — ऐसी दिव्यधारा बरसानेवाले गुरुराज और आपश्री की वाणी कैसी है इस विषय में पूज्य बहिनश्री क्या कहती है वह चलो, जानें : 'पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी तो तीर्थङ्कर भगवान की दिव्यध्वनि जैसी महा-मङ्गलकारी, आनन्द उत्पन्न करनेवाली है। ऐसी वाणी का श्रवण जिन्हें हो रहा है, वे सब भाग्यशाली हैं। आपश्री और आपश्री की वाणी तो इस काल का एक अचम्भा है। आपश्री की वाणी रस से सराबोर और कसदार है। आपश्री के अन्तर में और वाणी में भी श्रुत की धारा-गंगा बहती है। आपश्री की महा-आश्चर्यकारी मुखमुद्रा शान्तरस झरती है और नयन उपशमरस से भरपूर हैं। अहो ! पूज्य गुरुदेवश्री तो भरत का सौभाग्य हैं ! भरतक्षेत्र भाग्यशाली है कि आपश्री विदेह से सीधे यहाँ पधारे। — ऐसा काल तो कभी-कभी आता है। हम तो आपश्री के दास हैं। अरे ! दास तो क्या, दासानुदास ही हैं।'

एक बार एक साधु कहता है : 'आत्मा, पर का कार्य नहीं करता ? अपना ही करता

है ? अपना पेट तो कुत्ता भी भरता है ?' अर्थात् यदि वह दूसरे का करे तो बड़ा कहलाये। दु:ख और आश्चर्यपूर्वक अपूर्व गुणधारी पूज्य गुरुदेवश्री कहते हैं : 'अरे! साधु होकर तुम यह क्या कहते हो ?' बाह्य में यम, नियम, संयम पालन करने पर भी, यदि ज्ञान-भान न हो तो खेद-दु:ख होता ही है न ?

अहमदाबाद के एक करोड़पति भाई को ज्ञानावतारी पूज्यश्री पूछते हैं : 'कुछ धर्म करते हो ?' वह भाई उत्तर देते हैं : 'महाराज! हमारी जगह आप हो तो पता पड़े कि हमारे कितने काम हैं ?' तुरन्त ही उनसे प्रश्न किया जाता है : 'तुम यह क्या कहते हो ? किसे कहते हो ? कहाँ कहते हो ? इसका पता है ? क्या अभिमान फट पड़ा है ?'

परिवर्तन किये ठीक एक वर्ष पूर्ण होता है। इसी दिन सोनगढ़ में एक व्यक्ति को अपूर्व सत्पुरुष गुरुदेवश्री पूछते हैं : 'जड़ है ?' उत्तर मिलता है : 'जड़ को माने तो है और न माने तो नहीं, अर्थात् जड़ है भी सही और नहीं भी।' उस व्यक्ति को अनेकान्त सिद्ध करना था; इसलिए इस प्रकार कहता है। अनेकान्तस्वरूप के ज्ञाता गुरुदेवश्री कहते हैं : 'भाई! तुम कहते हो वैसा अनेकान्त नहीं है। जड़, जड़रूप है और पररूप (चैतन्यरूप) नहीं — यह अनेकान्त है।' अस्ति-नास्तिरूप अनेकान्त समझ में आया ?

एक अन्य प्रसंग में एक भाई प्रश्न करते हैं : 'द्रव्यकर्म का उदय आया है — ऐसा क्या अन्य जड़ को-नोकर्म को पता चलता है कि जिससे नोकर्म का संयोग-सम्बन्ध होता है ?' अत्यन्त प्रेम से चैतन्यस्पर्शी वाणी द्वारा उत्तर मिलता है : 'भाई! द्रव्यकर्म का और नोकर्म का ऐसा ही कोई निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है, जिससे सुमेल बैठ जाता है।'

इसी वर्ष में एक बार तत्त्वचर्चा के दौरान प्रश्न उठता है : 'ज्ञानचेतना का फल क्या ? क्या ज्ञानचेतना खिले तो सब शास्त्रों का हल कर दें ?' आत्महितकारी समाधान करते हुए शास्त्रमर्मज्ञ कहान गुरुदेव फरमाते हैं : 'ज्ञानचेतना तो अन्तर में अपने ज्ञानस्वरूपी आत्मा को चेतनेवाली-अनुभव करनेवाली है; इस कारण उसका फल / कार्य अन्तर में आता है; बाहर में नहीं। आत्मा के अनुभव का हल आ जाये, यही ज्ञानचेतना का फल है, परन्तु उसके फल में शास्त्रों का हल होने लगे — ऐसा कुछ नहीं है। कोई जीव, शास्त्रों के अर्थ शीघ्रता से करे इसलिए उसे ज्ञानचेतना खिली है — ऐसा शास्त्र के पठन से

ज्ञानचेतना का माप नहीं है, क्योंकि कोई ज्ञानचेतनावन्त को उस प्रकार का क्षयोपशम और भाषा का योग न भी हो। कदाचित् किसी को ज्ञान का विशेष उघाड़ हो तो वह कहीं ज्ञानचेतना की निशानी नहीं है, क्योंकि उसका फल तो अन्तर की अनुभूति है। जिसने ज्ञान को अन्तरोन्मुख करके राग से भिन्न चैतन्यस्वरूप को अनुभव में ले लिया, उसे अपूर्व ज्ञानचेतना खिलती है।

ज्ञानचेतना अर्थात् शुद्धात्मा को–ज्ञान को चेतनेवाली–साक्षात्कार करनेवाली चेतना; और वह मोक्षमार्गरूप है; इसलिए इस ज्ञानचेतना का सम्बन्ध शास्त्र पठन या हीनाधिक जानपने के साथ नहीं है। ज्ञानचेतना में आत्मा अत्यन्त शुद्धरूप प्रकाशित होता है और वह चौथे गुणस्थान से प्रारंभ होती है। ज्ञानी ऐसी ज्ञानचेतना द्वारा केवलज्ञान को बुलाते हैं।' वाह! कैसी स्पष्टता!!

इसी वर्ष एक स्वप्न आता है : स्वयं रास्ते पर चल रहे हैं। इतने में ऊँची नजर जाने पर इन्द्र और समयसार प्रणेता श्री कुन्दकुन्दाचार्य दिखते हैं। आचार्यदेव कहते हैं : 'तिर गया।' बस, तुरन्त ही आँख खुल जाती हैं। वाह! आचार्यदेव का कैसा आशीष मिला! पात्रता हो तो सब कुछ मिलता है।

जिनकी दृष्टि में अर्जुन की तरह पररूपी वृक्ष, रागरूपी डालियाँ या भेदरूपी फल नहीं दिखते, परन्तु पक्षी की आँख के नेत्रमणि समान चैतन्यमणि ही मात्र दिखती है — ऐसे आजीवन वैरागी साधक आत्मा पूज्य गुरुदेवश्री सोनगढ़ में स्थायी हो जाने से तथा आपश्री की स्वानुभवरस से सराबोर वाणी का लाभ निरन्तर मिले इस हेतु से पूज्य बहिनश्री बहन, बड़े भाई खुशालभाई इत्यादि बहुत भक्त, अब घर लेकर सोनगढ़ में रहने लगते हैं।

इस प्रकार निजस्वरूप की साधना करते–करते तथा प्रतिदिन सबेरे प्रवचन द्वारा अमृतमयी ज्ञानगंगा बहाकर, भक्त श्रोताओं को पावन करते–करते, विक्रम संवत् 1992 का वर्ष पूर्ण होता है।

श्री सद्गुरुदेव के परम कृपामय उपकार को अत्यन्त भक्ति से नमस्कार.....

★ ★ ★

विक्रम संवत् 1993 (सन् 1936-37)

स्वर्णपुरी में प्रथम बार समयसार प्रवचन प्रारम्भ वर्ष

वीतरागवाणीमर्म उद्घाटक पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों में 'नाटक-समयसार' का बन्ध-अधिकार चलता है। एक घण्टे तक अविरल बहता वह अमृतप्रपात श्रोताओं को भिगाता है और कषाय से कलुषित-संतृप्त हृदय परम शान्ति का अनुभव करता है। इस तीर्थङ्करदूत के कारण, भव्यों के लिए मानो अज्ञान की मध्यरात्रि में ज्ञानसूर्योदय हुआ है; तप्तायमान भवताप में शीतल वीतराग कल्पवृक्ष की छाया प्राप्त हुई है; गहन भववन में मधुर जल की चैतन्य फुहार फूटी है तथा मिथ्यात्व की कंटीली झाड़ियाँ उगी थीं, वे साफ होकर मार्ग ज्वाज्वल्यमान हुआ है।

कार्तिक शुक्ल छठवीं, शुक्रवार को स्वप्न आता है। स्वयं कोई ऐसे तीर्थधाम में आये हैं कि जहाँ अत्यन्त सुन्दर, विशाल और शिखरबद्ध मन्दिर है। साथ में ऐसा भासित होता है कि स्वयं यहाँ पहले आ गये हैं और पूजा भी की है, क्योंकि एक मन्दिर में से दूसरे मन्दिर में जाने का मार्ग परिचित लगता है। यह मन्दिर खाली दिखने से विचार आता है कि 'मैं एकान्तवास ढूँढ़ता हूँ तो यह स्थान सुन्दर है, यहाँ ध्यान करने बैठ जाऊँ...।' शाश्वत जिनप्रतिमा के पूजन का अवसर 'अष्टाह्निका पर्व' आता है, तो स्वप्न भी उसके अनुरूप ही है न?

कार्तिक शुक्ल द्वादशी, गुरुवार। फिर से एक मङ्गल स्वप्न आता है। जिसमें **'गुणवन्ता रे ज्ञानी, अमृत बरसे रे पंचम काल में'** इस पद की धुन बहुत चलती है। बरसों तक अमृतमय वाणी की वर्षा होनेवाली है, उसी का ही मानो संकेत है न!

मार्गशीर्ष शुक्ल अष्टमी, सोमवार, रात्रि के लगभग 11 बजे स्वप्न आता है। स्वयं किसी जिज्ञासु के साथ समयसारजी परमागम के विषय में चर्चा करते हैं और उसमें न्याय का स्थापन अद्भुत दृढ़ता से करते हैं। समयसारजी प्राणप्रिय है न!

एक बार स्थानकवासी साधु कहते हैं : 'तन्दुलमच्छ बारंबार मुँह खोलता था, शरीर

की क्रिया करता था; इसलिए नरक गया।' उनमें शरीर की क्रिया मुख्य है न? इस कारण ऐसा कहते हैं। उसे प्रेम से समझाते हुए कहा : 'भाई! ऐसा नहीं है, वह स्वयं के पाप के परिणाम से नरक गया है; शरीर की क्रिया से नहीं।' शरीर की क्रिया से धर्म तो नहीं होता, परन्तु पुण्य या पाप भी नहीं होते – यह बात समझ में आती है न!

व्याख्यान में श्री दीपचन्दजी कृत 'अनुभवप्रकाश' पर प्रवचन चलते थे। वे पूर्ण होने पर माघ कृष्ण में 'श्रीमद् राजचन्द्र' ग्रन्थ पर प्रवचन शुरु होते हैं। जिसमें जैसे पिता प्रेम से पुत्र को समझाये और गुरु करुणा से शिष्य को सम्बोधन करे, वैसे गुरुदेवश्री प्रसन्नता तथा सरलता से शाश्वत सुख का मार्ग बताते हैं और आत्मशान्ति के पिपासु जीवों को तृप्त करते हैं।

माघ शुक्ल चतुर्दशी बुधवार। 'मैं तीर्थङ्कर हूँ...' इत्यादि बहुत सी बातें स्वप्न में आती हैं।

वैशाख कृष्ण अष्टमी के दिन, जिनका सान्निध्य भक्तों को कल्याणकारी मंगलमय है ऐसे गुरुदेवश्री के शासन की प्रभावना में विशिष्ट प्रकार से निमित्त हो — ऐसा योग –प्रसंग बनता है और वह है, पूज्य बहिनश्री को पूज्य गुरुदेवश्री के तथा स्वयं के भवों का जातिस्मरणज्ञान प्रगट होना। यह बात पूज्य बहिनश्री किसी से नहीं कहतीं।

बड़े भाई – कि जिनका स्वयं के प्रति असीम स्नेह है, ऐसे अति सरल स्वभावी और भद्रिक बड़े भाई श्री खुशालभाई–आपरेशन के लिए भावनगर हॉस्पीटल में जाने से पहले दर्शन करने 'स्टार ऑफ इण्डिया' आते हैं और कहते हैं — 'प्रभु! मैं जाता हूँ।' यह हैं उनके अन्तिम सुने हुए शब्द, क्योंकि तत्पश्चात् श्रावण कृष्ण अमावस्या को 53 वर्ष की उम्र में उनका स्वर्गवास हो जाता है। इस वैराग्य प्रसंग पर श्री पद्मनन्दि पंचविंशतिका का 'अनित्य पंचाशत्' अधिकार प्रवचन में पढ़ा जाता है। इस प्रसंग के बाद प्रात: और दोपहर ऐसे दो बार प्रवचन करने की शुरुआत होती है। जो परम्परा जीवन के अन्त तक अविरल धारा से चालू रही।

खुशालभाई के अवसान के बाद, उनके सम्बन्ध में ऐसा स्वप्न आता है कि वे बहुमंजिली मकान में मनुष्यरूप से रहते हैं। सरल स्वभावी थे न!

श्रावण शुक्ल सप्तमी, शुक्रवार। प्रातः 4 बजे स्वप्न में फिर से एक बार तीर्थस्थान आता है। उसमें संगमरमर के बड़े-बड़े सुन्दर जिनमन्दिर दिखते हैं, उनकी स्वयं यात्रा करते हैं और साथ में बहुत से यात्री भी हैं। मानो यह भविष्य में होनेवाले यात्रा महोत्सव के भनकार तो नहीं न!

परिवर्तन किये दो वर्ष व्यतीत हो गये हैं। सत्यशोधक जिज्ञासु मध्यस्थ जीवों तथा पुरुषार्थ प्रेरक पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति भक्तिवन्त जीवों का प्रवाह इतना बढ़ने लगता है कि यह 'स्टार ऑफ इण्डिया' मकान छोटा पड़ता है; मुमुक्षु समाते नहीं हैं। जैसे भँवरा फूल के प्रति आकर्षित होता है, उसी प्रकार वस्तुस्वरूप के गहन रहस्य स्पष्ट करनेवाले गुरुवर के प्रभावक व्यक्तित्व, अन्तर्मग्न दशा और विवेकज्ञान से प्रभावित होकर बहुत से जीव आकर्षित होकर आने लगते हैं। श्रावण महीने में बहुत लोग आने से प्रवचन गुरुकुल हाईस्कूल में रखना पड़ता है। इसलिए भक्तों को विचार आता है – भावना जगती है – कि तारणहार कहान गुरुदेव के निवास तथा प्रवचन के लिए अब कोई विशाल जगह ढूँढ़नी पड़ेगी।

भाद्रपद शुक्ल तृतीया : आज के दिन अध्यात्म की ईमारत के नींव समान ग्रन्थाधिराज श्री समयसारजी पर दूसरी बार के जाहिर प्रवचन शुरु होते हैं। प्रथम बार के जाहिर प्रवचन परिवर्तन से पहले संवत् 1990 के राजकोट के चातुर्मास के दौरान भाद्रपद शुक्ल अष्टमी के दिन प्रारम्भ हुए थे। समयसार के प्रवचनों सम्बन्धी प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के शब्द : 'पूज्य गुरुदेव ने समयसार अद्भुत और अपूर्व रीति से समझाया है। ऐसा हो जाता है कि वाह! गुरुदेव वाह! मन, वचन, काया आपकी चरण सेवा में अर्पण करें तो भी कम है। अहा! समयसार में कोई अद्भुत रहस्य भरा है!'

कृपालु देव श्रीमद् राजचन्द्रजी को समाधिमरण के समय दो-तीन घर तक सुनाई दे ऐसी घरघराहट चली थी। इस प्रसंग से एक भाई, पूज्य गुरुदेवश्री से कहते हैं : 'आपश्री अभी कहते हो इसलिए मानते हैं – पता चलता है – कि श्रीमद्जी कैसे थे। वरना मैं उन्हें ज्ञानी नहीं मानता था। उनके समाधिमरण के समय मैं वहाँ बैठा था, तब मन में ऐसा होता था कि यदि वे ज्ञानी होवें तो ऐसा मरण!' ज्ञानी-धर्मात्मा की अन्तरंग परिणति को

पहचाननेवाले कहानगुरुदेव समझाते हैं : 'भाई! यह आवाज आती थी वह तो देह की क्रिया थी, उस समय भी उनका आत्मा तो आनन्द में था। देह छूटने में भले ही देर लगी, परन्तु आत्मा तो अन्दर में समा गया था। उन्होंने अपनी पर्याय को अन्तर में झुका दिया था।'

जगत उद्धारक पूज्य गुरुदेवश्री का स्वास्थ्य सामान्यरूप से अच्छा ही रहता है। कभी-कभी वह कमजोर पड़ता है। इस वर्ष स्वास्थ्य में जरा बदलाव होता है और फिर ठीक हो जाता है। ऐसे प्रसंगों में भक्त क्या भावना भाते हैं, वह पूज्य बहिनश्री के शब्दों में देखते हैं : 'आत्म-आधार पूज्य गुरुदेवश्री के स्वास्थ्य में अब तो जरा भी कुछ न हो, बिल्कुल ठीक रहे यही भावना है।'

शुभभाव के पक्षपाती एक भाई कहते है : 'द्रव्यसंग्रह की 35 वीं गाथा में आता है कि व्रत, समिति, संवर-निर्जरा का कारण है।' करुणावन्त गुरुवर समाधान कराते हैं : 'भाई! व्रत अर्थात् शुभाशुभ रागादि विकल्पों की निवृत्ति वह व्रत — ऐसी स्पष्ट टीका वहाँ है, अर्थात् स्वरूप में लिपट जानेरूप - लीनतारूप-निश्चयव्रत की वह बात है और वह संवर, निर्जरा, मोक्ष का कारण है।' शास्त्रों का यथार्थ अर्थ समझना पड़ेगा न!

1. अनुभव ज्ञान बिना छुटकारा नहीं।
2. वीतराग प्रभु द्वारा दर्शाये हुए वीरमार्ग में राग के रसिक ऐसे कायरों का नहीं, परन्तु शूर-पुरुषार्थी होकर आत्मस्वरूप में साहस करनेवालों का काम है।
3. तत्त्वाभ्यासपूर्वक भेदज्ञान करके आत्मानुभूति प्राप्त करना, यही धर्म की पहली सीढ़ी है।

इस प्रकार मंगलवाणी सुनते-सुनते विक्रम संवत् 1993 का वर्ष कब पूर्ण हुआ, वह भी भक्तों को पता नहीं चला....।

ज्ञान-वैराग्य के अपूर्व बोध द्वारा सिंचन करके भक्तों की ज्ञानबेलड़ी को सजीवन करनेवाले गुरुदेवश्री के चरणकमल में वन्दन।

★ ★ ★

विक्रम संवत् 1994 (सन् 1937-38)

‘स्वाध्याय मन्दिर’ उद्घाटन वर्ष

भगवती माता पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन को पूर्व भवों का जातिस्मरण ज्ञान तो गत वर्ष ‘लाठी नो उतारो’ में हुआ था, परन्तु किसी से कहा नहीं। इस बात की जानकारी पूज्य गुरुदेवश्री को सात महीने और बारह दिन बाद, मार्गशीर्ष शुक्ल तृतीया को करती हैं। एक चिट्ठी में इस प्रकार का लेख लिखकर ‘स्टार ऑफ इण्डिया’ भेजती हैं : ‘आपकी कृपा से आपका और हमारा स्मरण आया है।’

दूसरे दिन सर्वस्वदाता पूज्य गुरुदेवश्री, पूज्य बहिनश्री को ‘स्टार ऑफ इण्डिया’ में बुलाते हैं और पूछते हैं। उत्तर में पूज्य बहिनश्री : ‘आप पूर्व भव में राजकुमार थे, जरी के वस्त्र पहनते थे और भगवान की वाणी में आया है कि आप भविष्य में तीर्थंकर होनेवाले हो....’ इत्यादि कहती हैं। दीक्षा लेने के बाद पूज्य गुरुदेवश्री को राजकुमार के और ‘मैं तीर्थंकर हूँ’ — ऐसे स्वप्न तो आते ही थे, परन्तु हल नहीं मिलता था - कुछ मेल नहीं बैठता था। अब इस जातिस्मरण ज्ञान की बात सुनते ही हल मिल जाता है, समाधान हो जाता है। दिव्यमूर्ति सद्गुरुदेव को अन्तर में भाव जागता है - ‘यह तो त्रिलोकनाथ ने तिलक किया’ अर्थात् भगवान की वाणी में ‘मैं तीर्थंकर होनेवाला हूँ’ — ऐसा आया है तो इसके जैसा दूसरा सद्भाग्य क्या हो सकता है ?

मार्गशीर्ष शुक्ल दशमीं। गुरुदेवश्री के स्थायी निवास स्थान और प्रवचन के लिए हॉल का शिलान्यास होता है।

व्यवहार के आग्रही वढ़वान के नटुभाई कहते हैं : ‘देखो! समयसार की बारहवीं गाथा में ऐसा कहा है कि व्यवहारीजन को-अज्ञानी को व्यवहार का उपदेश करना।’ निश्चय-व्यवहार के ज्ञाता गुरुराज उत्तर देते हैं : ‘भाई! वहाँ ऐसी बात है ही नहीं। अज्ञानी को व्यवहार का उपदेश देना — ऐसा बारहवीं गाथा का अर्थ ही नहीं है। उस गाथा का अर्थ ऐसा है कि ज्ञानी को पर्याय में जो कुछ शुद्धता बढ़ती है और अशुद्धता घटती है उसे जानना वह प्रयोजनवान है, अर्थात् व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। इस

प्रकार व्यवहार जाननेयोग्य है।' आचार्यों–ज्ञानियों के भाव समझना वह स्वानुभवी और महापात्र जीवों का काम है।

माघ कृष्ण चतुर्दशी, रविवार को स्वप्न आता है। एक बड़े संघ के वृन्द में सत्श्रुतों के रचयिता श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव विराजमान हैं और स्वयं (पूज्य गुरुदेवश्री) उस संघ में साथ में हैं। आचार्यदेव के दर्शन होने पर सहज उद्गार निकलते हैं : 'यह श्री कुन्दकुन्द महाराज, भगवान होनेवाले हैं।' अहो! कैसा भक्तिभाव भरा स्वप्न!

फाल्गुन कृष्ण दशमीं, गुरुवार। रात्रि को क्या हुआ वह जानते हैं। स्वरूपसाधक गुरुदेवश्री नौ बजे बाद सहज स्वभाव का स्मरण करते–करते सोते हैं – निद्रा आती है। लगभग 10.45 बजे एक स्वप्न आता है, उसमें ऐसा आता है कि स्वयं को सहज शुद्ध चिदानन्द आत्मा का स्मरण गहराई से बारम्बार आता है। फिर चिदानन्द... चिदानन्द... चिदानन्द... ऐसी भावना और भावना में स्वयं एकदम अन्तर में उतर जाते हैं और उपयोग पलटा खाता है, अर्थात् 'मैं चैतन्य गोला भिन्न हूँ' — ऐसा अनुभव होता है, कि जिसमें सहजरूप से आनन्दस्वरूप का वेदन होता है। इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ होता नहीं। इस प्रकार शुद्ध ज्ञानानन्दस्वभाव का अनुभव होता है – ऐसा स्वप्न में आता है। अहो! जिसे जैसी भावना होती है, उसे वैसे ही स्वप्न आते हैं न!

दस दिन बाद फाल्गुन शुक्ल षष्ठी, सोमवार। रात्रि को पिछले भाग में आये हुए स्वप्न में 'एक विशाल जिनमन्दिर में बहुत भक्तों के साथ स्वयं प्रभुभक्ति में विराजमान हैं और वैराग्यरस में भींगकर परम शान्तभाव से भक्ति कराते हैं' — ऐसा दिखता है। यह स्वप्न पूर्ण होने पर स्वयं जागृत होते हैं और 'ओम् सत्' — ऐसे मंगल उद्गार सहज निकल पड़ते हैं। धन्य है ज्ञानी की जागृतदशा या स्वप्नदशा!

संसारसागर तिरने के इच्छुक भव्य जीवों के प्रकाश स्तम्भ समान शासन शृंगार गुरुदेवश्री को 49 वाँ वर्ष चल रहा है। अन्तरंग साधना के साथ–साथ बाह्य में प्रवचन, तत्त्वचर्चा इत्यादि कार्यक्रम नियमित होते हैं और शासन प्रभावना दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। 'स्टार ऑफ इण्डिया' के निवासस्थान में सबेरे और दोपहर हो रहे शान्तरस झरते अध्यात्म प्रवचन चैत्र–वैशाख मास के घोरतम ताप में भी शीतलता प्रदान करते हैं। चातक

समान तत्त्वपिपासु भव्य भक्तों के झुण्ड के झुण्ड, इस शान्तरस का अमृतपान करने के लिये प्रतिदिन उमड़ते हैं। इस कारण वह जगह छोटी पड़ने से, मुमुक्षुओं की भावनानुसार सोनगढ़ के एक एकान्त-निर्जन स्थान में जगह खरीदी जाती है। अब वहाँ मुमुक्षुओं के जीवन आधार कहान गुरुदेव के स्थायी निवासस्थान और प्रवचन-स्वाध्याय धाम के लिए तेरह हजार रुपये के खर्च से 50 फीट × 25 फीट का हॉल तथा उसके चारों कोनों में एक-एक कमरा बनाया जाता है।

निस्पृह और निकाँक्ष ऐसे कहान गुरुराज ने किसी को, कहीं, कभी, कुछ, नहीं कहा कि 'हमारे लिए मकान बनाओ।' प्रत्युत आपश्री इस नये निवासस्थान के निर्माण समय में ऐसा कहते हैं : 'तुम यह मकान बनाते हो इसलिए मुझ पर प्रतिबन्ध नहीं कि इसमें ही रहना। मेरी वीतरागता बढ़ जाये तो यह मकान छोड़कर चला भी जाऊँ....।' वाह! धन्य हो निस्पृहता को! अलिप्तता को! निरपेक्षपने को! अप्रतिबन्ध भावना को! तथापि भक्त, भक्तिभावना से-उपकृत भावना से हॉल और चार कमरे बनवाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री को विक्रम संवत् 1978 में 'वींछिया' गाँव में ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी के दिन 'ओम्ध्वनि' आयी थी। इस कारण नूतन प्रवचनधाम के उद्घाटन का दिन भी ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी, रविवार निश्चित किया जाता है और अध्यात्मयोगी गुरुदेवश्री को समयसारजी के प्रति अतिशय बहुमान / भक्ति होने से, उसमें इस परमागम की स्थापना करने का भी निश्चित किया जाता है।

ज्ञान-वैराग्यपोषक पूज्य गुरुदेवश्री 'स्टार ऑफ इण्डिया' में विक्रम संवत् 1991 के चैत्र कृष्ण पंचमी के दिन पधारे थे। अन्तिम तीन वर्ष से यहाँ से प्रवाहित आपश्री की वाणी का अस्खलित प्रवाह सब जीवों के अन्तर में अज्ञान-अन्धकार दूर करके ज्ञान-प्रकाश फैलाता है। पुण्य और पवित्रता के स्वामी संत पुरुष श्री गुरुदेवश्री के दर्शन करने और शास्त्र-प्रवचन सुनने जो-जो तत्त्वरसिक जीव आते हैं, वे सब आपश्री के ज्ञान-वैराग्य-आचरण देखकर तथा सागरसमान शान्त-गम्भीर व्याख्यान सुनकर, नतमस्तक हो जाते हैं और धन्यता का अनुभव करते हैं। सबको ऐसा भासित होता है कि आपश्री की वाणी में कोई जादू है। जैसे-जैसे जीवन-उद्धारक पूज्य गुरुदेवश्री की, आपश्री की

भवान्तकारी मङ्गलमय वाणी की तथा सोनगढ़ की ख्याति चारों ओर फैलने लगती है, वैसे-वैसे भक्तों का समुदाय सोनगढ़ में आने लगता है। जिसके कारण 'स्वाध्याय मन्दिर' बनाया जाता है।

'स्वाध्याय मन्दिर' के उद्‌घाटन के तथा जिसमें सर्वज्ञ के हृदय का मर्म-अन्तिम सार- बताया है, जिसका रहस्य पात्रजीव हो वही समझ सकता है और जो भवसमुद्र में डूबते जीवों को नौका समान है — ऐसे समयसारजी की प्रतिष्ठा के इस मङ्गल प्रसङ्ग में ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी सहित बाहर गाँव से 700 मुमुक्षुओं का समुदाय उल्लासपूर्वक आता है, क्योंकि यह तो पहला-पहला मङ्गल उत्सव है न!

अज्ञानभाव में सोते होने पर भी, धर्म करने का अभिमान सेवन करनेवाले जीवों को सन्मार्ग की ओर ले जाने के लिए भरतक्षेत्र में पधारे हुए पूज्य गुरुदेवश्री को लाने के लिए, मुमुक्षुवृन्द प्रातःकाल गाजते-बाजते 'स्टार ऑफ इण्डिया' आते हैं। 'स्टार ऑफ इण्डिया' में ठीक तीन वर्ष, तीन माह, और तीन दिन निवास करके, अब ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी के दिन 'स्वाध्याय मन्दिर' के दक्षिण-पश्चिम दिशा के नैऋत्य कोने में आये हुए कमरे में स्थायी निवास करने के लिए गुरुवर कहान विहार करते हैं। धीर-गम्भीर चाल से पावन कदमों से चलते-चलते 'स्वाध्याय मन्दिर' की ओर पधारते हैं। साथ-साथ मुमुक्षुभक्त भी आनन्द, उमंगपूर्वक स्तवन गीत गाते-गाते चलते हैं.....।

दूसरी ओर पूज्य बहिनश्रीबेन तथा भक्तबहिनें 'लाठी नो उतारो' से - कि जहाँ वे रहती हैं वहाँ से - जिनका कहानगुरु पर परम उपकार है ऐसे भरतक्षेत्र के सर्वोत्कृष्ट परमागमश्री समयसारजी को चाँदी की थाली में विराजमान करके, बहुमानपूर्वक साथ लेकर, मङ्गल भक्ति करते-करते, इस स्वागतयात्रा में जुड़ती हैं। एक अद्‌भुत उल्लास -उमंग-उत्साह और आनन्द का वातावरण सृजित होता है। क्यों न सृजित हो? क्योंकि परिवर्तन स्थल 'स्टार ऑफ इण्डिया' तो निर्मित था, जब कि भक्तों के हृदय सिंहासन पर विराजमान उपकारी गुरु के इस स्थायी स्थान का निर्माण तो भक्तों ने भावना से किया है, और वहाँ आज गुरुराज विराजमान होनेवाले हैं।

दूर से 'स्वाध्याय मन्दिर' तैरते हुए जहाज जैसा लगता है। लगेगा ही न! भवजल

तरण–तारण जहाज समान गुरुदेवश्री वहाँ विराजमान होनेवाले हैं। स्वयं गुरुराज तैरते पुरुष हैं, महापुरुष हैं। स्वयं संसारसमुद्र से तिरनेवाले हैं और भक्तों को भी तारनेवाले हैं। इसलिए आपश्री का साधनाधाम भी ऐसा ही — तैरते हुए जहाज जैसा ही – होगा न!

सब 'स्वाध्याय मन्दिर' में आते हैं, उद्घाटन होता है। प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री के मङ्गल करकमलों से उसके गोखले में बारह अङ्गरूप श्रुतसागर का मंथनकर प्राप्त किया हुआ अमृतकुम्भ समान ग्रन्थाधिराज श्रीसमयसारजी स्थापित किया जाता है और शासन शिरोमणि सन्त पूज्य गुरुदेवश्री 'स्वाध्याय मन्दिर' में पाट पर विराजमान होते हैं। भक्तों का हर्षोल्लास उछल उठता है, जय–जयकार गाज उठती है और श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेव के उपकारों का मङ्गल स्मरण करने के लिए विशेष रूप से आज के दिन के लिए बनायी हुई भक्ति बहने लगती है।

सुखशांतिप्रदाता, जगना त्राता, कुंदकुंद महाराज;
जनभ्रांतिविधाता, तत्त्वोना ज्ञाता, नमन करूँ छुं आज.....
जड़तानो आ धरणी ऊपर, हतो प्रबल अधिकार;
कर्यो उपकार अपार प्रभु! तें, रचीने ग्रंथ उदार रे... सुख०
वरसावी निज वचनसुधारस, कर्यो सुशीतल लोक;
समयसारनुं पान करीने, गयो मानसिक शोक रे... सुख०
तारा ग्रंथोनुं मनन करीने, पामुं अलौकिक भान;
क्षणे क्षणे हुं ज्ञायक समरुं, पामुं केवलज्ञान रे.... सुख०
तारुं हृदय प्रभु! ज्ञान–समतानुं, रह्युं निरंतर धाम;
उपकारोनी विमल यादीमां, लाखो वार प्रणाम रे... सुख०

★ ★ ★

धर्मध्वज फरके छे मोरे मंदिरिये, स्वाध्यायमंदिर स्थपाया अम आंगणिये....
शासनतणा सम्राट अमारे आंगणे आव्या,

अद्‌भुत योगिराज अमारां धाम दीपाव्यां;
मीठो महेरामण आंगणिये कहान महाराज, पुण्योदयनां मीठां फल फलिया आज...
अमृतभर्यां ज्यां ऊर छे, नयने विजयनां नूर छे,
ज्ञानामृते भरपूर छे, ब्रह्मचारी ए भडवीर छे;
युक्ति न्यायमां शूरा छो योगिराज, निश्चय व्यवहारना साचा छो जाणनहार....
देहे मढेला देव छो, चरिते सुवर्णविशुद्ध छो,
धर्मे धुरंधर संत छो, शौर्ये सिंहणपीध दूध छो;
मुक्ति वरवाने चाल्या छो योगिराज, सनातन धर्मना साचा छो ऋषिराज....
सूत्रो बताव्यां शास्त्रमां, उकेलवां मुश्केल छे,
अक्षर तणो संग्रह घणो, पण ज्ञान पेले पार छे;
अंतर्गतना भावोने ओलखनार, आत्मिक वीर्यना साचा सेवनहार....

भक्त अन्तर में भावना भाते हैं : हे नाथ! आपश्री हमारे धर्मपिता हो, हम आपश्री के पुत्र हैं। आपश्री ने स्वाध्याय-प्रवचन द्वारा दिये हुए और भविष्य में भी देनेवाले श्रद्धा, ज्ञान, आनन्दरूप अमूल्य वैभव को स्वीकार करके तथा आपश्री के पावन पंथ पर — पद चिह्नों पर — चलकर हम भी आपश्री के जैसे होंगे; आपश्री के समीप सदा रहेंगे, यह विश्वास है।

समयसारमर्मज्ञ गुरुदेवश्री समयसार को उत्तमोत्तम शास्त्र गिनते हैं। अरे! उसकी बात करते हुए भी उल्लास उछल जाता है। आज मङ्गल आशीषरूप प्रवचन में श्रीसमयसार की अपूर्व महिमा का अन्तर के अहोभाव से वर्णन करते हैं तथा श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के अपार उपकारों का वर्णन करते हुए कुन्दकुन्दशासनप्रभावक सन्त गुरुदेवश्री एक गूढ़ संकेत भी देते हैं : 'समयसारजी की प्रत्येक गाथा, मोक्ष प्रदान करे ऐसी है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव का हम पर बहुत उपकार है, हम उनके दासानुदास हैं। भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव महाविदेहक्षेत्र में सर्वज्ञ-वीतराग श्री सीमन्धर भगवान के समवसरण में गये थे और आठ दिन रहे थे। यह बात यथातथ्य है, अक्षरशः सत्य है, प्रमाणसिद्ध है;

उसमें लेशमात्र शङ्का का स्थान नहीं है। कल्पना करना नहीं, न कहना नहीं; यह बात ऐसी ही है। मानो तो भी ऐसी ही है और न मानो तो भी ऐसी ही है। वह अक्षरश: सत्य है। यह सब नजरों से देखी हुई बात है, उसमें हमारी साक्षी है...।' — इस प्रकार नि:शङ्करूप से भक्तिभीने हृदय से अन्तर से कहते हैं। तदुपरान्त अलौकिक सत्पुरुष गुरुदेवश्री, पूज्य बहिनश्री को 'भगवती' ऐसा बहुमानभरा विशेषण प्रदान करते हैं।

इस प्रकार, अपूर्व उत्साह, उमङ्ग और भक्तिभाव से, मानो कि भावी में होनेवाली अभूतपूर्व प्रभावना का माणिकस्तम्भ रोपा जाता हो उस प्रकार, यह महोत्सव मनाया जाता है। मुमुक्षुओं के आगमचक्षु गुरुराज के पधारने से 'स्वाध्याय मन्दिर' चेतनवन्त और जीवन्त भासित होता है। अभी तक प्रतिदिन जो तत्त्वप्रेमी मुमुक्षुओं का प्रवाह 'स्टार ऑफ इण्डिया' की तरफ प्रवाहित होता था, वह अब 'स्वाध्याय मन्दिर' की ओर मुड़ता है; क्योंकि अब सोनगढ़ के सन्त, स्थायी निवासस्थान में विराजमान हुए हैं और प्रवचनधाम 'स्वाध्याय मन्दिर' में नियमितरूप से प्रात: तथा दोपहर में व्याख्यान होने लगे हैं।

सोनगढ़ की इस पवित्रभूमि पर 'स्वाध्याय मन्दिर' के निर्माण से वीतराग शासन की प्रभावना में एक नये प्रकरण का प्रारम्भ होता है।

एक स्थानकवासी साधु प्रश्न करता है : 'इस आत्मा को और पुद्गल को किस प्रकार सम्बन्ध है? पुद्गल तो जड़ है न?' लो, साधु होकर भी ऐसी शङ्का! अद्भुत श्रुतज्ञानधारी गुरुवर समाधान कराते हैं : 'ज्ञान अरूपी है तो भी रूपी घड़ी को जानता है या नहीं? घड़ी का काँटा अभी यहाँ है — ऐसा ज्ञान में ज्ञात हुआ या नहीं? तो जैसे अरूपी, रूपी को जाने ऐसा सम्बन्ध है; वैसे निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध भी है। यदि रूपी के साथ बिल्कुल सम्बन्ध ही न हो तो जानपना भी नहीं बन सकता।' वाह! क्या दृष्टान्त और सिद्धान्त!!

इस प्रकार सुषुप्त चेतना - पुरुषार्थ को जागृत करानेवाले तथा मार्ग का रहस्य समझाकर साधना की सीढ़ी बतानेवाले पूज्य गुरुदेवश्री के जीवन का एक महत्त्व का वर्ष — विक्रम संवत् 1994 का 'स्वाध्याय मन्दिर' प्रवेश वर्ष — समाप्त होता है।

गुरुराज के अद्भुत प्रताप को अहोनिश भक्ति से बारम्बार नमस्कार।

★ ★ ★

विक्रम संवत् 1995 (सन् 1938-39)

प्रथम बार सिद्धिधाम यात्रा तथा सुवर्ण जन्म-जयन्ती वर्ष

मार्गशीर्ष कृष्ण तृतीया, गुरुवार। ब्रह्ममुहूर्त में स्वरूप का ध्यान — उसमें एकाग्रता - होने पर संयोग और विभाव से अलिप्त-निर्लेप तथा समदर्शी ऐसे पूज्य गुरुदेवश्री को सहज उदासीनता बढ़ती है और स्वप्न आता है। उसमें ऐसा दिखता है कि कोई व्यक्ति आकर आपश्री की स्तुति करता है तो भी आपश्री उदासीनरूप से ज्ञाता रहते हैं। देखो, ज्ञानी की दशा! कोई स्तुति करे या निन्दा, ज्ञातापना छूटता नहीं।

माघ कृष्ण सप्तमी, गुरुवार। रात्रि में बारह बजे के बाद स्वप्न आता है। जिसमें पारदर्शी विराट व्यक्तित्व के धारक गुरुदेवश्री को प्रकाश सहित ओम्कार दिखता है। ओमकार ध्वनि - जिनवाणी — सम्यग्ज्ञान प्रकाश प्रगट होने में निमित्त है न!

इस वर्ष में जीवन में सर्व प्रथम बार तीर्थयात्रा का योग बनता है और वह भी एक निर्वाणधाम की। माघ कृष्ण दशमी को मोक्षधाम के पावन यात्री ज्ञानभास्कर गुरुराज, तीन सौ भक्तों सहित पदविहार करके सोनगढ़ से पालीताना पधारते हैं। यहाँ तीन दिन विराजते हैं। पाँच पाण्डव और करोड़ों मुनिवरों के पावन चरण-कमलों से पवित्र ऐसी, तीन पाण्डव तथा आठ करोड़ मुनिराजों की निर्वाणभूमि श्री शत्रुंजय सिद्धक्षेत्र की यात्रा त्रयोदशी के दिन अनोखे उत्साह, उमङ्ग और भक्तिभावपूर्वक होती है। उस प्रसङ्ग में आपश्री फरमाते हैं : 'राग वह विपरीत परिणति होने से शत्रु है और उस राग रहित परिणमना — उस पर विजय प्राप्त करना - वह आत्मा का स्वभाव होने से, आत्मा ही वास्तव में शत्रुंजय है।'

पालीताना गाँव के दिगम्बर जिनमन्दिर में भी भक्ति का कार्यक्रम उल्लासयुक्त होता है। यहाँ, इस निर्वाणधाम की यात्रा और जिनेन्द्रदेव की उपशमरस भरपूर वीतरागी शान्तमुद्रा के दर्शन करते हुए पूज्य बहिनश्रीबेन को एक कमी चुभती है कि अपने को सोनगढ़ में भगवान के दर्शन नहीं मिलते। साक्षात् परमात्मा का तो विरह है ही, परन्तु उनकी मुद्रा के दर्शन भी नहीं मिलते; इसलिए एक जिनमन्दिर होवे तो अच्छा ऐसी भावना जगती है। वीतरागी भगवान की स्थापना करने की यह भावना जिनेन्द्रभक्त गुरुदेवश्री के पास पहुँचती है और उन्हें भी वैसे भाव जागृत होते हैं।

सीमन्धर लघुनन्दन कहान गुरुदेव को, स्वयं पर सीमन्धरनाथ का अलौकिक उपकार होने से, उनके प्रति अनहद भक्ति है। कभी-कभी उनका स्मरण आने पर दर्शन-विरह से नेत्र आँसुओं से भर जाते हैं। सीमन्धरदर्शन की यह छटपटी, कभी ऐसी तीव्रता को पाती है कि भगवान को भावना में कागज लिखा जाता है :

स्वस्ति श्री महाविदेह क्षेत्रमां, जीहाँ बिराजे तीर्थंकर वीश,
तेने नमावुं शीश, कागल लखुं नाथजी....
भरतक्षेत्रथी लखीतंग जाणजो, आप दर्शन ईच्छक दास,
राखुं तुम आश, कागल लखुं नाथजी....
में तो पूर्वमां खामी राखी घणी, जेथी तुम दर्शन रह्या दूर,
न पोंचुं हजुर, कागल लखुं नाथजी....
आडा पहाड पर्वतो ने डुंगरा, जेथी नजर नाखी नव जाय,
दर्शन केम थाय, कागल लखुं नाथजी....
देवे पांख आपी होये पिंडमां, ऊडी आवुं देशावर दूर,
तो पहोंचुं जरूर, कागल लखुं नाथजी....
ओछुं अधिक प्रभुजी जे लख्युं, माफ करजो जरूर जिनराय,
लागु तुम पाय, कागल लखुं नाथजी....

पालीताना में श्वेताम्बर के एक प्रसिद्ध आचार्य कहते हैं : 'केवली पहले समय में वाणी ग्रहण करते हैं और दूसरे समय में छोड़ते हैं।' समाधान : 'नहीं, ऐसा नहीं है। ज्ञानी हो या अज्ञानी - कोई भी जीव, वाणी आदि पर को ग्रहे या छोड़े नहीं। अरे! ज्ञानी तो वास्तव में राग को भी ग्रहे या छोड़े नहीं।'

भरतक्षेत्र के भव्य जीवों पर करुणा करके श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेव ने भव्य भेंटरूप प्रदत्त श्रीसमयसारजी शास्त्र पर समयसारभक्त गुरुराज चैत्र शुक्ल अष्टमी के दिन, तीसरी बार के हितकारी प्रवचन शुरु करते हैं।

परिवर्तन के बाद प्रथम बार ही सोनगढ़ के अतिरिक्त अन्य नगर में चातुर्मास करने के निमित्त से विहार करने का प्रसङ्ग बनता है। राजकोट के तत्त्वप्रेमी जिज्ञासुओं के आग्रह से चातुर्मास करने के लिए उस तरफ विहार करते हुए एक गाँव आता है। वहाँ रात्रि में चिन्तन-मन्थन के समय विचार आता है - प्रश्न उठता है — कि आत्मा की कितनी शक्तियों में अशुद्धता होती है ? यद्यपि अशुद्धता बहुत शक्तियों में होती है, तथापि गिनती करने पर 21 शक्तियाँ लक्ष में आती हैं।

परिवर्तन के पहले सम्प्रदाय का अन्तिम चातुर्मास भी विक्रम संवत् 1990 में राजकोट के आँगन में हुआ था और अब परिवर्तन के बाद बाहर गाँव का पहला चातुर्मास भी राजकोट में होता है।

राजकोट, वैशाख कृष्ण त्रयोदशी, सोमवार। एक मंगलमय स्वप्न में 'मैं तीर्थंकर हूँ' — ऐसा भाव आता है और मानो कि तीन लोक के जीवों के हित की पुकार करते हो — ऐसा ज्ञात होता है।

वैशाख शुक्ल दूज : भक्तों के तारणहार कृपालु गुरुदेवश्री इस मानव जीवन के पचासवें वर्ष में प्रवेश करते हैं। भक्त भावना भाते हैं :

भव्य जीवों के अन्तर में आत्मार्थीपने की बुआई करनेवाले हे गुरुदेव! आपश्री शाश्वत विराजो और जगत के जीवों पर आपश्री की छाया अमर रहो।

हे मुमुक्षुसमाज सृजनहार! आपश्री निरन्तर चैतन्यप्रकाश से प्रकाशवान हो — आलोकित हो, इसलिए कदाचित् आपश्री की मणिरत्नों के दीपक से आरती उतारें तो भी क्या?

हे सुखभण्डार ज्ञायक की मधुर वायु बहानेवाले! आपश्री सदा चैतन्य-आनन्द-सागर में स्नान कर रहे हो, इसलिए कदाचित् आपश्री का क्षीरसागर के जल से अभिषेक करें तो भी क्या?

हे स्वानुभूतिमय सत्धर्म को पुनः प्रकाशित करनेवाले! आपश्री नित्य चैतन्यमय रत्नत्रय से शोभित हो, इसलिए कदाचित् आपश्री को जड़ हीरे-रत्नों से सम्मानित करें तो भी क्या?

हे जैनजगत के अनुपम तेजस्वी तारे! आपश्री ने हम भक्तों को चैतन्यरूप आत्मदेव प्रदान किया है, इसलिए कदाचित् आपश्री के चरण-कमल में तन-मन-धन... अरे... सर्वस्व न्यौछावर करें तो भी क्या? क्योंकि आपश्री के अलौकिक-अनुपम-अद्‌भुत — अपार-अचिन्त्य उपकारसिन्धु के समक्ष यह लौकिक जड़ चीजें तो अति तुच्छ-स्थूल हैं।

हम, विवेकहीन अन्धश्रद्धा को सम्यग्दर्शन मानते थे। आपश्री ने कहा : 'भेदज्ञान हुए बिना सम्यग्दर्शन कैसा?' हम, स्वानुभूति रहित बहिर्लक्षी ज्ञान को सम्यग्ज्ञान जानते थे। आपश्री ने बतलाया : 'स्वसंवेदन प्रगट हुए बिना सम्यग्ज्ञान कैसा?' और हम, आत्मस्थिरता रहित शुभक्रिया को सम्यक्‌चारित्र स्वीकार करते थे। आपश्री ने फरमाया : 'वीतरागपरिणति बिना सम्यक्‌चारित्र कैसा?'

वास्तव में आपश्री अनुभवपूर्वक की निशङ्कता से सदा ज्ञानानन्दसागर को उछालनेवाले, अत्यन्त उल्लसित भाव से भगवान आत्मा के गीत गानेवाले और अध्यात्म की अमृतवर्षा बरसानेवाले इस काल के अद्वितीय युगपुरुष-युगसृष्टा हो। आपश्री वस्तुविज्ञान के सिद्धान्तों को समझानेवाले एक अध्यात्म वैज्ञानिक हो। अनुभव की मुद्रा-छापवाली, आगम की साक्षीपूर्वक की और तर्क-न्याय से अबाधित ऐसी अद्‌भुत वाणी के स्वामी बहुश्रुतधारी हो। ज्ञानचक्र द्वारा अज्ञान का नाश करनेवाले चैतन्यचक्रवर्ती हो। हमारा जो कुछ वैराग्य, ज्ञान, आराधना, भावना, रुचि, लगनीमय आत्मजीवन है, उसके निर्माता-दाता-मूल आपश्री ही हो। मात्र आज ही नहीं, पंचम काल के अन्त तक भी जो कोई मार्गप्राप्ति करेगा, वह आपश्री के प्रत्यक्ष या परोक्ष उपकार से ही प्राप्त करेगा। बस, एक ही भावना है कि आपश्री हमें केवलज्ञान पाने तक साथ-साथ रखें...।

इस प्रसङ्ग में देखें, आपश्री के जीवन के महत्व के वर्षों की सूची :

★ विक्रम संवत् 1946 : जन्म वर्ष। बालपन के 13 वर्ष उमराला में व्यतीत हुए।

★ 13 वर्ष की उम्र में, विक्रम संवत् 1959 में, स्थायी रहने के लिए पालेज जाना हुआ।

★ 17 वर्ष की उम्र में, विक्रम संवत् 1963 में, व्यापार करने के लिए दुकान पर बैठना हुआ।

★ 22 वर्ष की उम्र में, विक्रम संवत् 1968 में, 09 वर्ष पालेज में बिताकर, धर्म का अभ्यास करने और दीक्षा लेने के हेतु दुकान छोड़ दी।

★ 24 वर्ष की उम्र में, विक्रम संवत् 1970 में, 2 वर्ष धार्मिक अभ्यास करके स्थानकवासी सम्प्रदाय में दीक्षा ली।

★ 32 वर्ष की उम्र में, विक्रम संवत् 1978 में, दिगम्बर सन्त श्री कुन्दकुन्दाचार्य रचित समयसार प्राप्त हुआ।

★ 45 वर्ष की उम्र में, विक्रम संवत 1991 में, 21 वर्ष दीक्षापर्याय में रहकर, सोनगढ़ में सम्प्रदाय परिवर्तन किया।

★ 48 वर्ष की उम्र में, विक्रम संवत 1994 में, 03 वर्ष 'स्टार ऑफ इण्डिया' में निवास करके, 'स्वाध्याय मन्दिर' में पदार्पण किया।

★ 49 वें वर्ष में, विक्रम संवत् 1995 में, जीवन में प्रथम बार सिद्धिधाम की यात्रा की।

सुवर्ण जन्म-जयन्ती प्रसंग में प्रस्तुत है भावस्तुति..... :

युगपुरुष उसे कहते हैं जो भ्रमित युग को सन्मार्ग बतलाये, समस्त युग पर जिसकी छाप पड़े। गुरुदेवश्री, मात्र सन्मार्ग बताते ही नहीं, स्वयं उस पर चलते भी है। आपश्री ऐसे युगपुरुष हैं कि जिन्होंने अपने जीवन में तो आमूल परिवर्तन किया ही है, साथ-साथ अनेक सुपात्र भक्तों के जीवन में भी परिवर्तन लाये हैं, ला रहे हैं। इस महापुरुष ने अध्यात्मक्रान्ति करके बाह्य क्रियाकाण्ड में फँसे हुए जैनसमाज को शाश्वत शान्ति-सुख-प्राप्ति का मार्ग बतलाया है। सोते हुए समाज को झकझोरा है, जगाया है और सचेत-सावधान किया है।

आपश्री सचमुच ही युगपुरुष हैं, क्योंकि आपश्री युग से नहीं, परन्तु युग आपसे प्रभावित हुआ है। योगीराज गुरुदेवश्री पर भौतिकयुग का कोई प्रभाव दिखाई नहीं देता। इस भोगप्रधान युग में, जब पामर जीव विषयभोगों में फँस गये हैं, तब कहान गुरुराज द्वारा प्रवाहित अध्यात्मगंगा की धारा ने हजारों जीवों का जीवन बदल दिया है। हजारों जिज्ञासु गहरा तात्त्विक अभ्यास करने लगे हैं और अध्यात्ममय तत्त्वचर्चा में रस लेने लगे हैं।

आश्चर्यों के भण्डार युगप्रधानी गुरुदेवश्री की कार्यशैली भी अद्‌भुत है। आपश्री प्रवचन और तत्त्वचर्चा के अतिरिक्त किसी प्रवृत्ति में भाग नहीं लेते, तथापि वीतरागमार्ग की प्रभावना दिन-प्रतिदिन सहजरूप से वृद्धिंगत होती जा रही है। यह आपश्री का पुण्यप्रभाव देखकर, आश्चर्यचकित हो जाते हैं।

यह एक निर्विवाद सत्य है कि गुरुदेवश्री इस काल के एक महान आध्यात्मिक क्रान्तिकारी हैं कि जिन्होंने स्वयं का आत्महितकारी पन्थ तो प्रशस्त किया है ही, साथ-साथ वीतरागी वाणी बहाकर जैनजगत में अभूतपूर्व धर्मक्रान्ति करके हजारों जीवों को आत्मार्थी-मोक्षार्थी बनाया है। आज के मङ्गलमय प्रसङ्ग में आपश्री के चरणों में उपकृत भविकजनों का कोटि-कोटि वन्दन!

धन्य धन्य श्री उमराला गाम, प्रगट्या धर्मधुरंधर कहान;
तारां शां शां करुं सन्मान, जगमां सत्य प्रकाशनहार.....
ओगणीस सो छेंतालीस वर्षे, वैशाख बीज रविवारे;
झणहण जगमां भानुप्रकाश, जन्म्या कहानकुंवर गुरुराज....
माता उजमबा कूख नंद, जन्म्या भारतना आ चंद....... धन्य० 1.

प्रभु निर्मल बाल लीलाएं, तुं वधियो विवेकभावे;
रहेतो अंतरथी उदास, अद्‌भुत एवी तारी बात....... धन्य० 2.

कुंदामृत पान पीधां, निज आतमकाज कीधां;
जिननी साची राखी टेक, जाग्यो सत्य सुकानी एक.....
तारी महिमा अपरंपार, तारां शां करीए सन्मान....... धन्य० 3.

प्रभु ज्ञान खजाना खील्या, तुज आतम मांही प्रकाश्या;
दीपे बाह्यांतर गुरुराज, जगमां सत्य प्रकाशनहार.....
शोभे जन्मभूमिनां स्थान, जन्म्या लाडीला गुरुकहान.....
धन्य धन्य मात-पिता कुल जात, जन्म्या जगना तारणहार.....
मारा आतमना आधार, जन्म्या जगना तारणहार....... धन्य० 4.

सीमंधर-सुत जन्म्यां, गगने वाजिंत्रो वाग्यां;
इन्द्रो आनंद-मंगल गाय, जन्म्या कहानकुंवर गुरुराज.....
माता उजमबाना लाल, जयजयकार जगतमां आज....... धन्य० 5.

जगमां बहु हतां अंधारां, सूझे नहि मार्ग लगारा;
साथी साचो जाग्यो कहान, जगमां सत्य प्रकाशनहार....... धन्य० 6.

प्रभु मंगलमूर्ति तमारी, तुझ दर्शने हर्ष अपारी;
वंदन होजो अगणित वार, जगमां सत्य प्रकाशनहार....... धन्य० 7.

राजकोट में ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी के दिन महात्मा गाँधी, कस्तूरबा और महादेवभाई देसाई, वीतराग प्रधानी पूज्य गुरुदेवश्री का व्याख्यान सुनने आते हैं। निर्विकल्प तत्त्व की धुन लगानेवाले पूज्य गुरुदेवश्री दया/अहिंसा का स्वरूप समझाते हुए कहते हैं : 'आत्मा पर की दया पाल ही नहीं सकता, क्योंकि वह पर आत्मा स्वतन्त्र है। उसकी दशा का कर्ता वह स्वयं है। तथापि कोई दूसरा जीव ऐसा माने कि मैं परजीव को जिलाता हूँ, पर की दया पाल सकता हूँ, तो वह मान्यता मिथ्याभ्रम है और वह जीव, अज्ञानी मूढ़ है।'

चातुर्मास के अवसर पर जैनविश्व को जागृत करनेवाले पूज्य गुरुदेवश्री राजकोट में विराज रहे हैं। इस दौरान श्री समयसार, श्री पद्मनन्दिपंचविंशति, श्री आत्मसिद्धि और 'अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे?' — इस काव्य पर सरल सादी भाषा में, तथापि अद्‌भुत, रोचक, विस्तृत प्रवचन होते हैं।

'आत्मसिद्धि' की भाषा सरल-सुगम होने पर भी, उसमें गूढ़ ज्ञानभाव भरे हुए हैं। इस कारण यदि किसी आत्मदृष्टिप्राप्त सन्त द्वारा उसके गूढ़ रहस्यों का उद्‌घाटन होवे तो मुमुक्षुओं को विशेष हित का कारण हो — ऐसी उत्तम भावनापूर्वक कितने ही जिज्ञासु मूलमार्गरहस्यज्ञ गुरुदेवश्री से प्रार्थना करते हैं। स्वरूपानुभवी गुरुदेवश्री कृपा करके प्रार्थना स्वीकार करते हैं और अपूर्व प्रवचन होते हैं।

जिनका संसार का अन्त अति निकट है, अनेक वर्षों से तत्त्वज्ञान का प्रपात बहाकर भवछेदक ज्ञान का जो प्रचार-प्रसार कर रहे हैं, ऐसे गुरुदेवश्री के मुखारविन्द से प्रतिदिन सबेरे एक घण्टे ज्ञान-वैराग्य से झरती वाणी का प्रवाह बहता है। गुरुवर्य 'आत्मसिद्धि' की गाथा के प्रत्येक शब्द खोलकर, उसमें विद्यमान सूक्ष्म गहरे अभिप्राय

को अलौकिक रीति से प्रगट करते हैं। छह पद आदि विषय का अनेक प्रकार से विश्लेषण कर तथा अनुभवगर्भित तर्क-न्याय और सरल दृष्टान्त देकर, आत्मार्थिता को उजागर करते हैं। अनुपम वचनयोगी गुरुराज प्रत्येक विषय को ऐसा स्पष्ट करते हैं कि सभी जीवों को स्पष्ट समझ होकर, अपूर्व भाव दृष्टिगोचर होते हैं और पुरुषार्थ करने के लिए प्रेरित होते हैं। 'आत्मसिद्धि' के मर्म को विकसित कर-विस्तार कर तथा उसके गहन भाव हृदय में सीधे उतर जायें — ऐसी असरकारक तीक्ष्ण वाणी द्वारा समझाकर, गुरुदेवश्री अपार-परम उपकार कर रहे हैं। श्रीमद्जी द्वारा बनाया गया मोक्षमार्ग के सुन्दर चित्र में कहान गुरुराज अलौकिक रंग भरते हैं। मानो कि श्रीमद्जी द्वारा रोपे गये अध्यात्म तत्त्वज्ञान के बीज 43 वर्ष पश्चात् वृक्षरूप से फलते हैं।

कर्म के निमित्त से अपने आपको पराधीन समझकर निर्बलता-पुरुषार्थहीनता का अनुभव करते हुए जीवों को स्वाधीन सुख का मार्ग बतलानेवाली गुरुदेशना मिलती है : 'जब तक संयोग में-निमित्त में अथवा पुण्य-पाप के राग में — कहीं भी प्रभुता स्थापित करेगा, उससे महत्ता मानेगा, तब तक आत्मा हाथ नहीं आयेगा; इसलिए अन्तर में एक बार अपनी प्रभुता का स्वीकार कर। बापू! तेरी प्रभुता की कोई सीमा नहीं है, तथापि पुण्य और उसके फल में मिठास क्यों आती है ? भगवान! तू तेरी जाति को भूल गया है और यही तेरी महान भूल है।' अहो! आत्मशुद्धिरूप निर्दोष भाव में से प्रवाहित इस ज्ञान-वैराग्य की गंगा का रसपान तत्त्वपिपासु भावभीने भक्त कर रहे हैं, यह दृश्य कैसा रोमांचकारी है!

'श्री आत्मसिद्धि' और 'अपूर्व अवसर' के ये प्रवचन, कालान्तर में पुस्तकाकाररूप प्रसिद्ध होते हैं।

सीमन्धरदूत पूज्य गुरुदेवश्री, चातुर्मास के दौरान यहाँ राजकोट में विराज रहे हैं। इस अवधि में गुरुदेवश्री के प्रवचन में जिनप्रतिमा सम्बन्धी बात सुनकर श्री नानालालभाई जसाणी और उनके भाई सोनगढ़ में एक जिनमन्दिर बनाने की भावना उत्साहपूर्वक व्यक्त करते हैं। इस मंगल भावना की अनुमोदनरूप उमंग पूर्ण भक्ति भी एक घण्टे होती है।

समयसारजी के कलश 47 पर प्रवचन के समय गुरुवर्य फरमाते हैं : 'ज्ञानी को बंध नहीं।' इस बात से श्रोताजनों में आश्चर्यभरी खलबलाहट होती है कि 'बंध तो दसवें

गुणस्थान तक होता है न ? तथापि ज्ञानी को चौथे गुणस्थान में भी बंध नहीं ?' तत्त्वगम्भीर गुरुदेवश्री समझाते हैं : 'भाई ! ज्ञानी को अबंधस्वरूप द्रव्य की दृष्टि से अबन्धभाव प्रगट हुआ है और मिथ्यात्वरूप बंधभाव की निवृत्ति हुई है – अभाव हुआ है, इसलिए उसे बन्ध नहीं। इस प्रकार स्वभावदृष्टि का जोर बतलाना है तथा समयसार में मिथ्यात्वसहित बंध को ही बंधरूप गिनने में आया है।'

यहीं, श्री गोकलदास गाँधी के साथ चर्चा होती है। वे कहते हैं : 'मेघकुमार के जीव ने दया पाली, इसलिए संसार घटाया तथा साधु को आहार देने से संसार घटता है।' सिद्धान्तमर्मज्ञ पूज्य गुरुदेवश्री उत्तर देते हुए कहते हैं : 'परजीव की दया पालने से तथा साधु को आहार देने से संसार घटे — ऐसा होता ही नहीं।' बात सत्य ही है न कि क्या पर के लक्ष से संसार कम होता है ?

वस्तु स्वरूप के यथार्थ प्रतिपादक गुरुवर कहान फरमाते हैं : 'भगवान की भक्ति, पूजा इत्यादि में राग मन्द करे तो शुभभाव होता है; परन्तु उस राग से, श्वेताम्बर मत कहता है तदनुसार, धर्म होता है ऐसा नहीं और स्थानकवासी सम्प्रदाय कहता है वैसे, जिनप्रतिमा नहीं होती ऐसा भी नहीं।' बात तो न्यायपूर्ण मुद्दे की है न!

एक भाई कहते हैं : 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है उसका पता नहीं लगता।' तर्क संगत समाधान करते हुए गुरुराज कहते हैं : 'भाई ! पता नहीं लगता, वही बताता है कि वह अज्ञान है; सम्यग्ज्ञान नहीं।'

जैसे मलिन पानी निर्मल हो जाये; वैसे सम्प्रदाय का आग्रह छूट जाने पर अनेक सुपात्र जीव कल्याणमूर्ति गुरुदेवश्री के दर्शन से धन्य बनते हैं और अमृतमय कल्याणकारी शान्त-शीतल वाणी सुनकर पावन होते हैं। अध्यात्म से भरपूर व्याख्यान सुनकर भक्तों को अन्दर में उमंगभरी भावना जगती है कि गुरुदेवश्री ने अपने घर का नया कुछ नहीं कहा। जो सनातन सत्य है, तीर्थंकरों की दिव्यवाणी में जो तत्त्व आया है, श्री कुन्दकुन्ददेव आदि आचार्यों ने शास्त्रों में जो वस्तुस्वरूप प्रतिपादन किया है, उसी सत्य तत्त्व और वस्तुस्वरूप का मर्म आपश्री अपनी सीधी, सुगम भाषा में खोलते हैं। श्री कुन्दकुन्द आचार्य की गहन-गम्भीर गाथाओं का विशद विवेचन श्री अमृतचन्द्राचार्य ने किया, तत्पश्चात् उसका स्पष्टीकरण इस काल में सुन्दर, सरल और हृदयग्राही भाषा में यदि किसी ने किया हो तो

वे गुरुदेवश्री ही हैं, जिससे साधारण जीवों को भी तत्त्व समझने में देर नहीं लगती। वर्तमान काल में गुरुदेवश्री ही अनोखे महामानव हैं कि जिन्होंने एक भी अक्षर लिखे बिना, मात्र वाणी के बल से इतनी बड़ी धर्मक्रान्ति की — यह भी एक आश्चर्य ही है। गुरुदेवश्री की वाणी, वह अन्तर-अनुभव का स्पर्श करके निकला हुआ अमृत है।

वीरमार्ग प्रभावक धर्म महारथी गुरुदेवश्री राजकोट के निवास के समय तत्त्व की भरमार करते हैं। आध्यात्मिक प्रवचनों द्वारा भव्यजीवों को झकझोर कर, साधनामार्ग की ओर प्रेरित करते हैं; अनेक तत्त्वपिपासु जीवों की ज्ञानतृषा शान्त कर, आत्मजीवन अर्पण करते हैं और वीतरागमार्ग में स्वानुभूति की प्रधानता है — यह बात जगत में गुंजायमान करते हैं। भक्तों में आत्मार्थिता जगानेवाले पूज्य गुरुदेवश्री राजकोट में वीतरागवाणी की अमृत धारा बरसा रहे हैं और यह संवत् 1995 का वर्ष पूर्ण होता है।

स्वरूप दानदाता, स्वरूप जीवन जीनेवाले, आराधना का सुमधुर मार्ग बतलानेवाले गुरुवर कहान की जय हो.... विजय हो...

★ ★ ★

विक्रम संवत् 1996 (सन् 1939-40)

निर्वाणक्षेत्र गिरनारजी यात्रा वर्ष

राजकोट में 1995 के चातुर्मास के प्रसंग पर दस महीने और दस दिन रहना होता है। इस प्रसंग पर अपूर्व प्रवचन हुए उसके हर्षोल्लास में एक वकील मुमुक्षु भाई घोषणा करते हैं : 'जो मुमुक्षु, दस महीने और दस दिन के प्रवचनों का सार दस लाईन में लिखेगा, उसे दस रुपये ईनाम मिलेंगे।' कैसी सुन्दर भावना!

तो एक भाई कहते हैं : 'दस महीने में अकेला आत्मा ही कूटा।' अरे! आत्मा क्या चीज है, कैसी महान वस्तु है उसका जगत के जीवों को कहाँ पता है!

राजकोट में चातुर्मास पूर्ण करके, धर्मप्रभावक-ज्ञानदिवाकर पूज्य गुरुदेवश्री सोनगढ़ की ओर विहार करते हैं।

कान्तिमय आकर्षक गौरवर्ण काया, शान्ति से सुशोभित पूर्णिमा के चन्द्रसमान आभापूर्ण मुखमण्डल, बाल सहज निर्दोष तथापि वैभवशाली अत्यन्त प्रभावक प्रसन्न व्यक्तित्व, चमकदार गम्भीर आँखें आदि बाह्यवैभव के उपरान्त, कमल समान बाह्य भावों से निर्लेपता, दिव्य ज्ञानवैभव, निष्कारण करुणा भण्डार आदि अन्तरंग गुण-समुद्र, विराट आत्मा गुरुदेवश्री की बात दुनिया से न्यारी है। अध्यात्म के उन्नत शिखर पर विराजमान गुरुदेवश्री की महत्ता या गहराई की थाह लेने पर अल्प मतिवन्त का माप छोटा पड़ता है। मर्यादित शब्दशक्ति, गुरुदेवश्री की अमर्यादित महानता का पूरा-पूरा न्याय कहाँ से दे सके?

ऐसे, अध्ययन-मनन-मन्थन में मग्न रहनेवाले गुरुदेवश्री का व्याख्यान सुनने के लिए, कोठारिया जैसे छोटे गाँव में भी हजार-बारह सौ जिज्ञासु उमड़ते हैं। गाँव में प्रवचन 'हॉल' कहाँ से हो? इसलिए बगीचे में एक वृक्ष के नीचे चबूतरा है उस पर पाट रखी जाती है। उस पाट पर बैठकर पूज्य गुरुदेवश्री प्रवचन देते हैं और चारों ओर घेरकर श्रोताजन बैठते हैं। भगवान के समवसरण जैसा दृश्य लगता है! यहाँ चैतन्य का अभूतपूर्व रस जगानेवाले कहान गुरुदेवश्री 'पद्मनन्दि पंचविंशति' पर प्रवचन देते हैं।

यहाँ से गोण्डल, जेतपुर होकर, बालब्रह्मचारी बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ भगवान के तीन कल्याणकों से शोभित गिरनार सिद्धक्षेत्र की यात्रा को तीन सौ भक्तों सहित पधारते हैं। फाल्गुन कृष्ण अमावस्या से फाल्गुन शुक्ल दूज ऐसे तीन दिन तक गिरनार गिरि पर अध्यात्म और भक्ति की धुन मचती है। अभी पहाड़ पर चढ़ने की शुरुआत होती है वहाँ तो, चातुर्मास न होने पर भी, वर्षा बरसती है। मानो कि तीर्थंकरों के पथानुगामी का स्वागत! पवित्र पुरुष के पावन चरण के स्पर्श से पर्वत भी पवित्र-स्वच्छ बनता है। वातावरण में भी अजब सी चमकार ज्ञात होती है।

पहली टोंक पर जिनमन्दिर में अनुपम भक्ति उछलती है। श्री नेमिनाथ भगवान की दीक्षा और केवलज्ञान प्राप्ति का धाम, सहस्राम्रवन में अपूर्व भाव उछलने से गुरुदेवश्री साष्टांग नमस्कार करते हैं और संयम भावनामय वैराग्य भरपूर स्तवन की धुन जमती है।

तारुं जीवन खरुं तारुं जीवन, जीवी जाण्युं नेमनाथे जीवन.....
सुतां रे जगतां बेसतां उठतां, हैडे रहे तारुं खूब रटन...... तारुं०
गिरि गुफामां नेम प्रभुजी, संयम केवल शिव रमन...... तारुं०
कथनाक्षरी अक्षर न पावे, अनंत गुणाक्षरी तारुं लेखन..... तारुं०
गिरिनगरना वीतराग स्वामी, दर्शन द्योने नाथ दयाल..... तारुं०

✯✯✯✯

बाल ब्रह्मचारी जिणंद पद धारी,
सेवे सुरनर चंदा रे;
गिरनार गिरि नेमनाथ विराजे,
भेटंता टले भव फंदा रे....

बाल ब्रह्मचारी विषय निवारी,
निस्नेही गुणराया रे;
सचित्त पुद्गल भोग क्षीण जाणी,
संयम लीधो गिरनारी रे....

जिणंद पद धारी रागद्वेष निवारी,
घाति करम क्षयकारी रे;
सहेसावने केवल प्रगटावी,
कल्याण मंगल जयकारी रे....

अयोगी गुणस्थान ग्रहीने,
जोगातीत पद लीधो रे;
समश्रेणी छे पांचमी टूंके,
आत्मप्रदेश घन कीधो रे....

जहाँ समश्रेणी में सिद्धालय में नेमिप्रभुजी विराजमान हैं, उस निर्वाणभूमि पाँचवीं टोंक पर भी डेढ़ घण्टे अध्यात्मरस में सराबोर-तल्लीन होकर कहानगुरु पद गवाते हैं। सोनगढ़ में भगवान पधारें — ऐसी भावनापूर्वक की भक्ति भी होती है। जीवन में कभी नहीं देखी ऐसी कोई अद्भुत-अलौकिक-अपूर्व भावना से इन पदों की तथा भक्ति की धुन जमती है। जिन्होंने यह सब प्रत्यक्ष देखा-सुना है, उनके हृदय में और कर्ण में वर्षों तक उसके मीठे नाद गूँजते रहेंगे। ज्ञान की मस्ती और वैराग्य की धुनपूर्वक मधुर स्वर द्वारा तीर्थंकर लघुनन्दन गुरुदेवश्री गवाते हैं :

हुं एक शुद्ध सदा अरूपी, ज्ञान-दर्शनमय खरे;
कंई अन्य ते मारुं जरी, परमाणुमात्र नथी अरे!
एह परमपद प्राप्तिनुं कर्युं ध्यान में,
गजा वगर ने हाल मनोरथरूप जो;
तोपण निश्चय राजचंद्र मनने रह्यो,
प्रभु आज्ञाऐ थाशुं ते ज स्वरूप जो.......
अपूर्व अवसर ऐवो क्यारे आवशे ?....

भावभीनी भक्ति से शान्त आध्यात्मिक वातावरण छा जाता है और उमंग भरे स्मरण अन्तर में उत्कीर्ण हो जाते हैं। यात्रा करके नीचे आते ही भक्त उमंग से सहज बोल उठते हैं : 'मानो हम तो मोक्ष में जाकर आये हों — ऐसा लगता है। गुरुदेवश्री ने सिद्धिधाम की

यात्रा करायी, सिद्ध भगवन्तों की पहचान करायी, सिद्धपद की प्राप्ति का उपाय बतलाया और सिद्धस्वरूप आत्मा भी बतलाया। अहो! इन सिद्धों और मुनिराज के धाम में मानो चारों ओर सिद्ध और मुनिराज विराजमान हों और उनके दर्शन होते हों – ऐसा लगता था।'

यात्रा में साथ आये हुए नानालालभाई जसाणी को आदर्श जीवन जीनेवाले पूज्य गुरुदेवश्री कहते हैं : 'पैसा खर्च करने से कम नहीं होता, परन्तु पुण्य घटने से बिना खर्च किये भी कम हो जाते हैं।'

उत्साहपूर्ण यात्रा के पश्चात् जूनागढ़ में एक भाई के साथ चर्चा होने पर वह कहता है : 'हम भगवान की भक्ति वीतरागता के लिए करते हैं, राग के लिए नहीं; इसलिए भक्ति में राग कहाँ आया?' समाधानकारी प्रत्युत्तर प्रदान करते हुए पूज्य गुरुदेवश्री कहते हैं : 'भाई! भगवान की भक्ति का भाव राग ही है, उसमें वीतरागता नहीं है; इसलिए उससे वीतरागता या मुक्ति कहाँ से मिलेगी?' भावना-प्रयोजन चाहे जो हो, परन्तु परद्रव्य के लक्ष से राग-विकार ही होता है, यह सिद्धान्त ख्याल में आता है न!

दूसरा प्रश्न होता है : 'दान, अहिंसा इत्यादि में राग कहाँ से आया?' राग किस प्रकार होता है, यह बतलाते हुए पूज्य गुरुदेवश्री फरमाते हैं : 'ज्ञानस्वरूप आत्मा को छोड़कर, कोई भी बाह्य विषयों में उपयोग जाता है तो राग होता है; इसलिए दानादिक में राग ही है।' दानादि का भाव राग-विकल्प होने से आस्रव है, परन्तु धर्म नहीं। समझ में आया?

इस प्रकार सौराष्ट्र के दूसरे सिद्धिधाम गिरनारजी की जीवन में पहली बार की यात्रा उल्लासपूर्ण भक्ति और तत्त्वज्ञानमय चर्चापूर्वक पूर्ण होती है।

गत वर्ष संवत् 1995 में प्रथम यात्रा निर्वाणक्षेत्र शत्रुंजय की हुई थी और अब इस वर्ष द्वितीय यात्रा निर्वाणभूमि गिरनारजी की हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री और भक्तों को निरन्तर भावना तो रहती ही है कि प्रतिदिन जिनेन्द्रदेव के पावन दर्शन-पूजन-भक्ति का लाभ प्राप्त हो। परन्तु अभी तक सोनगढ़ में जिनमन्दिर नहीं होने से ऐसा योग नहीं बना। इसलिए जहाँ जिनमन्दिर मिले, जिनेन्द्र भगवान को निहारने का-दर्शन का-प्रसंग बने तो तुरन्त ही भक्ति का प्रपात बहने लगता है। जिसकी चाहना-छटपटी होवे, वह मुश्किल से मिले तो भावना की उमंग का कहना ही क्या?

भावना उछले बिना रहती ही नहीं — ऐसा अनुभव प्रत्येक भक्त को यात्रा में होता है।

गिरनारजी की यात्रा का कार्यक्रम पूर्ण करके सोनगढ़ की ओर विहार करते हुए मार्ग में अमरेली, लाठी इत्यादि गाँवों में भी आत्मधर्म के मर्म को — तत्त्व के रहस्य को —ढिंढ़ोरा पीटकर प्रसिद्ध करके, वीतराग प्रणीत सनातन दिगम्बर जैनधर्म का विजयध्वज फहराते हैं और अनेक सुपात्र जीवों के अन्तर में व्याप्त अज्ञान-अन्धकार को दूर करके, सत् की — समझ की — ज्योति प्रगट करते हैं। अमरेली में अठारह दिन रहना होता है।

इसी वर्ष में महावीर जयन्ती के मंगल दिन श्री समयसारजी पर चौथी बार के प्रवचन शुरु होते हैं। पूज्य बहिनश्री का भक्तिभाव देखते हैं : 'गुरुदेवश्री के शब्द-शब्द में अनन्तता भरी है। गुरुदेवश्री की समयसार के अर्थ करने की शक्ति का पार पाना मुश्किल है, उसमें अनन्त रहस्य हैं।'

शीतल कल्पवृक्ष समान सद्‌गुरुदेव वैशाख महीने में पुनः स्वर्णपुरी पधारते हैं और ग्रीष्म ऋतु की भीषण गर्मी में भी अध्यात्म की अमृतवर्षा बरसाकर भक्तों को तृप्त करते हैं।

श्रावण शुक्ल त्रयोदशी के दिन नानालालभाई जसाणी के द्वारा स्वर्णपुरी में दिगम्बर जिनमन्दिर का शिलान्यास होता है। इसके साथ ही स्वर्णपुरी में जिनमन्दिर बने — ऐसी पूज्य गुरुदेवश्री ने तथा भक्तों ने भायी हुई भावना साकार होती दिखती है।

इस प्रकार, जिस वर्ष में गिरनारगिरि की प्रथम बार की मंगल यात्रा हुई और प्रभावनाकारी मंगल विहार हुआ, वह संवत् 1996 का वर्ष पूर्णता को प्राप्त होता है।

अन्तरंग विचार करने से ही जिनकी वाणी यथार्थरूप से समझ में आती है तथा जिनके विशाल ज्ञानवैभव और उज्ज्वल परिणति को पहचानने के लिए पात्रता तैयार करनी पड़ती है — ऐसे कहान गुरुवर्य के चरणकमल में अनन्त... अनन्त... नमन।

★ ★ ★

विक्रम संवत् 1997 (सन् 1940-41)

विदेहीनाथ श्री सीमन्धरभगवान के पावन पदार्पण का मंगलकारी वर्ष

ग्रन्थाधिराज समयसार, स्वरूपसाधक गुरुदेवश्री के प्रभावशाली आराधनामय जीवन का जनक है। वह प्रथम से ही आत्मसाधना में साथी रहा है। उसके गहन अवगाहन से आपश्री की परिणति में अतीन्द्रिय आनन्द का ऊफान आ रहा है और वह ऊफान, भव्य भक्तों के सद्भाग्य के उदय से मानों कि शब्द का रूप धारण करके कल्याणकारी प्रवचनरूप बहता है। समयसार की महिमा करते हुए गुरुवर कहते हैं : 'यह कुन्दकुन्दाचार्यदेव की अमर कृति है। आत्मार्थी को एक समयसार बस है।'

केवलज्ञान का विरह भुलानेवाला, भरतक्षेत्र का भगवान ऐसे इस समयसार परमागम का गुजराती में अनुवाद हो, ऐसी भावना उपकारी गुरुराज को रहती थी। यह भावना कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा के दिन शुक्रवार को फलीभूत होती है। कार्तिक माह की अष्टाह्निका के अन्तिम दिन पण्डितश्री हिम्मतभाई शाह द्वारा किये हुए गुजराती अनुवादवाला समयसारजी महोत्सवपूर्वक प्रकाशित होता है। समयसारमर्मज्ञ गुरुदेवश्री मधुर सीख देते हैं कि अहा जीवों! समयसाररूपी भेंट स्वीकार करो, इसके बिना मुक्ति नहीं होगी। यह रहे एकत्व -विभक्त शुद्धात्मा को बतलानेवाले समयसारजी परमागम के विषय में कहान गुरुदेवश्री के हृदय-उद्गार :

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

भगवान श्री कुन्दकुन्द आचार्यदेव समयप्राभृत में कहते हैं कि 'मैं जो यह भाव कहना चाहता हूँ, वह अन्तर के आत्मसाक्षी के प्रमाण द्वारा प्रमाण करना, क्योंकि यह अनुभवप्रधान ग्रन्थ है। उसमें मेरे वर्तते स्व-आत्मवैभव द्वारा कहा जाता है।' — ऐसा कहकर, छठवीं गाथा प्रारम्भ करते हुए आचार्य भगवान कहते हैं कि 'आत्मद्रव्य अप्रमत्त

नहीं और प्रमत्त नहीं अर्थात् उन दो अवस्थाओं का निषेध करता हुआ मैं एक जाननहार अखण्ड हूँ। – यह मेरी वर्तमान वर्तती दशा से कहता हूँ।' मुनिपने की दशा अप्रमत्त और प्रमत्त ये दो भूमिका में हजारों बार आती-जाती हैं, उस भूमिका में वर्तते हुए महा मुनि का यह कथन है।

समयप्राभृत अर्थात् समयसाररूपी उपहार। जैसे राजा को मिलने के लिए उपहार देना होता है; वैसे ही अपनी परम उत्कृष्ट आत्मदशा स्वरूप परमात्मदशा प्रगट करने के लिए समयसार, जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप आत्मा, उसकी परिणतिरूप उपहार देने पर परमात्मदशा-सिद्धदशा-प्रगट होती है।

यह शब्दब्रह्मरूप परमागम से दर्शित एकत्व-विभक्त आत्मा को प्रमाण करना। 'हाँ' ही भरना, कल्पना नहीं करना। इसका बहुमान करनेवाला भी महाभाग्शाली है।

★ ★ ★

इस भरतभूमि में जिसके समान दूसरी कोई रचना नहीं है — ऐसे अमूल्य समयसारजी के प्रति बहुमान से पूज्य बहिनश्री लिखती हैं : 'समयसार बहुत विचारपूर्वक, आत्मार्थतापूर्वक और बहुत भक्तिभावपूर्वक पढ़ने जैसा है।'

श्री समयसार जिनवाणी माता की जय हो....

इसी दिन रात्रि को ध्यान काल में गुरुदेवश्री को अलौकिक आह्लाद आता है।

मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी। जब जैन के नाम पर अजैन बात और संसारपोषक उपदेश चल रहा है, धर्म के बहाने अज्ञान-अन्धकार छा रहा है — ऐसे इस विषमकाल में सम्यग्ज्ञान ज्योति प्रगटानेवाले गुरुवर कहान के श्री समयसारजी पर पाँचवीं बार के प्रवचन शुरु होते हैं, जो मार्ग की परम्परा को टिकाये रखते हैं।

मार्गशीर्ष शुक्ल दशमी। आज आकार प्राप्त हो रहे जिनमन्दिर के गर्भगृह का (निज मन्दिर का) शिलान्यास होता है। आज के दिन ही तीन वर्ष पहले संवत् 1994 में 'स्वाध्याय मन्दिर' का भी शिलान्यास हुआ था।

माघ कृष्ण चतुर्दशी के दिन, प्रमुख दिगम्बर आचार्य श्री शान्तिसागरजी शत्रुंजय

सिद्धक्षेत्र की यात्रा करके संघसहित सोनगढ़ आते हैं। यहाँ अपूर्व सहजानन्दवृत्ति के धारक गुरुदेवश्री का प्रवचन सुनते हैं और समयसारजी की तेरहवीं गाथा पर सुन्दर तत्त्वचर्चा भी होती है। श्रुतलब्धिवन्त गुरुदेवश्री का तत्त्वभरपूर प्रवचन तथा तत्त्वचर्चा सुनकर और गुरुवर कहान के महान प्रभावनायोग से सौराष्ट्रभर में हो रहे दिगम्बर जैनधर्म के पुनःउद्योत को देखकर, विहार करते समय आचार्यश्री शान्तिसागरजी प्रसन्नतापूर्वक कहते हैं : 'हमें यहाँ का धार्मिक वातावरण देखकर खुशी हुई है। तीर्थंकर अकेले मोक्ष नहीं जाते। यहाँ कुछ ऐसा योग है — ऐसा हमें लगता है।' गुरुदेवश्री के प्रभावनायोग की तुलना तीर्थंकर के साथ की गयी, यह सुनकर भक्त उल्लसित होते हैं, आश्चर्य पाते हैं।

निर्माणाधीन जिनमन्दिर में विराजमान करने हेतु जिनप्रतिमाजी लेने के लिए पूज्य बहिनश्रीबेन तथा जसाणी परिवार के सदस्य जयपुर जाते हैं। एक व्यापारी के यहाँ तीन प्रतिमाएँ देखने में आती हैं। अद्‌भुत और दिव्यभाववाली शान्त-उपशम वीतरागी मुखमुद्राधारी प्रतिमाजी देखते ही पसन्द आ जाती हैं; इसलिए ट्रेन में साथ लेकर सोनगढ़ आने के लिए निकलते हैं। सोनगढ़ रेलवे स्टेशन पर भक्त, भगवान का स्वागत करने आये हैं यह देखकर विस्मय होता है - आश्चर्य होता है। भक्त कहते हैं : 'जिनेन्द्रभक्त गुरुदेवश्री प्रभात में ध्यान में बैठे थे, तब ट्रेन की तीन लाईट दिखाई दी थी। इससे ट्रेन में तीन भगवान आ रहे हैं — ऐसा संकेत लगने से हमें स्वागत करने भेजा है।' यह प्रसंग बनता है, माघ शुक्ल दूज के दिन।

जयपुर से पधारे हुए प्रतिष्ठेय भगवन्तों का स्वागत उत्साह से किया जाता है और 'स्वाध्याय मन्दिर' में पेटियाँ खोली जाती हैं। जिनेन्द्रदेव की जिनमुद्रा — कि जो वीतरागता का दर्शन कराती हैं उन्हें - देखते ही कवि या लेखक वर्णन न कर सके ऐसा आनन्द-उत्साह जागृत होता है। गुरुदेवश्री तो अन्तरंग के भक्तिभाव से स्तब्ध हो जाते हैं और नेत्रों में से अश्रुधारा बहने लगती है। ये प्रतिमाजी 'स्वाध्याय मन्दिर' के रूम में रखी जाती हैं।

अभी तो प्रतिष्ठा भी नहीं हुई, तथापि भगवान को देखकर गुरुदेवश्री को अत्यन्त उमंग-उल्लास उछलता है। 'चलो, मेरे भगवान दिखाऊँ' — ऐसा कहकर सबको

भगवान के पास ले जाते हैं। बहुत बार तो भगवान के सन्मुख बैठकर भक्तिभीने चित्त से शान्तरस से छलकता स्तवन स्वयं गाते हैं :

अमीय भरी मूरति रची रे, उपमा घटे न कोय;
शांत सुधारस झीलती रे, नीरखत तृप्ति न होय....
सीमंधर जिन दीठां लोयण आज.....
मारां सीध्यां वांछित काज, सीमंधर जिन दीठां लोयण आज....

भक्त भी भक्तिधुन मचाते हैं :

जिनवर दर्शनना जाग्या छे कोड, वीतरागी शीतल ए छांयडी;
मूर्ति जिणंदानी जगमां अजोड, सोहे छे शीतल ए छांयडी....
श्री वीतराग केरी छांयडीमां वसतां,
श्री जिनराजनां चरणकमल सेवतां;
ज्ञान दर्श चारित्रनां पूराय कोड..... वीतरागी शीतल ए छांयडी....

★★★★

देजो दिलासा दिलवर दिलना, सेवक पर करी म्हेर,
जिनवर आवो अमारा......
दास दुःखी प्रभु आप सुखी ए, जोई शको प्रभु केम,
जिनवर आवो अमारा......
सेवकने प्रभु पोताना करीने, राखो गणधरनी जेम,
जिनवर आवो अमारा......
भाग्य उदयथी दर्शन पायो, आवी छे नवनिधि घेर,
जिनवर आवो अमारा......
दर्शन वंदन पूजन करतां, आनंद थाशे ढेर,
जिनवर आवो अमारा......

श्री गुरुदेवना रोमे रोमे, वसे वीतरागी देव,
जिनवर आवो अमारा......

सीमन्धरनाथ के दिव्य सन्देश लेकर गुरुराज यहाँ पधारे हैं न! उनका परम उपकार है न! इसलिए मूलनायक के रूप में विदेहीनाथ श्री सीमन्धर भगवान विराजमान करना और फाल्गुन कृष्ण एकादशी से फाल्गुन शुक्ल दूज तक आठ दिन का पंच कल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव मनाना — ऐसा निश्चित होता है।

जैसे-जैसे प्रतिष्ठा का मांगलिक दिन, फाल्गुन शुक्ल दूज निकट आता है, वैसे-वैसे गुरुदेवश्री की और भक्तों की उत्साह-भावना बढ़ती जाती है। जिनबिम्ब प्रतिष्ठा-महोत्सव तो जीवन में कभी देखा नहीं। अरे! सौराष्ट्रभर में दिगम्बर जिनमन्दिर भी अंगुली के पोर पर गिने जा सकें उतने हैं; इसलिए यह जानने की जिज्ञासा-छटपटी बहुत ही है कि पंच कल्याणक प्रतिष्ठामहोत्सव किस प्रकार मनाया जाता है।

विधिनायक महावीरप्रभु के गर्भ, जन्म इत्यादि कल्याणक मानों साक्षात् मनाते हों, उस प्रकार हर्षपूर्वक मनाये जाते हैं। फाल्गुन कृष्ण अमावस्या को जन्मकल्याणक के दिन तो स्वर्णपुरी, कुण्डलपुर बन जाती है। नदी के किनारे मेरुपर्वत बनाया जाता है। इस प्रतिष्ठा के प्रसंग पर जूनागढ़ की तीन प्रतिमाओं सहित, कुल दस प्रतिमाओं पर प्रतिष्ठामण्डप 'कहाननगर' में गुरुवर के मंगल हस्त से अंकन्यास विधि होती है। सोनगढ़ जैसे छोटे गाँव में मोटर-कार आदि साधन तो कहाँ से हों? तथापि भक्त भक्ति-उमंग से बैलगाड़ी और घोड़ेगाड़ी में बैठकर शोभायात्रा-जुलूस में भाग लेते हैं। इस प्रसंग पर एक हाथी भी आता है। साधनों की अल्पता-न्यूनता है, परन्तु भावना की उत्कृष्टता है।

सीमन्धरभक्त गुरुदेवश्री को भी बिछुड़े हुए भगवान मिलने से अपूर्व आनन्द उछलता है और प्रतिष्ठा के आठों दिन प्रवचन में भक्तिरस की अलौकिक धारा बहाते हैं। पद्मनन्दिपंचविंशति के 'शान्तिनाथ-स्तोत्र' के, भक्ति भीगे इन प्रवचनों में बारम्बार सीमन्धर भगवान को याद करके, भावना भरे भक्तों के रोम-रोम में भक्ति जगाते हैं। प्रथम बार भगवान के साक्षात्कार का प्रसंग है और उसमें भी उपकारी सीमन्धर भगवान! इसलिए भक्ति में क्या कमी हो? इस महोत्सव में पन्द्रह सौ मुमुक्षुओं का समुदाय आनन्दोल्लास से भाग लेता है।

भावनगर नरेश भी लाभ लेने आते हैं और गुरुवाणी सुनते हैं : 'दरबार! महीने में लाख माँगे वह छोटा भिखारी; पाँच लाख माँगे वह बड़ा भिखारी और करोड़ रुपये माँगे वह भिखारी में भी भिखारी – बड़ा भिखारी है।'

प्रतिष्ठा के मंगलमय दिन और मुहूर्त में जब जिनमन्दिर के प्रवेशद्वार पर विदेहीनाथ श्री सीमन्धर भगवान पधारते हैं, तब मानो कि साक्षात् त्रिलोकीनाथ तीर्थंकरदेव आँगन में पधारते हों — ऐसा अद्भुत-अनुपम वातावरण सृजित होता है। भक्तों के सर्वांग से भक्तिरस बरसता है :

जिनजी आव्या छे जिनालय द्वारमां,
सद्गुरु देवनो हरख अपार, भगवान भेट्या आज,
महिमा मुखथी न थाय मंगल प्रतिष्ठा थाय छे...

जिनेश्वर लघुनन्दन गुरुदेवश्री भी अतिशय भक्तिभाव से 'पधारो भगवान! पधारो!' ऐसा स्वागत वचन कहकर, साष्टांग दण्डवत् नमस्कार करते हैं। आपश्री को सहजरूप से भक्तिरस की ऐसी खुमारी चढ़ जाती है कि उसके अति प्रचण्ड प्रवाह के कारण, पूरी देह दो-तीन मिनिट शान्त... शान्त... निःचेष्ट हो जाती है। अन्तर हृदय मानो कहता है : 'हे प्रभु! आपका विरह असह्य लगता था, वह अब आपके पधारने से दूर हुआ।'

भगवान के पास बालक जैसे बननेवाले गुरुदेवश्री के हृदय के भावों को पहिचानना मुश्किल है। भव्य और सुन्दर परमात्मा के भाववाही दर्शन करते हुए आपश्री को तृप्ति ही नहीं होती और आँखों में से हर्षानन्द के अश्रु बहने लगते हैं। यह अपूर्व आश्चर्यकारी अनोखा भक्तिभाव का दृश्य, समीप खड़े भक्तों से भी नहीं झेला गया, उनके नेत्र भी आँसुओं से भर आते हैं और भक्ति की धुन उछलती है :

आवो आवो सीमंधरनाथ, अम मंदिर आवो रे,
रुडा भक्तिवत्सल भगवंत, नाथ पधारो रे....

हुं कई विध पूजुं नाथ, कई विध वंदुं रे,
मारे आंगणे विदेहीनाथ, जोई जोई हरखुं रे....

कहान गुरु प्रतापे आज, जिनवर मलीया रे,
मारा आतमना ए दुःख सर्वे टणिया रे....

भक्तों के हृदय में हर्षानन्द उछालनेवाले इस प्रसंग को लक्ष में रख कर विशेष रूप से बनाया हुआ भक्ति गीत :

सुंदर स्वर्णपुरीमां स्वर्णरवि आजे उग्यो रे,
भव्यजनोना हैये हर्षानंद अपार,
श्री सीमंधरप्रभुजी पधार्या छे अम आंगणे रे....

जेनी मुद्रा जोतां आत्मस्वरूप लखाय छे रे,
जेनी भक्तिथी चारित्रविमलता थाय,
एवा चैतन्यमूर्ति प्रभुजी अहो! अम आंगणे रे....

जेनी वाणी झीली कुंदप्रभु शास्त्रो रच्यां रे,
जेनी वाणीनो वणी सद्‌गुरु पर उपकार,
एवा त्रण भुवनना नाथ अहो! अम आंगणे रे....

जेना द्वारा जिनजी आव्या, भव्ये ओणख्या रे,
ते श्री कहानगुरुनो पण अनुपम उपकार,
नित्ये देव-गुरुनां चरणकमल हृदये वसो रे....

जिनेन्द्रसेवक पूज्य गुरुदेवश्री के पवित्र करकमल से विदेहीनाथ जीवन्तस्वामी श्री सीमन्धर भगवान, श्री शान्तिनाथ, श्री पद्मप्रभ आदि भगवन्तों की नीचे और ऊपर में श्री नेमिनाथ भगवान की मंगलकारी प्रतिष्ठा होती है। गुरुराज के प्रभावनायोग से-निमित्त से – यह पहले-पहले जिनमन्दिर का निर्माण हुआ है। उसमें स्वयं भक्ति भरपूर चित्त से, मानो कि देह का भान भूल गये हों ऐसे अपूर्वभाव से, जिनबिम्बों की प्रतिष्ठा करते हैं और हृदय पुकारता है : 'हे नाथ! आपकी स्थापना करके हम आपका विरह भुलायेंगे।'

भरतक्षेत्र के भव्य भक्तों की भावना भरी अर्जी-विनती स्वीकार करके, विदेह के भगवान भरत में पधारे! अहो! कैसा योग! कैसी घटना! कैसा आश्चर्य! ठीक एक वर्ष पहले आज के दिन गिरनारजी की पाँचवीं टोंक पर जमी हुई भक्ति की धुन को भक्त याद

करते हैं कि भक्तों ने भावना भायी और एक वर्ष में तो प्रभुजी पधारे। मानो भक्ति ही भगवान को लायी!! गुरु प्रताप से भगवान मिले और भक्तों ने पहचाने।

धन्य धन्य आजनो दिन, अम घेर प्रभुजी पधार्या......
धन्य धन्य आजनो दिन, अम घेर जिनवर पधार्या.....
नेम प्रभु शांति जिणंद पधार्या, पधार्या सीमंधर देव..... अम घेर.....
महाविदेहवासी प्रभुजी पधार्या, जगत उद्धारक देव.... अम घेर.....
गुणमणि गुणनिधि प्रभुजी पधार्या, मनवांछित देनार.... अम घेर.....
अंतर मारुं आनंदथी उछले, पधार्या श्री वीतराग.... अम घेर.....
सुवर्णपुरीना सद्‌भाग्य खील्या छे, जिनप्रतिष्ठा महोत्सव थाय.... अम घेर.....

✯✯✯✯

सुवर्णपुरीमां सोना सूरज उगीयो रे जिनजी,
पूर्या पूर्या मोतीना चोक, सुरनर आवो आवो जिनप्रतिमाने पूजवा रे जिनजी...
सीमंधर प्रभुजी आव्या छे अम आंगणे रे जिनजी,
नेम जिणंद प्रभु आव्या जय जयकार.... सुरनर आवो....
भरतभूमिमां सत् सागर उछली रह्यां रे जिनजी,
आव्या छे मारा त्रण भुवनना नाथ.... सुरनर आवो....
जैनशासनना जय जयकार गवाय छे रे जिनजी,
शुद्ध चैतन्यना गाजे छे नाद.... सुरनर आवो....
सत्यतणा पूर आव्या दे अम आंगणे रे जिनजी,
प्रगट्या प्रगट्या शुद्ध स्वरूपना तेज.... सुरनर आवो....

अब, भरतभूमि में सीमन्धरयुग शुरु होता है। जिनकी विरहवेदना से गुरुदेवश्री का हृदय द्रवित होता था और आँखों में से अश्रु की धारा बहती थी, वे बिछड़े हुए भगवान फिर से मिलते हैं, विरह दूर होता है। सोनगढ़ के मुमुक्षुओं को जिनेन्द्रदर्शन-अभिषेक-पूजन -भक्ति का अमूल्य अवसर नहीं मिलता था, वह अब मिलने लगता है। जिस कड़ी की

कमी थी, वह पूर्ण होती है। प्रतिदिन सुप्रभात होते ही भक्त, दर्शन-अभिषेक-पूजन करने के लिए उमड़ते हैं।

पूर्वज्ञ छे गणधरो प्रभु पादपद्मे,
सर्वज्ञ केवली घणा प्रभुना निमित्ते;
आत्मज्ञ संतगणना हृदयेश स्वामी,
सीमंधरा! नमुं तने शीर नामी नामी।

शुचि निरमल नीरं गंध सु अक्षत, पुष्प चरु ले मन हरषाय;
दीप धूप फूल अर्घ सु लेकर, नाचत ताल मृदंग बजाय।
सीमंधर जिन चरणकमल पर, बलि बलि जाऊँ मनवचकाय;
हो करुणानिधि भवदुःख मेटो, यातैं मैं पूजुं प्रभु पाय।

दोपहर में भी व्याख्यान के पश्चात्, नूतन जिनमन्दिर में पूज्य बहिनश्री बेन प्रतिदिन पैंतालीस मिनिट भक्तिरस में लवलीन होकर भक्ति कराती हैं :

सुवर्णपुरी आज पावन थई छे सीमंधर प्रभुजी पधार्या रे....
महाविदेहे विभु विचरता, भरत क्षेत्रे विराज्या रे.... सुवर्णपुरी०

भरतना भक्तोनी अरज सुणीने, सुवर्णपुरीने सोहावी रे,
शांतिजिनेश्वर नेम प्रभुजी, उपशम रसमां झूलता रे.... सुवर्णपुरी०

सुवर्णपुरीना जिनालयमां, जिनमुद्रा प्रभु सोहे रे,
देव तणा तमे देव पधार्या, धन्य नगर धन्य भूमी रे... सुवर्णपुरी०

★ ★ ★

स्वर्णपुरीमां स्वर्णमयी वधामणां रे, (2)
सीमंधर भगवंत (आज) पधार्या मंदिरे।

आवो पधारो विदेही जिनराजजी रे,
— सीमंधर जिनराजजी रे,
मणिरत्ने वधावुं त्रिभुवननाथने.... स्वर्ण०

विदेहक्षेत्रे सीमंधरनाथ बिराजता रे, (2)

आज पधार्या स्वर्णपुरीना मंदिरे;
आज पधार्या भरतभूमिना आंगणे.... स्वर्ण०

देव-देवेन्द्रो आवे जिनवर पूजवा रे, (2)
विधविध रत्ने वधावे जिनवरदेव ने.... स्वर्ण०

गुरुजी-प्रतापे जिनवरदर्शन पामिया रे, (2)
गुरुवरजीनां कृपामृत वरसी रह्यां.... स्वर्ण०

गुरुजी मारा! चैतन्यरस वरसावजो रे, (2)
अम सेवकने भवोदधितारणहार छो.... स्वर्ण०

देव, गुरु ने शास्त्र वसो मन मंदिरे रे, (2)
अम सेवकने शिवसुखना दातार छो.... स्वर्ण०

प्रतिदिन का यह क्रम, बाद में तो नित्यक्रम बन जाता है, जो वर्षों तक चलता है। पूज्य गुरुदेवश्री भी अचूकरूप से जिनेन्द्रभक्ति में पधारते हैं। जिनेन्द्रदेव कथित वीतरागमार्ग का रहस्य व्याख्यान में सुना होने से तीर्थंकर परमात्मा के प्रति हृदय में बहुमान उछले, यह सहज ही है; इसलिए प्रवचन के पश्चात् तुरन्त ही होनेवाली इस भक्ति में अद्‌भुत भाव उल्लसित होते हैं।

फाल्गुन शुक्ल अष्टमी, गुरुवार। श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों के पदार्पण का आनन्दकारी महोत्सव पूर्ण हुए छह दिन बीत गये हैं, तथापि सीमन्धरसेवक गुरुराज के अन्तर में अत्यन्त भक्तिभाव घुला करता है। इस कारण एक स्वप्न ऐसा आता है कि स्वर्णपुरी में इन्द्र आकर प्रभु की प्रतिष्ठा का महोत्सव करते हैं।

मंगलकारी प्रतिष्ठा के पश्चात् राजकोट का मुमुक्षुसंघ, राजकोट पधारने की प्रार्थना करता है। गुरुवर कहते हैं : 'इस वर्ष तो विहार नहीं करना है। यहाँ भगवान पधारे हैं; इसलिए जी भरके दर्शन-भक्ति करना है। अत: इस वर्ष कहीं विहार नहीं करना है।'

चैत्र शुक्ल चतुर्थी, मंगलवार। गुरुदेवश्री को अपनी भावी पर्याय के सम्बन्ध में नि:शंकता सूचक एक स्वप्न आता है। उसमें स्वयं अन्य व्यक्ति से कहते हैं : 'यह बात

तुमको जँचे ऐसी नहीं है, परन्तु हमें तो जँच गयी है। और इसलिए हमारा तो मोक्ष है।' अहो! निःशंकता, वह समकित का प्रथम अंग है न!

फिर से वैशाख कृष्ण दशमी को सोमवार के दिन प्रातःकाल के प्रहर में साढ़े चार बजे स्वप्न आता है। उसमें स्वयं दूसरे से कहते हैं : 'हम सब आत्माओं को भगवान समान मानते हैं। भले ही वह आत्मा कदाचित् अनन्त संसारी हो, तो भी हमारे भाव से - हमारी दृष्टि से - तो वह भगवान है।' वाह! जिनकी पर्यायदृष्टि-पर्यायबुद्धि छूट गयी है वे धर्मात्मा, दूसरे जीव को भी दोषरहित पूर्ण परमात्मारूप ही देखते है। धन्य हो, सम्यग्दृष्टि की दृष्टि को!

जिनशासन प्रभावक पूज्य गुरुदेवश्री का प्रभावना वेग शीघ्रता से वृद्धिंगत हो रहा है। उसके अंगभूत तत्त्वज्ञान का लाभ बड़ी उम्र के वयोवृद्ध तो लेते ही हैं, परन्तु छोटे बालक और युवक भी इस लाभ से वंचित न रह जायें इस हेतु से अब इस वर्ष से स्कूल के ग्रीष्मकालीन अवकाश के समय, विद्यार्थियों के लिए धार्मिक शिक्षणवर्ग प्रारम्भ होता है। इस शिक्षणवर्ग के अन्त में विद्यार्थियों की लिखित-मौखिक परीक्षा ली जाती है और पूज्य गुरुदेवश्री के पवित्र हस्त से प्रमाण-पत्र और ईनाम भी दिया जाता है। गुरुदेवश्री की शीतल छाया में धार्मिक अभ्यास हो और जीवन में हितकारी संस्कारों का सिंचन हो, इस हेतु से इस वर्ग का लाभ प्रथम वर्ष में चालीस विद्यार्थी प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार, जिस वर्ष में विदेहीनाथ श्री सीमन्धर भगवान का साक्षात्कार भक्तों को स्वर्णपुरी में हुआ, वह विक्रम संवत् 1997 का वर्ष आराधना-साधना में पूर्णता को प्राप्त होता है।

जिसके पुण्यप्रताप से पामर को प्रभु मिले, उन अजोड़ रत्न कृपालु गुरुदेवश्री के चरणकमल में परम भक्ति से बारम्बार नमस्कार....

★ ★ ★

विक्रम संवत् 1998 (सन् 1941-42)

धर्मसभा - समवसरणप्रतिष्ठा वर्ष

वीरमार्ग उद्योतकार पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा आरम्भ की गयी विजयी धर्मप्रभावना यात्रा धीरे-धीरे, किन्तु दृढ़ कदमों से आगे चल रही है। वीरसुपुत्र-सपूत द्वारा सौराष्ट्रभर में धर्मक्रान्ति का उदयकाल शुरु हो चुका है। अंगुली की पोर पर गिने जा सकें इतने भक्तों के साथ परिवर्तन करके, एकाकी वीर की तरह वीतरागपन्थ में आगे बढ़ते हुए गुरुवर के साथ अल्प समय में ही हजारों भक्त आ मिले हैं। सम्प्रदाय में भय व्याप्त हो जाता है कि जो सोनगढ़ जाता है, वह आपश्री का ही हो जाता है। इस कारण मध्यस्थ जीवों को सोनगढ़ न जाने की, आपश्री की वाणी न सुनने की प्रतिज्ञाएँ दिलायी जाती है; परन्तु यदि आकाश ही फट जाय तो कैसे जोड़ा जा सके? भूतकाल में आराधना चूके हुए हजारों जिज्ञासु जीव, आपश्री के मुक्तिसंघ में जुड़ने हेतु सुवर्णपुरी आते हैं। बहुत से तो अपना देश छोड़कर, स्थायीरूप से सोनगढ़ में बसते हैं। इस प्रकार नये-नये जिज्ञासु — सत्सुख प्राप्ति के इच्छुक जीव — आनन्द से मुक्ति-मण्डली में जुड़ते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री सवेरे, दोपहर के व्याख्यानों द्वारा अध्यात्म के आम्रवृक्ष रोपते हुए फरमाते हैं :

1. आत्मार्थी का केवल एक ही काम है - अपने को पूर्ण शुद्ध माने, जाने और अनुभव करे।
2. शुद्धात्मा की शुद्धपरिणति के अतिरिक्त, कहीं विश्रान्ति नहीं।
3. चैतन्यदेव के अतिरिक्त, बाहर में कहीं सुख नहीं।
4. सबसे वैराग्य प्राप्त करके अद्भुतस्वरूप शुद्धात्मा में समा जाना, यही श्रेयभूत है।

— ऐसी आत्महितकारी वाणी सुनकर, भक्तों के हृदय में बहुमानभरी वाणी फूटती हैं : भले ही हमें समकित प्राप्त न हुआ हो, परन्तु गुरुदेवश्री जैसे समकितप्राप्त अनुभवी धर्मात्मा के प्रति माहात्म्यभाव तो अवश्य अपने हृदय में निरन्तर होना चाहिए। यह,

समकित के विषयभूत भगवान आत्मा की प्राप्ति के पुरुषार्थ की भावना का सूचक है। यदि समकिती की महिमा नहीं तो आत्मप्राप्ति की तमन्ना-लगन-धगश भी नहीं।

एक भाई के साथ चर्चा होने पर, कृपालु गुरुदेवश्री कहते हैं : ''देहव्यापक, स्व-परप्रकाशक आत्मतत्त्व है — ऐसा ख्याल में आ सकता है। वह पदार्थ है अरूपी, तथापि 'वह है' और 'जाननेवाला है' — ऐसा ख्याल में आ सकता है। किसी को प्रश्न हो कि 'परन्तु वह चीज दिखती तो नहीं न?' उसका समाधान यह है कि 'परन्तु वह दिखती नहीं — ऐसा निश्चय किसने किया?' उत्तर : 'ज्ञान ने।' बस, इस ज्ञानमय ही आत्मा की सत्ता है। 'मैं दिखता नहीं' — इस भाव में ही 'मैं स्वयं हूँ' — ऐसा सिद्ध होता है।'' वाह! आत्मा की सिद्धि करती हुई कैसी न्यायपूर्ण चर्चा!

गतवर्ष उत्साह-उमंगसह सम्पन्न पंच कल्याणक प्रतिष्ठामहोत्सव की मीठी-मधुर गुंजार अभी भी गूँजती है; वहीं भावना जगती है कि यहाँ विदेहीनाथ के समवसरण की रचना हो तो? इसी भावनावश जिनमन्दिर के पिछले भाग में 'श्री सीमन्धरस्वामी समवसरण मन्दिर-जिनेन्द्र धर्मसभा' का निर्माण होता है। जिसमें धूलिसाल कोट, आठ भूमि, बारह सभा, तीन पीठिका इत्यादि की अतिशय सुन्दर रचना, पूज्य बहिनश्री के जातिस्मरणज्ञान और आदिपुराण के आधार से होती है।

फिर से इस वर्ष सुवर्णपुरी में वीतरागशासन की विजय पताका फहराता मंगलकारी जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठामहोत्सव आनन्दोल्लासपूर्वक मनाया जाता है। ज्येष्ठ कृष्ण षष्ठी के दिन श्री सीमन्धरनाथ की चतुर्मुखी प्रतिमाजी तथा श्री कुन्दकुन्दाचार्य की खड्गासन प्रतिमाजी की प्रतिष्ठा होती है। इस अवसर पर लगभग दो हजार भक्तों का समुदाय उमड़ता है। सुवर्णपुरी में समवसरण की रचना होने पर, मानो भरत में विदेहक्षेत्र खड़ा हुआ हो — ऐसा लगता है। समवसरण की मुनिसभा में श्री सीमन्धरनाथ के सन्मुख अत्यन्त भक्ति से दोनों हाथ जोड़कर वन्दन करते हुए महासमर्थ योगीश्वर जैसी जिनकी मुद्रा है और जिनके रोम-रोम में देहातीतदशा है — ऐसे श्री कुन्दकुन्दाचार्य की शान्त-गम्भीर-सौम्य प्रतिमाजी के दर्शन करते ही; मानो आचार्यदेव प्रत्यक्षरूप से विदेही नाथ की धर्मसभा में दिव्यदेशना सुनते हों — ऐसा आनन्दकारी दृश्य नजरों के समक्ष उपस्थित होता है। भूतकाल के भव

में भगवान और आचार्यदेव के साक्षात् किये हुए दर्शन, भक्ति इत्यादि मंगलमय प्रसंग स्मरण में आते हैं और भक्तहृदय भक्ति से उछल जाता हैं :

अहो! समोसरण सोहामणां रे, श्री जिनवरदेवनां धाम.... अहो....
सुवर्णपुरे समोसरण आविया रे, जिन वैभव मंगलकार.... अहो....
प्रभु आत्मानंदे बिराजता रे, गंधकुटि थकी असंग.... अहो....
कुंददेव विदेहक्षेत्र गया रे, एना हृदये वसे जिननाथ.... अहो....
एवा कुंदप्रभु मुज आंगणे रे, संत चरणे वंदन हो अनंत.... अहो....
श्री गुरुजी प्रतापे सहु देखिया रे, भवभ्रमण मेट्या छे आज.... अहो....
गुरुदेवे ॐकार सुणाव्यो रे, पामरने उतार्या पार.... अहो....

★ ★ ★

आज तो वधाई मोरे समोसरण दरबारजी.....
त्रण भुवनना नाथ पधार्या, प्रगट्या सीमंधर नाथजी;
केवलज्ञान गुणाकर प्रगट्या, प्रगट्या चैतन्य देवजी.... आज तो.....

ॐकार ध्वनिना घोघ छूट्या, ऊछल्या समुद्र अपारजी;
इन्द्रोए मली उत्सव कीनो, घर घर मंगलाचारजी.... आज तो.....

घनघन घनघन घंटा वागे, देव करे जयकारजी;
सुवर्णपुरे समोसरण पधार्या, जिनेन्द्र दरबारजी.... आज तो.....

कहानगुरुए रहस्य खोल्यां, खोल्यां मुक्ति मारगजी;
सेवकने प्रभु शरणे राखो, ए ज अरज दिनरातजी.... आज तो.....

★ ★ ★

कहो कुंदकुंददेव कियो तमारो देश रे, आ किंया तमारां बेसणां रे....
भरतक्षेत्र छे अमारो देश रे, आ सीमंधरसभामां बेसणां रे....
आत्म स्वस्थाने छे अमारो वास रे, आ अनंत गुणोमां बेसणां रे....
कहो कुंदकुंददेव केम करी गया विदेह रे, आ केवा प्रभुने निहालीया रे....
भक्तिभावे गया अमे विदेह रे, आ जिनेन्द्र अद्‌भुत निहालीया रे....
सीमंधर प्रभुना दिव्यध्वनिना छूट्या नाद रे, कुंदकुंदे झील्या भावथी रे....

प्रतिष्ठा प्रसंग पर पण्डित श्री हिम्मतभाई 'समवसरण–स्तुति' की रचना करके लाते हैं और उस पर पूज्य गुरुदेवश्री के भक्ति से भरपूर प्रवचन होते हैं। उसमें जब 'रे रे सीमन्धरनाथ का विरहा पड़ा इस भरत में....।' यह पंक्ति आती है, तब विदेही प्रभु के विरह में सीमन्धरलघुनन्दन गुरुराज का भक्ति भरा हृदय द्रवित हो उठता है और अन्तरंग के भाव नेत्र के अश्रुओं द्वारा व्यक्त हो जाते हैं। गुरुवर उस समय गद्‌गद्‌भाव से सीमन्धरनाथ और कुन्दकुन्दप्रभु के प्रति जो अतिशय भक्तिभाव व्यक्त करते हैं उसका वर्णन शब्दों से करना अशक्य है। 'समवसरण–स्तुति' की अन्तिम पंक्ति में आता है : 'अहो! वह गुरु कहान का....' भक्तों को जिज्ञासावृत्ति होती है कि गुरुदेव यहाँ क्या बोलेंगे? जब यह पंक्ति आती है तब आपश्री फरमाते हैं : 'अहो! वह गुरु आत्म का....' और भक्त आश्चर्यचकित रह जाते हैं।

इस प्रकार दो वर्ष में दो प्रतिष्ठा महोत्सव हर्षोल्लास से मनाये जाते हैं। अहो! यह गुरुवर का अचिन्त्य प्रभाव है कि स्वर्णपुरी में समवसरण अवतरित हुआ। इस काल में भगवान मिले और उनकी दिव्यध्वनि का प्रसाद गुरुवाणी द्वारा मिलता है, यह मुमुक्षुओं का परम सद्‌भाग्य है।

एक वकील ने — कि जो साठ वर्ष से सामायिक, प्रतिक्रमण आदि करते हैं उसने – एक बार पूछा : 'महाराज! आत्मा कितने रजकणों का बना होगा?' लो, बाह्य क्रियाएँ करने पर भी इतना भी तत्त्व का भान नहीं! कैसी आश्चर्य की बात है!!

आषाढ़ कृष्ण एकादशी, बुधवार। गुरुवर को रात्रि में स्वप्न आता है, जिसमें एक दिगम्बर मुनिराज के दर्शन होते हैं और वे करुणा करके उपदेश देते हैं कि 'निर्विकल्पदशा में रहना।' अहो! कैसा सद्‌भाग्य कि मुनिराज के दर्शन हुए! वाणी सुनने मिली!

श्रावण कृष्ण एकम। वीरशासन जयन्ती, अर्थात् राजगृही नगरी के विपुलाचल पर्वत से अन्तिम तीर्थंकर भगवान श्री महावीरप्रभु की प्रथम दिव्यध्वनी खिरने का मंगलकारी दिवस। इस दिन जिन्हें वीर की ध्वनि गुरु परम्परा से प्राप्त हुई थी — ऐसे भरतक्षेत्र के समर्थ आचार्य श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित दिव्यध्वनि के सारभूत श्री प्रवचनसारजी परमागम पर वीरदेशना का रहस्य खोलनेवाले पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन प्रारम्भ होते हैं।

उसमें जब 'ज्ञेयतत्त्व-प्रज्ञापन अधिकार' आता है, तब तो अहो! अनेक वर्षों में नहीं सुनी ऐसी कोई अचिन्त्य और आश्चर्यकारक अनुभववाणी की गंगा, श्रुतमर्मज्ञ गुरुदेवश्री के अन्तर आत्मा में से प्रवाहित होने लगती है। द्रव्य-गुण-पर्याय सम्बन्धी बात प्रसिद्धरूप से कहने की शुरुआत तो विक्रम संवत् 1978 से - श्री समयसार मिला तब से—ही हो गयी थी, परन्तु अब तो उसका सूक्ष्म रहस्य व्याख्यान में आने लगा है। जिनप्रवचनरहस्य उद्‌घाटक गुरुराज के निर्मल भावश्रुतज्ञानसागर में से प्रवाहित गम्भीर और गहन ऐसे श्रुत के अमृतप्रपात में जो कोई भीगे हैं, उनके ज्ञानपट पर यह धन्य प्रसंग सदा के लिए उत्कीर्ण हो गया है। भगवती माता पूज्य बहिनश्री के शब्द : 'अहो! गुरुदेव को श्रुत का सागर उछलता है।' भक्तों को भी बहुमान जगता है : यह तो कोई अनुपम आत्मविभूति या विस्मयकारी श्रुत की निर्मल श्रेणी देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। सम्यग्ज्ञानबल के अपूर्व योग से जिन्हें केवलज्ञान की झंकार आयी है — ऐसे गुरुदेवश्री के किसी एक वाक्य को भी यथार्थरूप से समझेंगे तो कल्याण हुए बिना नहीं रहेगा।

वीरवाणी की मधुर गूँज सुनानेवाले गुरुदेवश्री के प्रातः-दोपहर के अमृतमय प्रवचनों में तथा पठन में भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव रचित समयसार, प्रवचनसार आदि शास्त्रों के उपरान्त, परमात्मप्रकाश, तत्त्वार्थसार, गोम्मटसार, षट्खण्डागम, पंचाध्यायी, पद्मनन्दिपंचविंशति, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह इत्यादि शास्त्र भी विस्तृत-विशद्‌रूप से पढ़े गये हैं। आपश्री के सम्यग्ज्ञानसागर में नित्य नयी-नयी निर्मल ज्ञानकल्लोलें उछला ही करती हैं। इसलिए दृष्टिप्रधान समयसार हो या ज्ञानप्रधान प्रवचनसार हो या चारित्र और भक्तिप्रधान कोई शास्त्र हो, उसमें से सहज स्फुरित अनेक अलौकिक आध्यात्मिक न्याय निकलते हैं, जिन्हें सुनकर हजारों तत्त्वरसिक जीव पावन बनते हैं। इस प्रकार सोनगढ़ में दिन-रात तत्त्वज्ञान का पावन वातावरण सदा गूँजता रहता है।

इस प्रकार जिस वर्ष में विदेहीनाथ जीवन्तस्वामी श्री सीमन्धरप्रभु का समवसरण भरत क्षेत्र में पधारा-सोनगढ़ में रचा गया - वह विक्रम संवत् 1998 का वर्ष पूर्ण होता है।

जिनकी भक्ति के बल से भरत क्षेत्र के भक्तों को भगवान मिले, उन गुरुवर कहान को वन्दन!

★ ★ ★

विक्रम संवत् 1999 (सन् 1942-43)

प्रथम बार गुरुवाणी प्रकाशन वर्ष

जैसे-जैसे कालचक्र परिवर्तित होता जा रहा है, वैसे-वैसे ज्ञानदिवाकर गुरुराज के अन्तर में ज्ञान-वैराग्य की बाढ़ बढ़ती जा रही है, परिणति अधिक से अधिक पवित्र होती जा रही है और आपश्री अध्यात्म की राह में अग्रसर होते जा रहे हैं। आपश्री की इस अन्तरंग पवित्र उदासीनदशा के दर्शन से भक्तों को स्वभाव साधने का उत्साह उछल पड़ता है।

एक बार दर्शनविजय नामक श्वेताम्बर साधु सोनगढ़ में कहते हैं : 'यह तुम्हारा समयसार है वह गुरु की वाणी है, परन्तु वीतरागी देव की नहीं।' उनसे प्रश्न किया जाता है : 'तुम भव्य हो या अभव्य ?' उत्तर मिलता है : 'हमें पता नहीं, इसका तो भगवान को पता होता है; हमने निर्णय नहीं किया।' आश्चर्य से गुरुदेवश्री कहते हैं : 'अरे! मैं भववाला हूँ या भवरहित हूँ — इसका भी तुम्हें पता नहीं, अर्थात् स्वयं का निर्णय तो है नहीं और समयसार भवरहित वीतरागी भगवान की वाणी है या नहीं यह परखने निकले हो ? परीक्षा करने निकले हो ?' किसी को कुछ भी शंका / प्रश्न हो, न्यायपूर्ण समाधान तुरन्त ही हाजिर! श्रुत की लब्धि है न!

सोमचन्दभाई खारा प्रश्न करते हैं : 'रागादि भाव वास्तव में पुद्गल के हैं ?' उत्तर : 'त्रिकाली ज्ञानस्वभाव में रागादि नहीं हैं और स्वभाव की दृष्टि करनेवाले ज्ञानी भी रागादि से भिन्न पड़े हैं; इसलिए निश्चय से रागादि जीव के नहीं, परन्तु पुद्गल के हैं — ऐसा कहा जाता है, तथापि पर्याय अपेक्षा से देखने पर वे जीव के हैं।' ज्ञान में वस्तु के समस्त पहलुओं का सुमेल होता है न!

एक बार पण्डित लालन कहते हैं : 'समाधितन्त्र में कहा है कि मुनि को लिंग का आग्रह नहीं होता।' शास्त्रों के अन्तरंग भावों को पहचाननेवाले गुरुदेवश्री समझाते हैं : 'भाई! इसका अर्थ क्या ? कि आनन्द के अनुभवी मुनियों को बाह्य में होता है तो नग्नपना

और अट्ठाईस मूलगुण ही, परन्तु उनका आग्रह अर्थात् उनसे मोक्ष होगा — ऐसा वे नहीं मानते।' वाह! क्या स्पष्टीकरण!!

जिनशासन प्रभावक पूज्य गुरुदेवश्री प्रभावना उदय से तथा राजकोट के मुमुक्षुओं के आग्रह से राजकोट में चातुर्मास करने के लिए फाल्गुन शुक्ल पंचमी, गुरुवार के दिन प्रात: काल सोनगढ़ से उमराला विहार करते हैं। आगे गढ़डा, बोटाद, राणपुर, चुड़ा, लींबड़ी और वढ़वान आदि झालावाड़ के अनेक गाँवों में सत्यधर्म का डंका बजाता हुआ विहार होता है। गाँव-गाँव में लोगों की भक्ति उछल पड़ती है, भव्य स्वागत यात्राएँ होती हैं और हजारों जिज्ञासु प्रवचन सुनने उमड़ पड़ते हैं। प्रतिदिन प्रात:-दोपहर को वस्तुस्वरूप समझानेवाले प्रवचन होते हैं और रात्रि में शंका-समाधान होता है। पद्मनन्दि पंचविंशतिका और मोक्षमार्ग प्रकाशक पर प्रवचनों द्वारा अनुभवरस भीगी अमृतवाणी की मूसलधार वर्षा करके गुरुराज, जिज्ञासुओं की तृषा बुझाते हैं। आपश्री अनन्त तीर्थंकरों द्वारा प्ररूपित अध्यात्म तत्त्व, शास्त्रों के शब्दों का कम से कम प्रयोग करके, अत्यन्त ही सुगम, सरल, और मधुर वाणी द्वारा, छोटा बालक भी समझ जाये ऐसी घरेलू भाषा में, सचोटरूप से प्रकाशित करते हैं। जिसके परिणामस्वरूप तत्त्वज्ञान का व्यापक प्रचार होता है।

उत्कृष्ट करुणा से बहनेवाली अमृतवाणी सुनकर जिज्ञासु श्रोताओं को भाव जगता है : 'हे पवित्रता की मूर्ति! सत्पुरुष के अन्तरंग भावों का हुबहु स्वरूप आपश्री दर्शा रहे हैं। आपश्री के द्वारा हम निर्दोष श्रुतगंगारूप वीतराग वाणी का रहस्य समझने के लिये भाग्यशाली बने हैं। आपश्री के इस उपकार के विषय में क्या कहें? बस! निज हितार्थ आपश्री के चरणकमल में सर्वांग अर्पणता करते हैं। यदि आपश्री नहीं मिले होते तो, तूफानी समुद्र में पड़े हुए लकड़ी के टुकड़े की तरह, हम भी चौरासी लाख योनियों में कहीं रुलते होते।' गुरुदेवश्री का पुण्य प्रभावना उदय देखने से, जिस काल में तीर्थंकर प्रभु और महासमर्थ आचार्य इस भारतभूमि पर विचरते थे तब धर्म का कैसा उद्योत होगा, अध्यात्म और भक्ति का कैसा वातावरण व्याप्त होगा, उसका तादृश चित्रण मनचक्षु के समक्ष खड़ा होता है।

गुरुदेवश्री चुड़ा के दरबार गढ़ में विराजमान हैं और परमागम समयसार की गाथा

90 पर मन्थन चलता है : 'उपयोग शुद्ध, निरंजन, और एक प्रकार का है, तो भी विकार से अशुद्ध, साँजन और अनेकरूप हुआ है — तीन प्रकार हुआ है। इसलिए जीव स्वयं अज्ञानी होता हुआ विकाररूप परिणमित होकर जिस भाव को करता है उस भाव का कर्ता होता है। इस प्रकार श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने जीव की भूल बतलायी है।' अहो! अपना सद्भाग्य है कि आचार्य की भवतापनाशक वाणी का दोहन, कृपासिन्धु गुरुदेवश्री के द्वारा प्राप्त हो रहा है। यहीं एक भाई कहते हैं : 'हम कानजीस्वामी की माने तो उपाश्रय में ताला लगाना पड़े, क्योंकि वे सामायिक, उपवास इत्यादि में धर्म नहीं कहते।' भाई! सच्ची सामायिक हो तो धर्म हो न?

सुरेन्द्रनगर का एक प्रसंग देखते हैं। धांग्रध्रा के एक वेदान्तमत के बाबाजी प्रतिदिन प्रवचन सुनने आते हैं। वे एक बार प्रवचन सुनकर कहते हैं : 'एक... एक... एक' अर्थात् जगत में द्वैतपना नहीं है; अद्वैत है। उसका समाधान करते हुए गुरुराज कहते हैं : 'भाई! आत्मवस्तु है वह एक है; अनेक नहीं — ऐसा निर्णय कौन करता है? पर्याय निर्णय करती है। तथा सर्वथा एकपना हो तो एकपने का निर्णय करनेवाला कौन? इसलिए यह बात ही सिद्ध करती है कि अनेकपना भी है।' जिनेन्द्रकथित अनेकान्तवाद ही सत्य है, यह ख्याल में आता है न!

राजकोट की ओर के विहार में एक स्थानकवासी साधु मिलते हैं। वे कहते हैं : 'आत्मा तो साकार है अर्थात् उसमें जड़ का आकार है, वह रूपी है।' सच्ची अपेक्षा समझाते हुए गुरुराज कहते हैं : 'भाई! इस अपेक्षा से आत्मा साकार नहीं है। साकार अर्थात् क्या इस जड़ का आकार आत्मा में है? नहीं। इसी प्रकार प्रदेशत्वगुण के कारण आकार होता है, वह यह साकारपना है? नहीं। ज्ञान का भिन्न-भिन्न करके स्व-पर को जानने का स्वभाव होने से उसे साकार कहा जाता है। साकार कहो, विशेष कहो या सविकल्प कहो - एक ही है। इस प्रकार ज्ञान की अपेक्षा से आत्मा को साकार कहा है, परन्तु इससे आत्मा को रूपीपना है — ऐसा नहीं।' अरे! त्यागी होकर भी मूल वस्तु का पता नहीं तथा अपेक्षा न समझे तो गड़बड़ ही होगी न!

विहार यात्रा के समय वीतरागमार्ग के रहस्योद्घाटक कहान गुरुराज फरमाते हैं :

‘दिगम्बर जैनधर्म कोई सम्प्रदाय या बाड़ा नहीं; वस्तुस्वरूप है। यही सत्य जैनधर्म है, इसका दूसरे किसी धर्म के साथ मेल है ही नहीं। इसका दूसरे धर्म के साथ समन्वय करना तो रेशम और टाट के समन्वय जैसा निष्फल है।

कोई भी आत्मा, ज्ञानी या अज्ञानी, एक रजकण भी बदलने में समर्थ नहीं है, तो फिर देहादि की क्रिया तो कहाँ से कर ही सकेगा? तथापि अज्ञानी, देहादि की क्रिया और रागादि की परिणति का मैं कर्ता हूँ — ऐसा मानता है, जो मिथ्यात्व-अज्ञान है। जबकि अपने शुद्धस्वभाव का अनुभव करनेवाला ज्ञानी, उनका कर्ता नहीं होता; ज्ञाता ही रहता है। इस कारण सच्ची समझ द्वारा रागादि की कर्ताबुद्धि का अभाव करना यही सम्यक् पुरुषार्थ है, जो कि कर्तव्य है। सच्ची समझ के बिना समस्त ही बाह्य क्रियाकाण्ड व्यर्थ हैं।’

इस प्रकार गुरुदेवश्री, विहार में गाँव अपरिचित हो या परिचित; श्रोता नये हो या पुराने; प्रतिदिन के प्रवचनों में एक ही बात करते हैं — आत्मा की समझ पर ही वजन देते हैं। अनेक जीव अध्यात्म के उत्सुक थे, उनको इस विहार से चिन्तित फल मिलता है और सौराष्ट्र में बहुत जागृति आती है।

श्रुतपंचमी के मंगल दिन, विक्रम संवत् 1995 के चातुर्मास प्रसंग में राजकोट में हुए श्रीमद् राजचन्द्र रचित ‘आत्मसिद्धि’ के प्रवचन पुस्तकरूप से प्रकाशित होते हैं और वीतरागवाणी प्रवाहित करनेवाले गुरुदेवश्री के प्रवचन पुस्तकाकाररूप प्रसिद्ध करने की परम्परा शुरु होती है।

राजकोट जाते समय बीच में आनेवाले गाँवों में विहार करते-करते ज्येष्ठ शुक्ल दशमीं के दिन गुरुवर्य का राजकोट में मंगलकारी पदार्पण होता है।

दिनांक 16-6-1943 : जो भव की गुलामी में जकड़े हुए भव्यों को वस्तु स्वतन्त्रता का दर्शन कराते हैं और जिनके पुरुषार्थ की राह एक ही दिशा की है ऐसे गुरुराज श्री समयसारजी पर छठवीं बार के प्रवचन शुरु करते हैं।

यहाँ चातुर्मास के समय निवृत्ति होने से गुरुदेवश्री का अन्तर मंथन गम्भीर-गहरा होता जाता है और आपश्री की ज्ञानकला अद्‌भुत सूक्ष्मता को धारण करती है। इसलिए अध्यात्म से भरपूर द्रव्यानुयोग के समयसारादि शास्त्र हों या अन्य अनुयोग के शास्त्र हों,

उनके प्रत्येक शब्द में निहित गहन और अनुपम भावों को बाहर निकालकर, उनका रहस्य सरल और सादी भाषा में समझाते हैं। जैसे स्वर्णपात्र में अमृत घोला जाता है, वैसे गुरुदेवश्री वीतराग के वचनामृतों को अन्तरंग में खूब घोंटते हैं और उस अमृत का पान कराकर भव्य जीवों को निहाल करते हैं। जो वस्तुस्वरूप तीर्थंकर और आचार्यों ने प्रकाशित किया है, उसके गूढ़ भावों को अपनी नित्य खिलती अभूतपूर्व ज्ञानपरिणति द्वारा पहचानकर मुमुक्षुओं को बतला रहे हैं।

गुरुदेवश्री इस वर्ष एक गम्भीर रहस्य को खोलते हैं : 'एकरूप कारणशुद्धपर्याय द्रव्यार्थिकनय का विषय है; पर्यायार्थिकनय का नहीं।' आपश्री की मिथ्यात्वभेदिनी वज्रसम जोरदार वाणी सुनकर शास्त्रों के अभ्यासी प्रकाण्ड विद्वान् भी दंग रह जाते हैं और बहुत बार उत्साह से कहते हैं : 'हे गुरुदेव! आपश्री की वाणी अपूर्व-अनुपम-अलौकिक है; उसका श्रवण करते ही रहें — ऐसी भावना होती है। आपश्री चाहे जो विषय लें, तो भी हमें उसमें कुछ नया ही दिखता है। आपश्री के वचनामृत में वीतरागी देव और आचार्यों का हृदय दृष्टिगोचर होता है। शास्त्रों में शब्द हैं, उनका मर्म ज्ञानी के हृदय में है - यह बात अब हमें यथार्थरूप से समझ में आती है। शास्त्रों के मर्म खोलने की चाबी तीर्थंकरदेव ने सद्‌गुरु को सौंपी है — ऐसी सत्पुरुष की महिमा अब सत्य रीति से ख्याल में आती है।'

ध्वनियन्त्र—माईक बिना भी पहाड़ी, बुलन्द और कर्णप्रिय ध्वनि से गर्जते प्रवचन को सुनने हजारों श्रोताओं का समूह उमड़ता है। मार्ग पर मोटर और घोड़ागाड़ियों की कतार लगती हैं। तत्त्व अभ्यासी तथा वकील, डॉक्टर, प्रोफेसर इत्यादि शिक्षित बुद्धिशाली वर्ग उपरान्त हिन्दू, पारसी, बोहरा मुसलमान आदि अजैन जिज्ञासु श्रोता भी अध्यात्म-विज्ञान से भरपूर, तर्क-न्याय से सिद्ध, मधुर वाणी सुनने आते हैं। जैन में व्रतादि बाह्य क्रियाकाण्ड के बदले सूक्ष्म तत्त्वज्ञान की—समझ की बात है — ऐसा जानकर आश्चर्यपूर्वक मन्त्रमुग्ध होकर वे सब गुरुदेवश्री की पवित्र वाणी हृदय की प्रसन्नता से सुनते हैं और चिन्तवन में गहरे उतरते हैं। उनका अन्तरंग अध्यात्मविज्ञानी गुरुदेवश्री के प्रति भक्ति से उछल जाता है, मन डोल उठता है और तन अहोभाव से नम्रीभूत हो जाता है। अहा! क्या अद्‌भुत सातिशय वाणी का प्रभाव!!

श्रुतलब्धिवन्त गुरुराज की प्रवचनशैली आपश्री के गहरे और गम्भीर ज्ञान जैसी ही कोई विस्मयकारी — अचिन्त्य है। शुष्क और कठिन लगनेवाले अध्यात्म के विषय को भी स्पष्टीकरण और दैनिक जीवन के दृष्टान्तों द्वारा इतना सरल कर देते हैं कि अनपढ़ जीव भी सरलता से समझ जाते हैं। शास्त्रों में गूढ़-गम्भीररूप से गूँथे हुए मिथ्यात्व-अज्ञान के नाश के अमोघ उपाय को सरल-सुगम रीति से देशभाषा में बतलाना अर्थात् गहन विषय को भी गम्य कर देना वह आपश्री की वाणी की विशिष्टता है। तथा आपश्री की वाणी ऐसी रसयुक्त है — स्वयं इतने रस से कहते हैं — कि श्रोताओं का रस बना रहता है। अरे... ! श्रोता, बीन के नाद से डोलते सर्प की तरह डोल उठते हैं और प्रवचन का समय कब पूरा हो जाता है यह भी पता नहीं चलता। गुरुदेवश्री की वाणी एक संजीवनी है, जो चाहे किसी भी प्रसंग में धैर्य को टिकाये रखती है, शान्ति देती है, कर्तापने के अहंकार को तोड़कर ज्ञातादृष्टा होने की पावन प्रेरणा देती है तथा उससे कभी भी आत्मबल नहीं टूटता। आपश्री की वाणी की झनकार भ्रान्ति के पर्दे को चीर डालती है। अधिक क्या कहना ? जो उसके भाव को अन्तरंग में उतारता है, उसका जीवन सफल और सार्थक बन जाता है।

हो भविया पामी अमूल्य गुरुवाणी;
तुं ऊतरजे अंतरमांही..... हो भविया....

दीपक ज्ञानो घटमां जगावी, दर्शनशुद्धि निर्मण पामी;
सुणीए दिव्य गुरुवाणी.... हो भविया....

रहस्य भरेली ए पुनित वाणी, गुणगणगंग प्रवाह निशानी;
अहो उजमबा-मात-सुतवाणी.... हो भविया.....

अमूल्य रहस्य परमागमनां, ज्ञानकपाट खोलीने बताव्यां;
गुरु कहाने अमृत रेलाविया.... हो भविया.....

चैतन्यदेवना हार्द तपासनारी, गुणना सूक्ष्म भावो जणावनारी;
अद्‌भुत गुरु कहान वाणी.... हो भविया....

चोबाजु सूक्ष्म पट खोलनारी, नित नित आनंद मंगलकारी;
गुरु कहान वाणी भवतारी.... हो भविया.....

अध्यात्ममूर्ति गुरुदेवश्री का आत्मा तो अध्यात्मरंग से रंगा हुआ है ही, परन्तु आपश्री की देह भी मानो अध्यात्म के शान्तरस में सराबोर है। प्रवचन प्रदान करते–करते कभी–कभी आपश्री उस रस में ऐसे तन्मय–एकाकार हो जाते हैं कि अन्तर आत्मा में डुबकी लगा लेते हैं, जिसका श्रोताओं पर अमिट असर हुए बिना नहीं रहता और श्रोता भी अध्यात्म–अमृतरस से भीगते हैं। — ऐसे गुरुदेवश्री का अध्यात्म उपदेश जैसे–जैसे जीवों को सुनने मिलता है, वैसे–वैसे उनके प्रति अन्तरंग में बहुमान प्रगट होता जाता है।

चमत्कारी प्रतिभा के स्वामी गुरुदेवश्री का व्याख्यान समझ में आये या न आये; सुननेवाले सभी जीव इतना तो स्पष्टरूप से स्वीकार करते ही हैं कि जगत से अलग ही बात कहनेवाले यह कोई अलौकिक विशिष्ट महात्मा हैं। आपश्री की वाणी मात्र शब्दों की संरचना नहीं है, अपितु उसके पीछे अजब–गजब का कोई जोर है, जो अन्यत्र देखने में नहीं आता। श्रोताओं को गुरुदेवश्री की अनुभव से भीगी हुई वाणी सुनने के बाद अन्य वक्ताओं की शुष्क वाणी सुनना नहीं रुचता। अहो! इस कलिकाल में अन्तरंग में केवलज्ञान के कारणभूत अनुभूति का परिणमन हो और बाह्य में तीर्थंकरपने को सूचित करनेवाला अपूर्व प्रभावनायोग तथा अनुपम वाणी का योग हो — ऐसे धर्मात्मा साक्षात् मिलना लगभग अशक्य है। तथापि मुमुक्षुओं के सद्भाग्य से ऐसे संत का समागम प्राप्त हुआ है। आत्मार्थियों का पुण्य अभी क्षीण नहीं हुआ है।

राजकोट के जिज्ञासुओं को भावी भगवन्त गुरुदेवश्री की अनुपम वज्रमय वाणी सुनने को मिलती है वह तो परम सौभाग्य है ही, अरे! आपश्री के दर्शन भी महापुण्य उदय से प्राप्त हुए हैं। अध्यात्ममस्त गुरुवर की मंगल छाया में–उत्तम सान्निध्य में–संसार की आधि–व्याधि–उपाधि से तप्त पामर जीवों को परम विश्रान्ति–शान्ति मिलती है। जो विभावभाव महा प्रयत्न से भी नहीं छूटता, वह आपश्री के चरणकमल में सहज चला जाता है और जिस वस्तुस्वरूप का श्रद्धान वर्षों से नहीं होता था, वह आपश्री की वाणी सुनने से पलभर में हो जाता है।

जिन्होंने अध्यात्म शास्त्रों का रस / रुचिपूर्वक अभ्यास किया हो, उनका तलस्पर्शी अध्ययन किया हो, वे ही उसके गहन, सच्चे रहस्य को प्राप्त कर सकते हैं। गुरुवर उस

रहस्य को प्राप्त हैं और स्वानुभव प्रगट किया है। ऐसे स्वानुभवी सन्त गुरुदेवश्री अपने पवित्र ज्ञानप्रकाश और मंगल वाक्गंगा द्वारा भक्तों पर अनुपम, कल्याणकारी परम परम उपकार कर रहे हैं। निश्चित ही राजकोट के भव्य जीवों के आँगन में आत्मिक शीतल छाया देनेवाला अध्यात्म कल्पवृक्ष उगा है — जो महाभाग्य है।

इस प्रकार इस वर्ष के चातुर्मास के दौरान राजकोट सदर में वीतराग लघुनन्दन पूज्य गुरुदेवश्री विराज रहे हैं। प्रतिदिन प्रवचन में अमृतधारा बह रही है, जिसका सभी जीव अपनी-अपनी योग्यतानुसार लाभ ले रहे हैं। कितने ही जीवों को सम्प्रदाय मोह छूटकर सत्धर्म के प्रति रुचि जागृत होती है; किसी को अज्ञान मिटकर सच्ची समझ प्रगट होती है और किसी की तो पूर्ण जीवन दिशा ही पलट जाती है।

सामान्यरूप से प्रतिदिन का कार्यक्रम इस प्रकार होता है -

प्रात:काल	07.00 से 07.30	ज्ञानचर्चा
	09.15 से 10.15	समयसारजी पर गुरुदेवश्री का मंगल प्रवचन
	10.30 से 11.15	नियमसारजी का वाँचन और उसके पूर्ण होने पर सर्वार्थसिद्धि का वाँचन
दोपहर	02.30 से 03.15	पंचास्तिकाय का वाँचन और वह पूर्ण होने पर सर्वार्थसिद्धि का वाँचन
	03.30 से 04.30	प्रवचनसारजी के दो अधिकार और वे पूर्ण होने पर समयसारजी पर गुरुदेवश्री का कल्याणकारी प्रवचन
	04.45 से 05.45	अष्टपाहुड़ का वाँचन
सायंकाल	08.15 से 09.15	प्रश्नोत्तरी।

पर्यूषण पर्व में प्रात: समयसारजी और दोपहर को पद्मनन्दि पंचविंशतिका के दान अधिकार पर प्रवचन होते हैं।

गुरुदेवश्री एक बार यहाँ प्रवचन में कहते हैं : 'नव तत्त्व का भेदरूप अनुभव

मिथ्यात्व है।' यह सुनकर एक भाई कहते हैं : 'हमें कहाँ ले जाना है ? आत्मा देह की क्रिया करे, यह बात तो निकाल दी; पुण्य से धर्म हो, यह बात भी निकाल दी और अब नव तत्त्व का भेदरूप ज्ञान भी कार्यकारी नहीं है — ऐसा कहकर भेदरूप खण्ड-खण्ड ज्ञान भी निकाल दिया। अब हमें जाना कहाँ ?' अहो! आचार्यदेव और गुरुदेवश्री हमें अभेद आत्मा का अनुभव कराना चाहते हैं। समझ में आया ?

एक बार तत्त्वजिज्ञासा से मणिभाई पूछते हैं : 'कभी आप ऐसा कहते हो कि राग व्याप्य है और कर्म व्यापक है; फिर कभी ऐसा भी कहते हो कि राग व्याप्य है और आत्मा व्यापक है — तो इसमें सत्य क्या है ?' विवेकज्ञानभण्डार गुरुवर समाधान कराते हैं : 'भाई ! जब शुद्धस्वभाव सिद्ध करना हो — स्वभाव और विभाव का भेदज्ञान कराना हो — तब राग को भिन्न करके राग व्याप्य है और कर्म व्यापक है — ऐसा कहा जाता है तथा दो द्रव्यों की भिन्नता बतलानी हो, तब राग व्याप्य है और आत्मा व्यापक है — ऐसा कहा जाता है।' 'जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है, वहाँ समझना वही' — श्रीमद् राजचन्द्र की यह बात ख्याल में आती है न ?

किसी भी प्रकार से जगत के जीव सर्वज्ञपिता के अमूल्य वैभव को - कि जिसे श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने समयसार में संग्रहित किया है उसे - प्राप्त करें और अनादि की दीनता का नाश करें — ऐसी करुणाबुद्धि से सर्वज्ञलघुनन्दन गुरुदेवश्री परमागम श्री समयसारजी के कितने ही अधिकारों पर अनुभवगर्भित प्रवचन प्रदान करते हैं। इस अमृतवर्षा का प्रत्यक्ष लाभ हजारों जीव तो प्राप्त करते ही हैं, परन्तु जिन्हें यह प्रत्यक्ष योग प्राप्त नहीं हुआ है — ऐसे जिज्ञासुओं को यह अमूल्य मुक्ताफल मिले तो स्वरूपलक्ष्मी प्राप्त होकर रागादिरूप पामरता मिटे — ऐसी भावना बहुतों को जगती है। पूज्य बहिनश्रीबेन को भी यह प्रवचन सुनने से अहोभाव आने से, गुरुदेवश्री और गुरुवाणी के प्रति भक्तिभाव से प्रेरित होकर, प्रवचन लिपिबद्ध करने की भावना जागृत होती है। वे प्रवचनों को लिपिबद्ध करती भी हैं — जो बाद में 'समयसार-प्रवचन' भाग तीन, चार, पाँच के रूप से प्रकाशित होते हैं।

ज्ञान वैराग्ये रंग्यो रे.... गुरु मारो ज्ञान वैराग्ये रंग्यो रे,
चैतन्य सुखनो रसियो.... गुरु मारो०

उत्तम संस्कारोने कारणे, सहज स्वरूपे ठर्यो रे,
भेदविज्ञाने अजोड पुरुषार्थे, केवो मस्त बन्यो रे.... गुरु मारो०

महा पूर्व पुण्यनां उदये, वीरलो गुरु मल्यो रे,
एनी वाणीथी ध्येय समजीने, निज आत्मा लऊँ उगारी.... गुरु मारो०

बाल ब्रह्मचारी सम्यक्धारी, ज्ञानदशाए खील्यो रे,
अजर प्याला पीवे पीवडावे, जिनेन्द्र भक्तिमां भींज्यो रे.... गुरु मारो०

मीठां मीठां आशीष देजो, अम जेवाने उगारवा,
आतम लक्ष्मीनो लाभ करावी, काफलो सिद्धपुर पहोचाडजो... गुरु मारो०

परम कृपालु ज्ञाननिधि गुरुदेवश्री के परम उपकार को बारम्बार नमस्कार!

★ ★ ★

विक्रम संवत् 2000 (सन् 1943-44)

'आत्मधर्म' प्रकाशन वर्ष

गुरुवर कहान राजकोट सदर के 'आनन्द भवन' में विराज रहे हैं। प्रातः-दोपहर समयसारजी पर 'वांकानेर नो उतारो' में प्रवचन चल रहे हैं। रात्रि में तत्त्वचर्चा होती है।

एक वेदान्ती साधु को समाचार मिलता है कि एक जैन के महाराज आये हैं और आत्मा की - अध्यात्म की बात करते हैं। यह सुनकर उस साधु को आश्चर्य होता है और कहता है 'चलो सुननें।' वह साधु व्याख्यान सुनने आता है। गुरुदेवश्री के व्याख्यान में ऐसी बात आती है कि 'पर्याय अपेक्षा से आत्मा अनित्य है।' यह सुनकर वेदान्ती साधु कहता है 'क्या आत्मा अनित्य है ? वह पलटता है ? चलो, यहाँ से भागो।' अनेकान्तस्वरूप आत्मा नित्य भी है और अनित्य भी है। — ऐसी सत्य बात जैनदर्शन के सिवाय कहाँ है ?

जिन के मुखारविन्द से जिनधर्म-जिनवाणी का विशाल अखण्ड-अटूट प्रवाह धारावाही बह रहा है - ऐसे गुरुराज का प्रभावना विस्तार बढ़ता जा रहा है। विदेशों में भी प्रभावना प्रकाश फैलता है। देश-विदेश के नगरों में बसनेवाले गुरुभक्तों के घर-घर में गुरुवाणी का लाभ नियमितरूप से मिलता रहे — ऐसे पवित्र उद्देश्य से एक पत्रिका प्रकाशित करने की आवश्यकता ज्ञात होती है, जिसके फलस्वरूप मार्गशीर्ष शुक्ल दूज को मुरब्बी श्री रामजीभाई दोशी के सम्पादकत्व में शाश्वत सुख का मार्ग दर्शानेवाला मासिक पत्र 'आत्मधर्म' का प्रकाशन शुरु होता है। उसमें गुरुदेवश्री के मंगल प्रवचनों के उपरान्त आपश्री के निमित्त से हो रही वीतरागमार्ग की प्रभावना का समाचार भी दिया जाता है। 'आत्मधर्म' का प्रकाशन होते ही उसके 400 ग्राहक बनते हैं। इस 'आत्मधर्म' से दिगम्बर जैन समाज के प्रमुख नेता इन्दौर के सर हुकमचन्दजी सेठ जैसे महानुभाव भी गुरुदेवश्री के प्रति आकर्षित होते हैं। वे एक साथ 25 वर्ष का सदस्यता शुल्क भेजते हैं और हिन्दी भाषा में भी 'आत्मधर्म' प्रकाशित हो — ऐसी भावनापूर्वक एक हजार एक रुपये भेजते हैं।

राजकोट में चैत्र कृष्ण दूज के अन्तिम प्रवचन में आपश्री फरमाते हैं : 'शुभवृत्ति राग है, विकार है, उससे धर्म माननेवाले आत्मा के स्वरूप का खून करते हैं।' ज्ञानी की भाषा कड़क होने पर भी वह अत्यन्त करुणाभीनी होती है हाँ!

इस प्रकार राजकोट में नौ महीने अभूतपूर्व धर्मप्रभावना करके, चातुर्मास पूर्ण करके तथा तत्त्वज्ञानजल द्वारा आत्मार्थी जीवों को पवित्र करके, चैत्र कृष्ण तृतीया के दिन पुनः सोनगढ़ पधारने के लिए गुरुदेवश्री राजकोट से विहार करते हैं। पुनः एक बार रास्ते में आते हुए गाँव-गाँव में वीतरागधर्म का विजय डंका बजाते हैं। वींछिया आने पर 'जयधवला' का पहला भाग हाथ में आता है। उसका स्वाध्याय करने पर उस जिनवाणी के प्रति अतिशय बहुमान जागृत होता है; इसलिए प्रवचनों में प्रमोदपूर्वक उसके कितने ही अंशों का अर्थ समझाते हैं तथा मार्ग में आनेवाले गाँवों में मुमुक्षुओं द्वारा उत्साह से जिनवाणी 'जयधवला' की श्रुतपूजन होती है।

चैत्र शुक्ल त्रयोदशी — महावीर जयन्ती और परिवर्तन के मंगल दिन श्री भागचन्दजी कृत 'सत्तास्वरूप' का प्रकाशन होता है।

गुरुवर कहान वैशाख कृष्ण एकादशी के दिन पुनः सोनगढ़ पधारते हैं।

अब तो जिनमन्दिर, समवसरण और आपश्री की उपस्थिति से सोनगढ़ एक अध्यात्म तत्त्वज्ञान का प्याऊ—अध्यात्म तीर्थधाम—बन गया है। गुरुदेवश्री ने अन्तर-मन्थन से शोध निकाला तथा अनुभव से सिद्ध ऐसे सिद्धान्तों से भरपूर वीतरागमार्ग जैसे-जैसे प्रकाश में आता है, वैसे-वैसे बाहर गाँव से अधिक से अधिक जिज्ञासु आकर्षित होकर जिन-गुरुदर्शन और गुरुवाणी का लाभ लेने सोनगढ़ आते हैं। अरे! दूर के प्रदेशों से भी बहुत दिगम्बर त्यागी, पण्डित और जैन आते हैं।

स्वर्णपुरी के दैनिक कार्यक्रम में प्रातःकाल जिनेन्द्रपूजन तथा गुरुदेवश्री का व्याख्यान; दोपहर में फिर से व्याख्यान और जिनेन्द्रभक्ति; पश्चात् सायंकाल रात्रिचर्चा होती है। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत चर्चा-वार्ता होती है सो अलग। इस प्रकार पूरे दिन के विविध धार्मिक कार्यक्रमों से यात्रियों का समय आनन्दमय आराधना में व्यतीत होता है। शान्त अध्यात्ममय वातावरण देखकर बहुत से भक्त तो सोनगढ़ में घर लेकर सदा के लिए रहने

लगते हैं। आत्म-आराधनारत गुरुदेवश्री के अन्तर में जैसे-जैसे श्रुतलब्धि खिलती है, वैसे-वैसे नये-नये न्याय-सिद्धान्त प्रसिद्धि में आने लगते हैं। इससे धर्मोद्योत दिन-प्रतिदिन प्रबल रीति से वृद्धिंगत होता जाता है।

समयसार पढ़नेवाले पण्डित नन्दलालजी स्वर्णपुरी आते हैं। गुरुवर्य की प्रवचन सभा में सैकड़ों श्रोताओं की उपस्थिति देखकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं और कहते हैं : 'हम समयसार पढ़ते हैं तो मुश्किल से दो-तीन व्यक्ति बैठे होते हैं, जबकि आपकी सभा में 150 श्रोता!!!' अनुभवरसभीनी न्यायपूर्ण तत्त्व की बात सुनने कौन नहीं आयेगा?

ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी — श्रुतपंचमी के पवित्र दिन 'जयधवला' पर विशिष्ट प्रवचन होता है। उसमें गुरुवरश्री फरमाते हैं : 'सन्तों ने अपने हृदयकुण्ड में वीतरागी अमृत भर रखा है और उनका प्रवाह यहाँ प्रवाहित किया है। अहा! जगत का अहो भाग्य है कि वीतराग की वाणी रह गयी।'

आज 'द्रव्यसंग्रह' का प्रकाशन होता है।

वीरशासन जयन्ती, श्रावण कृष्ण एकम। संवत् 1995 में राजकोट में हुए 'अपूर्व अवसर' पर प्रवचन प्रसिद्ध होते हैं। गुरुदेवश्री के निमित्त से समयसार, अनुभवप्रकाश इत्यादि दिगम्बर शास्त्र गुजराती में प्रकाशित हुए हैं और उनका बहुत प्रचार हो रहा है। अरे! गुजराती समयसार की दो हजार प्रतियाँ तुरन्त ही समाप्त हो जाती हैं। यही सूचित करता है कि पात्र जीव कैसे तत्त्वपिपासु हैं। अब गुजराती भाषी अध्यात्मप्रेमी जिज्ञासुओं को अपनी ही भाषा में सत्साहित्य सुलभ होने लगता है।

वर्तमान में धर्म का महान क्रान्तिकाल चल रहा है। चैतन्यचिन्तामणि गुरुदेवश्री की कल्याणकारी वाणी का श्रवण किसी भी प्रकार से करने के लिए हजारों जीव उत्कंठित थे -आतुर हो रहे थे। ऐसे में 'आत्मधर्म' की शुरुआत होती है, जिसका स्वाध्याय करके जिज्ञासु जीव घर बैठकर किंचित् अंश में तृप्त होते हैं और बहुत से जीव तो साक्षात् वाणी सुनने सोनगढ़ आने लगते हैं।

कितने ही गाँवों में तो थोड़े मुमुक्षु एकत्रित होकर 'मुमुक्षु मण्डल' की स्थापना

करते हैं और गुरुदेवश्री से प्राप्त अध्यात्म मर्म अनुसार शास्त्रों का नियमित स्वाध्याय भी करते हैं। इस प्रकार गुरुवर की कृपा से निर्मल जिनवाणी गंगा का प्रवाह चारों ओर बहने लगता है और हजारों सुपात्र जीव उसमें डुबकी लगाकर पवित्र होते हैं।

विक्रम संवत् 1978 में प्रथम बार समयसार पढ़ा तब से ही यद्यपि 'पर्याय क्रमबद्ध होती है' ऐसा अन्दर से आया था, तथापि इस वर्ष समयसार की गाथा 308 से 311 के आधार से क्रमबद्धपर्याय का विशेष ख्याल आता है।

एक भाई प्रश्न करते हैं : 'आप संसार में दु:ख कहते हो, परन्तु हम तो संसार में खाते, पीते, मौज करते हैं; इस कारण उसमें दु:ख कहाँ है?' गुरुवर उत्तर देते हैं : 'भाई! संसार में अपनी स्वाधीनता लुटती है और पराधीन हुए हो यह दु:ख नहीं तो क्या है? पर के आश्रय में गये हो वह दु:ख ही है, फिर भी उसका पता नहीं!' अरे! यह कैसी विचित्रता है कि हम अपने वेदन को पहचान नहीं सकते।

एक ब्रह्मचारी, गुरुवर की वाणी का लाभ लेने गुरुदेवश्री के पास आते हैं और दो महीने रहते हैं। उसके साथ बातचीत करते समय 'द्रव्यसंग्रह' का आधार देकर गुरुवर्य कहते हैं : 'हस्तादि की क्रिया स्वयमेव होती है, उसका कर्ता आत्मा नहीं है।' बातचीत से तत्त्व का लाभ होने पर वे कहते हैं : 'आप जो बात कहते हो, उसका तो हमें कुछ पता ही नहीं है।' अरे! तत्त्व का कुछ पता नहीं और त्यागी नाम धारण करना है!

इस वर्ष गुरुदेवश्री व्यक्तिगत स्वाध्याय में 'श्रीमद् राजचन्द्र' पुस्तक पढ़ते हैं। उसमें ऐसा आता है कि 'स्व-आकार परिणामी...।' यह पढ़ते ही ख्याल में आता है कि यह कारणशुद्धपर्याय की बात है। यद्यपि यह कारणशुद्धपर्याय की बात गत वर्ष पौष शुक्ल में नियमसार गाथा 15 से दृष्टान्तसहित कही थी कि : 'समुद्र का पानी वह द्रव्य है; शीतलता वह गुण है; पानी की एकरूप सतह वह कारणशुद्धपर्याय है और इस सतह के ऊपर की हिलोरें अर्थात् लहरें वह कार्यपर्याय है। इसी प्रकार चैतन्यरत्नाकर आत्मा वह द्रव्य है; ज्ञानादि स्वभाव वे गुण हैं; गुणों की एकरूप पर्याय वह कारणशुद्धपर्याय है और उसके ऊपर जो पुण्य-पाप या शुद्धतारूप हिलोरें हैं वे कार्यपर्याय है। यह कार्यपर्याय द्रव्य, गुण या कारणशुद्धपर्याय में नहीं है।'

श्रावण शुक्ल द्वादशी, दिनांक 01–08–1944 के दिन समयसारजी पर छठवीं बार के प्रवचन पूर्ण होते हैं और दूसरे ही दिन सातवीं बार के प्रवचनों का प्रारम्भ होता है। अहा! समयसारजी पर अद्भुत प्रवचन सुनकर कौन आत्मार्थी जीव 'रागादि मेरे हैं और मैं उनका स्वामी हूँ' — ऐसी मिथ्याबुद्धि को पकड़े रहेगा? अहो! सर्वज्ञ का अंतरंग और आचार्यों का हार्द प्रभावशाली तथा कल्याणकारी गुरुवाणी में समाहित है।

गुरुदेवश्री फरमाते हैं : 'समयसार अर्थात् केवली का सन्देश। उसका अध्ययन–मनन–स्वाध्याय जीवन के अन्तिम श्वासोच्छवास तक करने योग्य है। उसे मात्र शब्द नहीं समझना, वह तो देवी मन्त्र–वाणी–शास्त्र है; भरतक्षेत्र का भगवान है और कामधेनु गाय है। अहो! भरतक्षेत्र में अभी ऐसा दूसरा कोई शास्त्र नहीं है। जैसे भगवान एक ॐ में पूरा कहते हैं, वैसे आचार्यदेव एक पद में पूरी बात कहते हैं। समयसार सब प्रकार से पूर्ण ही है।'

समयसार के प्रवचनों की पूर्णाहुति के प्रसंग पर दोपहर की भक्ति में 'जय समयसार! जय समयसार!' के साथ–साथ 'जय गुरुराज! जय गुरुराज!' की बेहद उल्लासभरी धुन जमती है और अजब उत्साहमय भक्ति पूर्ण होने पर देव–शास्त्र–गुरु का गगनभेदी जयनाद करते हुए भक्त थकते नहीं। जयवन्त वर्तो श्री समयसार और उसके समझानेवाले श्रीसद्गुरुदेव!

जिसमें अध्यात्म की गन्ध भी नहीं है, मात्र जड़क्रिया है — ऐसे सम्प्रदाय में 30 वर्ष पहले साधु और श्रावकों की स्थिति कैसी थी उसकी बात करते हुए गुरुदेवश्री कहते थे : विक्रम संवत् 1971 में मूलचन्दजी को प्रश्न किया कि धर्मास्तिकाय के गुण कितने? उन्होंने कहा : 'मात्र दो, गतिहेतुत्व और अरूपी।' अरे...रे! गुरुभाई मूलचन्दजी जैन के बैरिस्टर कहलाते थे, तो भी इतना ही पता था!

इसी प्रकार विक्रम संवत् 1976 में वढ़वान में एक साधु को पूछा : 'सामायिक क्या है – द्रव्य, गुण या पर्याय? त्रस या स्थावर?' उन्होंने उत्तर दिया : 'मेरे गुरु ने सिखाया नहीं।' अरे! जहाँ साधु को ही पता न हो, वहाँ श्रावक की बात तो क्या करना?

इसी वर्ष एक व्यक्ति सत्य से विरुद्ध सम्प्रदाय की – मताग्रह की बात करने लगा।

तब अत्यन्त कड़क शब्दों में कहा : 'मैं इसी स्थिति में अर्थात् स्थानकवासी साधुरूप ही रहूँ — ऐसा बँधा हुआ नहीं हूँ। इसीलिए तुम सत्य क्या है वह बात करो, किसी पक्ष या सम्प्रदाय की नहीं।' देखो! सम्प्रदाय के साधुरूप में होने पर भी साम्प्रदायिक बन्धन स्वीकार्य नहीं था।

सम्प्रदाय के समय का दूसरा प्रसंग भी जानने योग्य है। नारणभाई ने एक साध्वी को प्रश्न किया : 'तुम भव्य हो या अभव्य?' ऐसे प्रश्न से उलझी हुई उस साध्वी ने कहा : 'कानजीस्वामी नामक एक साधु बहुत प्रसिद्ध है उनसे पूछो, उनसे स्पष्टीकरण मिलेगा।' इसलिए नारणभाई राणपुर के पुराने उपाश्रय में आये। वहाँ सात-आठ साधु बैठे थे। कानजीस्वामी कौन है इसकी नारणभाई को कुछ भी पहचान नहीं थी, तथापि सहज ही वे सीधे उनके पास आये और प्रश्न किया : 'आप भव्य हो या अभव्य?' निःशंकता से कानजीस्वामी ने जवाब दिया : 'हम भव्य हैं या अभव्य यह क्या पूछते हो? हमारे संसार ही नहीं, हमारे भव आदि कुछ नहीं।' अहो! कैसी दृढ़ता! कैसा वीर्य का बल! भव का अभाव ही आपश्री का लक्ष्य-साध्य है।

विक्रम संवत् 1977 की बात है। दीक्षा लेने के बाद प्रथम बार भावनगर आना हुआ। उस समय सत्याग्रही के रूप में महात्मा गाँधी बाह्य में प्रसिद्ध होने से चुस्त नियम के आग्रही कानजीस्वामी के विषय में लोग कहते : 'धर्म के गाँधी' आये हैं। आपश्री की आहार लेने की क्रिया ऐसी कड़क कि लोग डरते थे। आहार देने में जरा-सी भूल होती तो वे आहार लिये बिना ही वापस चले जाते। इसलिए लोग रोते कि हमारे यहाँ आये, परन्तु वापस चले गये।

इसी वर्ष की बोटाद की बात है। विलायत की परीक्षा उत्तीर्ण एक भाई दर्शन करने आये, उनको पूछा : 'भाई! आत्मा के विषय में कुछ पढ़ा है?' उत्तर मिला : 'पढ़ा है सही, परन्तु आत्मा है या नहीं — इस विषय में अभी निर्णय नहीं किया है।' लो, यह बड़े पढ़कर आये! अभी आत्मा है या नहीं — इसका निर्णय भी नहीं, तो फिर आत्मा कैसा है और किस प्रकार प्राप्त होता है — यह बात तो कहाँ रही?

इस वर्ष का चातुर्मास राजकोट में था। पर्यूषण पर्व आने पर प्रथम दिन फरमाया :

'आज आर्यपने का दिन है, क्योंकि 42000 वर्ष से मांसाहार होता था वह आज के दिन से बन्द होकर शाकाहारपना शुरु हुआ था और वास्तव में तो चारित्र ही आर्यपना है।'

तत्त्व की सूक्ष्म विचारधारा तो आपश्री के अध्यात्म जीवन के साथ घुल-मिल गयी थी। सम्प्रदाय में थे तब भी तत्त्व चिन्तन की धारा निरन्तर बहती थी। विक्रम संवत् 1981 में गढ़डा में आया हुआ एक विचार बतलाते हुए कहा : 'निगोद या एकेन्द्रिय जीव को दर्शनमोहनीय कर्म की स्थिति अधिकतम एक सागर की होती है, परन्तु वहाँ से बाहर निकलता है तब उसकी स्थिति अन्तः कोड़ाकोड़ी सागर की हो जाती है। तो, कर्म की स्थिति बढ़ी क्यों ? यदि कर्म से 'डिग्री टू डिग्री' विकार होता हो तो इस प्रकार से स्थिति कैसे बढ़े ? स्वयं स्वतः ही समाधान किया : 'भाई ! जीव के पर्याय की — उल्टे पुरुषार्थ की—स्वतन्त्र योग्यता ही ऐसी है कि कर्म की स्थिति अल्प होने पर भी अधिक जुड़ता है-राग करता है और इस कारण कर्म की स्थिति बढ़ती है। जीव एकेन्द्रियपने में से बाहर निकलता है तब वीर्य का क्षयोपशम बढ़ता है न ? तो उस वीर्य का उल्टापना-विपरीतपना बढ़ता है उससे कर्म की स्थिति भी बढ़ जाती है।' वाह ! कैसी तर्कबद्ध न्यायपूर्ण बात !

संवत् 1982 में नारणभाई के साथ चर्चा होने पर कहा : 'जैसे-जैसे जीव में शुभभाव बढ़ता है, वैसे-वैसे पुद्गलकर्म में साता-पुण्य का रस बढ़ता है, तथापि जीव -पुद्गल दोनों का स्वभाव स्वतन्त्र है।'

विक्रम संवत् 1983 में एक भाई कहते है : 'क्षयोपशमभाव बन्ध का कारण है - ऐसा मैंने सारी रात विचार करके निर्णय किया है।' कानजीस्वामी कहते हैं : 'कैसे ?' वह भाई कहते हैं : 'देखो, मनुष्यपना बँधता है वह क्षयोपशमभाव से बँधता है न ?' बन्ध-मोक्ष के यथार्थ कारण के ज्ञाता कानजीस्वामी कहते हैं : 'नहीं, नहीं; मनुष्यपना तो उदयभाव से बँधता है, क्षयोपशमभाव से नहीं।'

आपश्री सम्प्रदाय में थे तब एक बार बगसरा में कहा : 'मुक्ति का मार्ग तो यह है। यदि वह प्राप्त न हो सके तो श्रद्धा तो अवश्य करने योग्य है कि यही मार्ग है।' यह सुनकर एक श्रोता ने कहा : 'आप मुक्ति की बात करते हो, परन्तु हमें वह नहीं चाहिए।' उनसे प्रश्न किया गया : 'तो तुम्हें क्या चाहिए ?' उत्तर मिला : 'अहमदाबाद के माणेक चौक

में जौहरी होना है।' उस समय आश्चर्यपूर्वक खेद हुआ कि अरे! ऐसी भावना! ऐसी याचना! अहो! तृष्णा की कैसी विचित्रता है!!

कानजीस्वामी स्थानकवासी साधु थे तो भी विक्रम संवत् 1984 में वढ़वान में नारणभाई के साथ बातचीत में कहा : 'पात्र लेने का भाव मुनि को नहीं होता और स्त्री का मोक्ष हो, यह बात बैठती नहीं।'

विक्रम संवत् 1984 का चातुर्मास राणपुर में था। उस समय के एक प्रसंग की बात है : उपाश्रय के सामने एक गरीब व्यक्ति खाट भरने का काम करता था। दोपहर के खाने का समय होने पर उसकी स्त्री और बालक बाजरे की सूखी रोटी तथा छाछ लेकर आयें। सब साथ मिलकर खाने बैठे। वह व्यक्ति बाजरे की सूखी रोटी और छाछ को ऐसे रस से खाता था कि मानो चक्रवर्ती भोजन करने बैठा हो। इसी प्रकार अरे...रे..! यह अज्ञानी जीव भी मर्यादित विषयों में अमर्यादित ममता करता ही है न?

यहाँ वीरजीभाई वारिया ने प्रश्न किया : 'यह जितने प्रकृति के परमाणु हैं वे सब तो स्वतन्त्र जड़ की पर्याय है, परन्तु आत्मा में उसे निमित्त हो ऐसा प्रकार / भाव है या नहीं?' उसका समाधान किया : 'हाँ, आत्मा में है न! जितने प्रकार से — प्रमाण में जड़कर्म प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभागरूप से बँधता है, उतने ही प्रकार — प्रमाण में उसे निमित्त हो — ऐसा विकृतभाव स्वयं के कारण जीव की पर्याय में होता है, क्योंकि जीव के परिणाम और जड़कर्म के बीच निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है न! तथापि निमित्तरूप विभावभाव जड़कर्म में कुछ नहीं करता।' इस प्रकार की बात विक्रम संवत् 1989 में खस गाँव में भी की थी कि निमित्त कोई भी कार्य जबरदस्ती नहीं कराता। हाँ, उपादान स्वयं परिणमता है तो निमित्त की उपस्थिति होती है। अहा...! तत्त्व की सत्य बात सहजरूप से अन्दर से आती थी न?

इसी प्रकार दूसरे किसी प्रसंग में वीरजीभाई के साथ बातचीत होने पर कहा : 'शास्त्र में आता है कि अज्ञानी शास्त्र की बात धारण करता है तथा प्ररूपण भी करता है, परन्तु इससे वह शास्त्र की सत्य बात को जानता है — ऐसा नहीं है। देखो! यह क्या कहते हैं? कि अज्ञानी सच्चा-यथार्थ नहीं जानता; भावश्रुतज्ञानी-सम्यग्ज्ञानी ही सत्य जानता है।'

तथा एक बार चर्चा–वार्ता के समय ऐसा भी कहा कि ‘पर्याय का लक्ष्य (ध्येय) द्रव्य है।’ अहो! वर्षों पहले भी सत्य का आविष्कार कैसा किया!!

कोई न्याय से विरुद्ध असत्य कहे — फिर भले ही कहनेवाला बाह्य में बड़ा व्यक्ति हो तो भी — वह स्वीकार कर लेना यह आपश्री की प्रकृति ही नहीं और कोई छोटा व्यक्ति भी न्यायपूर्ण सत्य कहे तो स्वीकार करने में जरा भी हिचकिचाहट न हो — ऐसे सरल भी आपश्री हैं। बात है विक्रम संवत् 1985 की, वढ़वान गाँव की। लींबड़ी सम्प्रदाय के मोहनलालजी नामक साधु ने एक पुस्तक में लिखा : ‘अभव्य को मोहनीय कर्म की छब्बीस प्रकृति होती है और जो मोक्ष जानेवाला है उस भव्य को उसकी सत्ताईस प्रकृतियाँ होती हैं।’ इस विषय में कानजीस्वामी ने अति दृढ़ता से कहा : ‘नहीं, ऐसा नहीं है। भव्य हो या अभव्य, अनादि से जो सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं हुआ है उस मिथ्यादृष्टि को, मोहनीय कर्म की छब्बीस ही प्रकृतियाँ होती हैं। फिर सम्यग्दर्शन होने पर दर्शनमोहनीय के तीन टुकड़े होते हैं।’ मोहनलालजी की दीक्षा पर्याय के बहुत वर्ष हुए थे और कानजीस्वामी को दीक्षा लिये पन्द्रह वर्ष ही हुए थे, तथापि कानजीस्वामी की प्रतिष्ठा बहुत थी; इस कारण उनकी बात सब मानते थे। देखो! बात अध्यात्म की हो या करणानुयोग की; सत्य ही होनी चाहिए न?

विक्रम संवत् 1986 में भावनगर में प्रथम बार दिगम्बर साधु को देखा। उनको देखकर कहा : ‘मुनि जिनकल्पी हों या स्थविरकल्पी; वस्त्ररहित ही होते हैं।’ अहो! स्वयं सम्प्रदाय में होने पर भी सत्य को ढूंढ़ निकाला था न!

यहीं ज्येष्ठ महीने में एक साधु को कहा : ‘ज्ञेय के स्व और पर — ऐसे भेद हैं, परन्तु उन्हें जानने की शक्ति तो ज्ञान की है। आता है न? कि स्व–पर प्रकाशक शकति हमारी....’

राजकोट के मोतीलालजी – जो कि परमहंस (वेदान्ती साधु) हुए थे, उनके साथ एक बार चर्चा हुई। उन्हें समझाते हुए कहा : ‘वेदान्त ऐसा कहता है कि आत्यान्तिक दुःख से मुक्त होओ। तो फिर दुःख है यह बात सिद्ध होती है न? क्योंकि यदि दुःख न होवे तो आनन्द होना चाहिए और आनन्द नहीं है तो इसका अर्थ यह हुआ कि दुःख है तथा यदि दुःख है तो उसमें कोई दूसरी चीज निमित्त होनी चाहिए न? क्योंकि दुःख, वह स्वभावभाव

नहीं है; इसलिए उसमें दूसरी चीज निमित्त है और वह कर्म है। इस प्रकार दु:ख भी सिद्ध हुआ और उसमें निमित्त ऐसी दूसरी चीज–कर्म भी सिद्ध हुआ; अद्वैतपना नहीं रहा।' तुरन्त ही मोतीलालजी ने कहा : 'कुछ सत्य लगता है, हाँ!' न्याय से बात आती है तो स्वीकार ही करनी पड़ती है न!

स्थानकवासी साधु शतावधानी रतनचन्दजी ने एक शब्दकोश बनाया। उसमें 'चैत्य' शब्द आने पर उसका अर्थ 'प्रतिमा' नहीं किया। उनसे इस विषय में पूछा : 'ऐसा क्यों किया है?' उत्तर प्राप्त हुआ : 'चैत्य का अर्थ प्रतिमा होता है अवश्य, परन्तु मैं क्या करूँ? मैं किसमें हूँ?' अहो! सम्प्रदाय की दृष्टि छोड़ना — उसमें से बाहर निकलना — बहुत पुरुषार्थ सापेक्ष है।

कानजीस्वामी के पास बहुत लोग — अरे! मूर्तिपूजक श्वेताम्बर गृहस्थ भी — आकर कहते : 'महाराज! कुछ आज्ञा करो।' अर्थात् पाँच-पच्चीस हजार रुपये खर्च करने को कहो। राणपुर में पैसेवाले नागरभाई पुरुषोत्तम के भाई उजमशीभाई ने ऐसा कहा तब उनसे कहा : 'भाई! हम किसी को कहते नहीं कि यह लाओ और पैसा खर्च करो। यह हमारा काम नहीं।' वाह! क्या निस्पृहता! उपेक्षा!!

परिवर्तन के पहले की बात है। विक्रम संवत् 1990 के पौष महीने में बोटाद में थे तब प्रवचन में कहा : 'सोने की डली बहुत रजकणों की बनी है, वह एक वस्तु नहीं।' यह सुनकर एक श्रावक ने पूछा : 'महाराज! आत्मा कितने रजकणों का बना है?' देखो तो सही, सम्प्रदाय के श्रावकों का अज्ञान! फिर दूसरे श्रावक ने कहा 'भगवान लोकालोक का नाटक देखते हैं इसलिए उन्हें बहुत आनन्द है, जबकि हम एक-दो नाटक देखते हैं इसलिए थोड़ा आनन्द है।' अरे...रे...! जैन होकर भी ऐसी मूर्खता!

विक्रम संवत् 1991, फाल्गुन महीना, उमराला। परिवर्तन के लिए सोनगढ़ आने से पहले यहाँ भावनगर के पुरुषोत्तमभाई कामदार ने (दासभाई ने) पूछा : 'वेद्य-वेदकभाव एक साथ क्यों नहीं होता?' समाधान : 'भाई! जब वेदने का भाव है, तब वेदनेयोग्य भाव या सामग्री नहीं होती और जब भाव या सामग्री आती है, तब पूर्व का वेदकभाव नहीं होता। इस प्रकार नाशवान ऐसे वेदकभाव और वेद्यभाव का सम्बन्ध नहीं बनता; इसलिए ज्ञानी कुछ भी नहीं चाहता।' अहो! वैराग्यवन्त ज्ञानी को किसकी इच्छा होगी?

प्रवचन या चर्चा में जब जब भी सर्वज्ञ की अथवा केवलज्ञान की बात निकलती है, तब अति उत्साह में आकर गुरुदेवश्री फरमाते हैं : ''जो केवली भगवान को जानता है — सर्वज्ञ जिसके ज्ञान में बैठे हैं — उसे भव होते ही नहीं, उसके भव भगवान ने देखे ही नहीं; क्योंकि जो केवली भगवान को जानता है वह अपनी आत्मा को भी जानता है और इस कारण उसके मोह का नाश होता ही है। ऐसा – मोह का नाश हो ऐसा — भगवान का उपदेश होता है। उसमें भव के अभाव की ही बात होती है और ऐसी वाणी ही हमें स्वीकार्य है, दूसरी नहीं।

स्वयं केवली भगवान, भव का अभाव करके विज्ञानघन हुए हैं; इसलिए 'हमारे द्रव्य–गुण–पर्याय को जो जानता है, वह अपने आत्मा को जानता है और उसे भव नहीं होते' – ऐसी भव के अभाववाली वाणी उनकी होती है। सर्वज्ञ भगवन्त ने अज्ञान और राग का नाश किया है, इसलिए उनकी दिव्यवाणी भी वैसी ही होती है। भव के छेद की बात उनकी वाणी में होती है और वह आगम है।''

इस बात से विक्रम संवत् 1972 में हुई चर्चा का स्मरण करके ज्ञानप्रभावक गुरुदेवश्री कहते हैं : ''मैंने गुरुभाई मूलचन्दजी को तब कहा था कि 'भगवान ने देखा होगा उस दिन भव कम होंगे' — ऐसी बात कहाँ से अर्थात् क्या पढ़कर या सुनकर बोलते हो ? यह तुम क्या कहते हो–बोलते हो–इसका तुम्हें पता है ? ऐसी वाणी वीतराग की या आगम की नहीं हो सकती। भगवान जब पूर्ण वीतरागता और सर्वज्ञता को साधते थे तब पूर्ण होने का विकल्प था, और उससे वाणी के योग्य परमाणु बँधे थे; इस कारण पूर्णता होने पर जब वाणी छूटती है तब राग और अल्पज्ञता मिटे और पूर्णता हो — ऐसा ही उपदेश उसमें होता है। तथा जो जीव उस वीतरागवाणी को अन्तर्लक्ष से सुनता है वह जीव भी वीतराग–सर्वज्ञ हुए बिना रहता ही नहीं। इस शैली की बात उस दिन अन्तर से आयी थी।''

जिनका समग्र जीवन और उपदेश अध्यात्मतत्त्व से सराबोर तथा ओतप्रोत है — ऐसे अध्यात्ममूर्ति ज्ञानावतारी गुरुदेवश्री जिस धारा को पूर्वभव से अन्तरंग रुचि में संग्रहित करके यहाँ लाये हैं तथा इस भव में जिन्हें घोंट रहे हैं, उन वीतराग तीर्थंकरदेव के वचनों की धारा से भक्त तो निहाल होते ही हैं, साथ–साथ आपश्री का निरन्तर वृद्धिंगत निर्मल

भावश्रुतज्ञान भण्डार में से सहज उछलते अमोघ, अबाधित सिद्धान्त-न्याय सुनकर, अध्यात्म के प्रबल आन्दोलन से प्रभावित होकर अनेक जैनेतर सुपात्र जीव भी श्रद्धा परिवर्तन करके आपश्री के भक्त-सेवक बनते हैं। वास्तव में आत्म-उपासना का यथार्थ पंथ बतलाकर आपश्री अनेक जीवों को जगा रहे हैं।

श्री भागचन्दजी कृत 'सत्तास्वरूप' पर भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशी से भाद्रपद शुक्ल पंचमी — ऐसे आठ दिन प्रवचन होते हैं। जो कालान्तर में 'मुक्ति का मार्ग' नाम से पुस्तकाकाररूप प्रकाशित होते हैं।

एक बार कोई प्रश्न करता है : 'तुम्हारे में गीता होती है ?' गुरुराज निःशंकता से तुरन्त ही उत्तर देते है : 'हाँ ! समयसार हमारी गीता है, क्योंकि उसमें आत्मा के गीत गाये हैं, गुण गाये हैं।'

कार्तिक कृष्ण षष्ठी को 'मोक्षमार्गप्रकाशक' पर प्रवचन प्रारम्भ होते हैं।

इस प्रकार जिस वर्ष में 'आत्मधर्म' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ, वह विक्रम संवत् 2000 का वर्ष पूर्ण होता है।

ज्ञानसागर गुरुदेव के कृपामय उपकार को परम भक्ति से बारम्बार नमस्कार !

★ ★ ★

विक्रम संवत् 2001 (सन् 1944-45)

'भगवान श्री कुन्दकुन्द-कहान जैन शास्त्रमाला' प्रारम्भ वर्ष

चर्चा के समय ज्ञानानन्द विहारी गुरुदेवश्री फरमाते हैं :

1. बस! यह अनेकान्त जैनदर्शन की चाबी है।
2. द्रव्य, गुण और पर्याय स्वतन्त्र सिद्ध है।
3. श्रद्धा की पर्याय का भी आश्रय श्रद्धा को नहीं; श्रद्धा-सम्यग्दर्शन का विषय अखण्ड ध्रुव आत्मा है।
4. द्रव्यस्वभाव में भव नहीं होने से उसकी दृष्टि में भी भव का अभाव ही है। द्रव्यदृष्टि भव का स्वीकार नहीं करती।
5. क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा में द्रव्य की श्रद्धा हो जाती है।

वाह! कैसा तत्त्व का प्रतिपादन!!

हजारों जीव शास्त्रों-प्रवचनों का अभ्यास कर सकें इसलिए 'भगवान श्री कुन्दकुन्द -कहान जैन शास्त्रमाला' शुरु की जाती है। भगवान श्री कुन्दकुन्द-कहान जैन शास्त्रमाला अर्थात् कुन्दकुन्द भगवन्त के अन्तरंग अनुभव में से झरे हुए मोतियों की कहानगुरु द्वारा गुंथी हुई माला। इस शास्त्रमाला के प्रथम मोतीरूप में आज — फाल्गुन शुक्ल दूज को — 'समयसार प्रवचन भाग-1' प्रसिद्ध होता है। जिसमें संवत् 1999 में राजकोट में समयसारजी पर हुए प्रवचन प्रकाशित हैं।

जन्म-मरण का चक्र मिटावे — ऐसी हितकारी वाणी बरसानेवाले गुरुदेवश्री के जीवन के 'वन' के वर्ष चल रहे है। उसमें इस वर्ष की 56 वीं जन्मजयन्ती प्रसंग में वैशाख महीने से 'आत्मधर्म' की हिन्दी आवृत्ति प्रारम्भ की जाती है।

गुरुवर कहान की पवित्र, उत्तम छत्रछाया—सान्निध्य से स्वर्णधाम का वातावरण अध्यात्म ज्ञान-वैराग्य-भक्ति की सुगन्ध से निरन्तर महक रहा है। अरे! आपश्री तो

स्वर्णपुरी में विगत दस वर्ष से, अमृत बरसाते हुए महामेघ की तरह, तत्त्वज्ञानामृत की मूसलाधार वर्षा कर रहे हैं। सौभाग्यशाली हजारों जैन तथा जैनेतर भी इस वर्षा में स्नान करके भवताप का नाश करते हैं। अहो! अध्यात्म से अजान जैनेतर भी इस प्रभावशाली आत्महितकारी उपदेश सुनकर दंग रह जाते हैं। अध्यात्मक्रान्तिवीर गुरु कहान सिंहनाद के समान जोरदार वाणी द्वारा सौराष्ट्र के गाँव-गाँव के बालक-युवा-वृद्धों में आत्ममन्थन का प्रबल आन्दोलन फैलाते हैं और इस बहुमूल्य मानवभव में यदि देहादि से भिन्न निज परमात्मतत्त्व को जाना—अनुभव नहीं किया तो यह भव निष्फल है, ऐसा ढ़िंढोरा पीटकर जग प्रसिद्ध करते हैं। आपश्री द्वारा जैनधर्म की अद्‌भुत प्रभावना और अध्यात्मज्ञान का बहुत प्रचार हो रहा है।

वागे छे ज्ञानावाजां, गुरुराजनां मंदिरिये;
गुरुराजनां मंदिरिये, स्वाध्याय सुमंदिरिये.... वागे....

प्रभु सुवर्णपुरी मांही, अचिंत्य ज्ञान खीलवी;
सूक्ष्म न्यायो प्रकाशी, ज्ञानज्योतिने जगावी.... वागे.....

मुखथी छूटे छे ध्वनि, अमृत समी ऐ वाणी;
सुणतां आनंद थाये, हृदय विकसीत थाये.... वागे.....

दिव्यध्वनिनो नाद छूट्यो, चारे दिशाऐ प्रसर्यो;
महिमा करूँ शी तेरी? अल्पमति छे मेरी.... वागे.....

शुद्ध ज्ञान ज्ञाता मांही, श्रद्धा प्रतीत करावे;
अकर्तापणुं छे तारुं, ऐ वातने मलावे.... वागे.....

भगवान कुंदकुंदनुं, शासन वर्ते छे जयवंत;
तुझ कुलने दिपाव्युं, गुरु कहानदेव विजयवंत.... वागे.....

जगतशिरोमणि छो, जगपूज्य वंदनिक छो;
वीतरागदेव वीरना, गुरु आप लघुनंदन छो.... वागे.....

इन्द्रो अने नरेन्द्रो, मांहो मांहे वात करता;
आ भरतक्षेत्र मांही, ऐ वीर कोण जाग्यो.... वागे.....

चालो सहु मलीने, सुवर्णपुरी जईऐ;
ज्ञायकस्वरूप सुणीने, जीवन कृतार्थ करीऐ.... वागे.....

भक्ति करवाने तारी, शरणे आव्यो हुं वारी;
दीन-हाथ ग्रहो कृपालु, मुझ रंकने उगारी.... वागे.....

ज्ञानपोषक सुमेघ गुरुराज अभी तक सौराष्ट्र से बाहर विचरे नहीं हैं, तथापि भारतभर में धर्मध्वज फहरा सकें — ऐसी सामर्थ्य आपश्री में दिखती है। अनुपम आत्मिक वीर्य-धारक पवित्र आत्मा गुरुवर कहान सौराष्ट्र की ही नहीं, भारत की विभूति हैं। आपश्री अनेक चैतन्य गुणों से शोभयमान हैं। आपश्री तीक्ष्ण-सूक्ष्म बुद्धि द्वारा तत्त्व की गहराई तक पहुँच जाते हैं और स्मरणशक्ति तो ऐसी है कि वर्षों पहले की बात तिथि-दिन सहित याद है। असत्य के समक्ष वज्र से भी कठोर-न झुकनेवाले होने पर भी, सत्य के समक्ष कुसुमवत् कोमल भी हैं, सहज नम जाते हैं। इस एक अध्यात्ममस्त आत्मानुभवी युगपुरुष के रग-रग में आत्म-अस्ति की मस्ती व्याप्त हो गयी है। आपश्री के शब्द-शब्द में अनुभूति झरती है और श्वास, श्वास में वीतरागता की झनकार उठती है। ऐसे गुरुदेवश्री भक्तों के अद्वितीय रत्न हैं और आपश्री से जिनशासन गौरववन्त है।

गुणरत्नभण्डार गुरुदेवश्री के प्रत्यक्ष परिचय में आनेवाले किसी भी व्यक्ति पर आपश्री के प्रतिभावन्त व्यक्तित्व का प्रभाव पड़े बिना रहता ही नहीं। अरे! 'आत्मधर्म' द्वारा आपश्री की परोक्ष ख्याति सुनकर दर्शन करने, प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त करने और भवताप-विनाशिनी वाणी सुनने दिगम्बर जैन समाज के श्रेष्ठी इन्दौर के सर श्री हुकमचन्दजी सेठ सोनगढ़ आने का निर्णय करते हैं।

इस समय के दौरान जसाणी परिवार की ओर से श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव रचित परमागम श्री समयसारजी की मूल गाथाओं को चाँदी के 31 पत्रों में उत्कीर्ण किया जाता है। इन पत्रों को 'स्वाध्याय मन्दिर' के समयसारजी के गोखल में विराजमान करने का तीन दिन का उत्सव ज्येष्ठ कृष्ण षष्ठी से अष्टमी तक मनाने का निर्णय किया जाता है। श्री हुकमचन्दजी सेठ इस उत्सव में भाग लेने के लिए परिवार तथा पण्डित जीवन्धरजी, पण्डित नाथूलालजी सहित दिनांक 1-6-45 के दिन सर्व प्रथम बार सोनगढ़ आते हैं। इस

प्रसंग में एक हजार मुमुक्षुओं का समुदाय भी उमड़ता है।

ज्येष्ठ कृष्ण षष्ठी के दिन अर्थात् प्रथम दिन प्रथम व्याख्यान सुनते ही हुकमचन्दजी बोल उठते हैं : 'श्री कुन्दकुन्दाचार्य भगवान ने शास्त्रों में सब कहा है, किन्तु उसका रहस्य समझाने के लिए आपका जन्म है।' वास्तव में इस महान आत्मतत्त्ववेत्ता सत्पुरुष का जन्म शुद्धनय और उसके विषयभूत त्रिकाली शुद्धात्मा का स्वरूप बतलाने के लिए ही हुआ है।

दूसरे दिन 'मोक्षमार्गप्रकाशक' पर प्रवचन में निश्चय-व्यवहार की सन्धिपूर्वक बात आने पर सेठ उत्साह से कहते हैं : 'महाराज! कोई लोग तो कहते थे कि आप व्यवहार का लोप करते हो, लेकिन मैं समझता हूँ कि आप तो निश्चय-व्यवहार का सच्चा ज्ञान दिखलाते हो।' व्याख्यान में पुरुषार्थ सम्बन्धी जोरदार बात आती है, तब वे उल्लास से उछलकर कहते हैं : 'महाराज! पुरुषार्थ से ही मुक्ति होती है। हमारे महा पुण्य से आपका जन्म हुआ है।'

सेठ ने अभी तक गुरुदेवश्री के तीन प्रवचन ही सुने हैं, तथापि उनसे प्रभावित होकर 25000 रुपये का दान प्रमोदपूर्वक घोषित करते हैं और कहते हैं : 'यदि इस अध्यात्म ज्ञान के लिए मेरा सब कुछ अर्पण किया जाये तो भी कम है।'

श्री हुकमचन्दजी के साथ आये हुए पण्डित जीवन्धरजी के साथ तत्त्वचर्चा भी होती है। वे कहते हैं : 'सिद्ध भगवान सिद्धशिला से ऊपर नहीं जाते, क्योंकि उससे आगे धर्मास्तिकाय नहीं है; इसलिए वे इतने पराधीन हैं।' उनका कहना यह था कि यह अनेकान्त मार्ग है; इसलिए सिद्ध भगवान कथंचित् स्वतन्त्र हैं और कथंचित् पराधीन हैं। उन्हें प्रेम से समझाते हुए करुणामूर्ति गुरुदेवश्री कहते हैं : 'सिद्ध भगवान सर्वथा स्वतन्त्र हैं और किंचित् भी पराधीन नहीं, यह अनेकान्त है। उनकी योग्यता ही लोकाग्र तक जाने की है, इसलिए वे आगे नहीं जाते। हाँ, धर्मास्तिकाय को सिद्ध करना हो, तब ऐसा कहा जाता है कि आगे धर्मास्तिकाय नहीं है इसलिए सिद्ध आगे नहीं जाते।' प्रश्न होता है : 'आपका एकान्त है।' अपूर्व दृढ़ता से उत्तर मिलता है : 'याद रखना! तुम्हें बदलना पड़ेगा, हमें नहीं। यह कोई 'छज्जेका छोड़' नहीं कि सूख जाये। सत्य चाहिए तो दुनिया को बदलना पड़ेगा।'

उपादान–निमित्त की चर्चा के समय पण्डित जीवन्धरजी कहते हैं : 'विकारी कार्य होने में कर्म के–निमित्त के पचास प्रतिशत हैं और जीव के–उपादान के पचास प्रतिशत हैं।' सकलभावों की स्वतन्त्रता का शंख फूँकनेवाले गुरुराज कहते हैं : 'शत–प्रतिशत अज्ञानी के उल्टे पुरुषार्थ से–उपादान से विकार होता है, उसमें कर्म का या निमित्त का एक प्रतिशत भी नहीं है। उपादान का शत–प्रतिशत उपादान में है और निमित्त का शत–प्रतिशत निमित्त में है।' हुकमचन्दजी सेठ यह चर्चा सुनकर पण्डित जीवन्धरजी को कहते हैं : 'यह बात अर्थात् कार्य उपादान से होता है या निमित्त से होता है यह बात, यहाँ नहीं छेड़ना।' निःशंकता के स्वामी गुरुदेवश्री कहते हैं : 'सेठ! यह बात क्यों नहीं छेड़ना? पण्डितों में, सेठों में — सब में यह बात छेड़ना।' सेठ उत्साह से कहते हैं : 'मैं अन्तःकरण से कहता हूँ कि आपकी बात ही सत्य है। आपकी बात पहले 'आत्मधर्म' में तो पढ़ी थी, परन्तु जब से यहाँ सभा में आपकी बात सुनी है, तब से मुझे निश्चय हो गया है कि आप कहते हो वह सत्य और अपूर्व ही है।'

गुरुवर्य के प्रवचन में समयसार के पुण्य–पाप अधिकार की गाथा 160 चलती है। इस विषय में एक पण्डित कहता है : 'देखो, आत्मा सर्वज्ञानी–दर्शी तो है, परन्तु कर्मरज से ढका हुआ होने से सबको नहीं जानता — ऐसा उसमें कहा है।' समयसारज्ञाता गुरुदेवश्री कहते हैं : 'भाई! तुम कहते हो ऐसा उसका अर्थ नहीं है। अन्दर टीका में देखो तो सही! आत्मा अपने अपराध से ढका हुआ है — ऐसा उसमें कहा है। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से भावकर्मरूपी मैल से लिप्त होने से सर्व को देखता–जानता नहीं।' क्या हो? यह बात अभी हिन्दुस्तान में चलती नहीं, इसलिए जीव क्या करे? तथा 'कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई....।' यह बात याद है न!

तीसरे दिन ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी — 'स्वाध्याय मन्दिर' के उद्घाटन के वार्षिक मंगल दिन श्री हुकमचन्दजी सेठ के हाथों से समयसारजी की गाथायें उत्कीर्ण चाँदी के पत्रों को समयसारजी के गोखल में विराजमान किया जाता है। अपनी भावना व्यक्त करते हुए वे कहते हैं : 'महाराजजी का यह अद्भुत तत्त्वज्ञान का प्रचार पूरी दुनिया में और सभी भाषा में हो — ऐसी हमारी भावना है।' आज के मंगल दिन 'समयसार प्रवचन भाग–3' प्रकाशित होता है।

वे सोनगढ़ में तीन दिन रुकते हैं। उस दौरान यहाँ का अध्यात्ममय वातावरण देखकर तथा गुरुवर की ज्ञानगंगामय पवित्र वाणी सुनकर प्रसन्न होते हैं। इस प्रसंग के बाद तो अनेक दिगम्बर जैन, त्यागी, पण्डित सोनगढ़ आने लगते हैं। जैसे-जैसे प्रभावनाप्रवाह बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे नये-नये अनेक जिज्ञासु भी सोनगढ़ की तरफ आकर्षित होते हैं। इस कारण उत्सव प्रसंगों में 'स्वाध्याय मन्दिर' छोटा पड़ने लगता है। इसलिए 'स्वाध्याय मन्दिर' की अपेक्षा चार गुना बड़ा, पच्चीस सौ श्रोता बैठ सकें इतना 50' × 100' का 'प्रवचन हॉल' बनाने का निर्णय लिया जाता है।

इस वर्ष भी ग्रीष्मकालीन अवकाश में बालकों-युवाओं के लिए शिक्षण वर्ग रखा जाता है, जिसमें 150 विद्यार्थी भाग लेते हैं। उन्हें श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, छहढाला तथा आत्मसिद्धि सिखलायी जाती है और अन्त में परीक्षा भी ली जाती है।

ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी, श्रुतपंचमी के पवित्र दिन 'ज्ञान की स्वाधीनता और अंश में पूर्ण की प्रत्यक्षता' प्रसिद्ध करता हुआ जयधवला पर विशिष्ट प्रवचन होता है, जो बाद में 'वस्तुविज्ञानसार' में प्रकाशित होता है।

भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशी से भैया भगवतीदास कृत 'उपादान-निमित्त संवाद' पर अद्भुत प्रवचन शुरु होते हैं, जो कालक्रम में 'मूल में भूल' नाम से पुस्तक के रूप में प्रसिद्ध होते हैं।

जिनप्रवचनरहस्य-उद्घाटक गुरुदेवश्री की निर्मल भावश्रुतज्ञानगंगा में निरन्तर उछलती नयी-नयी अध्यात्मन्यायतरंगों से... जैसे कि स्वभाव-विभाव की भिन्नता, निश्चय-व्यवहार की सन्धि, उपादान-निमित्त का सुमेल इत्यादि जिनसिद्धान्तों की लहरों से हजारों पात्र जीव पवित्र बनते हैं। गुरुराज फरमाते हैं : 'नियतवाद का निराकरण करनेवाला पुरुषार्थवाद है; शुभभाव से सुख नहीं होता और सर्वज्ञ को माननेवाले को भव नहीं होते।' — ऐसी मंगलवाणी से स्वर्णपुरी में दिन-रात तत्त्वज्ञान का आनन्दकारी वातावरण वर्त रहा है।

आश्विन शुक्ल एकम। जिसका गुजराती भाषान्तर तैयार हो रहा है, उस श्री प्रवचनसार परमागम पर प्रवचन शुरु होते हैं और भाषान्तर हुई 126 गाथा तक प्रवचन होते हैं।

इस वर्ष के अन्तिम दिन दीपावली के प्रवचन में विशिष्ट बात आती है। स्वयं गुरुकहान कहते हैं : ‘ध्यान रखना! आज का घोलन अलग ही प्रकार का आता है, आज विषय अच्छा आ गया है। अन्दर का घोलन बाहर आता है, आज तो अपूर्व भाव आये हैं, ऐसी सरस बात कभी नहीं हुई।’

दिव्यज्ञानमूर्ति भारत के भगवान परम कृपालु गुरुदेवश्री के चरण-कमल में परम भक्ति से नमस्कार...

★ ★ ★

विक्रम संवत् 2002 (सन् 1945-46)

गुरुवाणी के प्रताप से सोगानीजी को समकित प्राप्ति का वर्ष

अध्यात्मक्रान्ति के सूत्रधार कहान गुरुदेव के नेतृत्व तले आनन्दकारी मोक्ष का कारवां चल रहा है। प्रतिदिन उसमें नये-नये जिज्ञासु जुड़ते जा रहे हैं। गुरुराज भी नित्य अनुपम न्यायों द्वारा मार्ग की अलौकिक प्रभावना कर रहे हैं। आपश्री कहते हैं :

1. सर्वज्ञ भगवान कहते हैं कि मैं और तू समान हैं। बोल! यह बात तुझे बैठती है? तू इस बात को स्वीकार करता है? यदि हाँ, तो मोक्ष में चला आ।
2. जो आत्मा को भगवान माने, वह भगवान होता है।
3. दर्शनशुद्धि से ही आत्मसिद्धि — यह जैनधर्म का मुद्रा लेख है।
4. अनन्त ज्ञानी कहते हैं कि तू प्रभु है, तो अब प्रभु! तेरे प्रभुत्व की एक बार 'हाँ' तो कर!
5. ध्रुवतत्त्व की खोज वह सत्पुरुषार्थ है।
6. स्वरूप का अज्ञानपना और परवस्तु में सुखबुद्धि यह महान अपराध है।
7. सूर्योदय, सूर्यास्त होने के लिए है; इसी प्रकार संयोग, वियोग होने के लिए है, स्थायी रहने के लिए नहीं।
8. मृगजल में पानी जैसा दिखता है, परन्तु होता नहीं; इसी प्रकार पुण्यभाव में सुख-शान्ति जैसा दिखता है, परन्तु होते नहीं।
9. अरे भाई! तुझे दु:ख मिटाने की बात सुनने को मिली और उसे सुनानेवाले सन्त मिले तो भी चेहरे पर प्रसन्नता नहीं!!
10. तेरी अस्ति से तो दूसरे की अस्ति ज्ञात होती है, तो फिर तेरी महिमा है या दूसरे की?
11. जो स्वरूप में विहार नहीं करता, उसे सुख का विरह है।

12. संसार को संकुचित करके मोक्ष का विस्तार करने का यह अवसर है।
13. मिथ्यात्व सबसे बड़े से बड़ा पाप है।
तीर्थंकर नामकर्म सबसे बड़े से बड़ा पुण्य है और
सम्यग्दर्शन सबसे पहले में पहला धर्म है।
14. पर्याय के क्रम में फेरफार करने के लिये कोई समर्थ नहीं है।
15. अध्यात्म तो अनेकान्त बताने के बाद जीव को सम्यक् एकान्त स्वभाव में ढालता है। — यही इसका प्रयोजन है।
16. अरे चैतन्य! जाग रे जाग। यह समयसार के दैवीय मन्त्र तेरे शुद्धात्मस्वरूप को दर्शाकर अनादि से चढ़े हुए मिथ्यात्व के जहर को उतार देते हैं।

✧ ✧ ✧

जो विशाल हॉल बनाने का निर्णय गत वर्ष लिया गया था, उस 'भगवान श्री कुन्दकुन्द प्रवचन मण्डप' का शिलान्यास मार्गशीर्ष शुक्ल दशमी को दिनांक 14-12-45 के दिन रखा जाता है। यह शिलान्यास करने के लिये गत वर्ष की तरह फिर से इन्दौर से सर श्री हुकमचन्दजी सेठ, पण्डित बंसीधरजी, पण्डित जीवंधरजी तथा पण्डित नाथूलालजी को साथ लेकर तीन दिन के लिये मार्गशीर्ष शुक्ल नवमीं के दिन सोनगढ़ आते हैं।

प्रवचनसारजी के प्रवचन में प्रवचन के सार को समझाते हुए गुरुदेवश्री फरमाते हैं : 'शुभराग में पुण्य है, परन्तु धर्म नहीं।' यह सुनकर हुकमचन्दजी सेठ कहते हैं : 'पुण्य से धर्म नहीं होता — ऐसा कहकर आप पुण्य से जीवों को छुड़ाते नहीं, लेकिन धर्म और पुण्य का सच्चा स्वरूप दिखलाते हों।'

सेठ के साथ आये हुए पण्डित बंसीधरजी के साथ चर्चा के अवसर पर उपकारी गुरुराज शास्त्र आधार देकर कहते हैं : 'देखो! शुभराग धूर्त अभिसारिका के समान हैं, ऐसा प्रवचनसार शास्त्र की गाथा 79 में कहा है।' यह जानकर शुभराग का पक्ष अब तो छोड़ना ही रहा।

एक बार चर्चा के दौरान प्रश्न उठता है : 'प्रथम क्या करना ?' गुरुवर समाधान

कराते हुए कहते हैं : 'आत्मा और बन्ध को प्रथम तो उनके नियत स्वलक्षणों के विज्ञान से सर्वथा ही छेदना अर्थात् भिन्न करना। देखो, समयसार गाथा 295।' आगम साक्षीपूर्वक के उत्तर से पण्डित भी आश्चर्य को प्राप्त होते हैं।

अन्य प्रसंग में एक सेठ कहते है : 'परजीव सुखी-दु:खी होता है तो उसके स्वयं से, परन्तु हमें उसे सुखी करने का प्रयत्न तो करना पड़े न?' जिन-सिद्धान्त का रहस्य खोलते हुए गुरुदेवश्री कहते हैं : 'भाई! यह आत्मा पर का कुछ कर ही नहीं सकता; इस कारण उसे सुखी करने का प्रयत्न करना या न करना — यह प्रश्न ही नहीं रहता। हाँ, यह आत्मा राग या द्वेष — ऐसे अपने भाव को करता है।' यह सुनकर पर के कर्तृत्व का अभिमान रखना है या छोड़ना है?

दूसरे दिन, मार्गशीर्ष शुक्ल दशमी के दिन शिलान्यास से पहले गुरुदेवश्री मांगलिक करते हुए कहते हैं : 'आज कुन्दकुन्द प्रवचन मण्डप का मुहूर्त है। कुन्दकुन्द भगवान द्वारा कथित शास्त्र के प्रवचन को जो समझता है उसकी मुक्ति ही होती है और उस मुक्ति मंडप का आज मंगल मुहूर्त है। अब तो हजारों मुमुक्षु तैयार हो गये हैं।' ऐसे मंगल आशीषपूर्वक के मांगलिक के बाद मुमुक्षुओं की जय-जयकार ध्वनि के बीच शिलान्यास विधि होती है। तत्पश्चात् तुरन्त ही 'स्वाध्याय मन्दिर' में गुरुदेवश्री का व्याख्यान होता है।

आज के प्रवचन में आपश्री के अन्तर आत्मा में संग्रहित श्री सीमन्धरप्रभु और श्री कुन्दकुन्द-आचार्य के प्रति भक्ति उछल-उछल कर बाहर आती है तथा मानो कि अपनी दशा का वर्णन करते हों, इस प्रकार साधकभाव का भावभीना चित्रण देते हैं। चलो, हम भी उस ज्ञान-भक्तिगंगा में स्नान करें : 'सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा सीमन्धरदेव के पास कुन्दकुन्दभगवान गये थे, वहाँ आठ दिन रहे थे और साक्षात् दिव्यध्वनि सुनकर अन्तर से विशेष स्थिरता की थी। आपश्री ने जो शास्त्र रचे हैं उनमें अपूर्व अप्रतिहत भाव बताये हैं। इन भावों की जो जीव प्रतीति करता है, वह अपनी मोक्ष परिणति को लेते-लेते बीच में सीमन्धरपरमात्मा का स्मरण करता है कि हे परमात्मा! आप पूर्ण परिणति को प्राप्त हो। आपको साथ रखकर हम भी साधकपने में से पूर्ण होनेवाले हैं, बीच में विघ्न आनेवाला नहीं है। जिस भाव से साधकदशा प्रारम्भ की है, उसी भाव से पूर्णता करनेवाले

हैं, उसमें फर्क नहीं.... नहीं.... नहीं....। ओंमकार ध्वनि में से कुन्दकुन्दभगवान वस्तु का स्वभाव लेकर आये थे और उसका ही कुछ प्रसाद यहाँ भव्य मुमुक्षुओं को परोसते हैं। यह तो अभी बीज रोपे हैं, इन बीजों में से ही केवलज्ञान का फल पकनेवाला है। स्वभाव का भरोसा होना वही महा-मांगलिक है....।' वाह! क्या स्वभावदृष्टि का निशंक-अप्रतिहत जोर! धन्य है उस रत्नत्रय परिणति को! धन्य है उस साधक को, जो कि पूर्णता की निश्चित -करार करता है!! आज 'नियमसार प्रवचन भाग-1' पुस्तक का प्रकाशन भी होता है।

मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी के दिन प्रवचन में ऐसी बात आती है कि जिस भाव से तीर्थंकर प्रकृति बंधे, उस भाव से भी मोक्ष प्राप्त नहीं होता। उस भाव को भी स्वभाव के जोर से छेदने पर मोक्ष प्राप्त होता है। यह बात सुनते ही हुकमचन्दजी सेठ उल्लास से कहते हैं : 'अहो! सम्यग्दृष्टि के अलावा कौन यह बात समझा सकता है ? आपके पास तो मोक्ष जाने का सीधा रास्ता है।' फिर अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहते हैं : 'मैं महाराजजी के उपदेश का लाभ अनेक बार जरूर लूँगा और मेरी तो भावना है कि मेरा समाधिमरण महाराजजी के समीप में हो।'

दूसरे दिन कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा 321-22-23 के प्रवचन में लुप्तप्राय: स्वानुभूति -प्रधान अध्यात्ममार्ग को पुन: प्रकाशित करनेवाले गुरुदेवश्री फरमाते हैं : 'क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा में स्वभाव का अनन्त पुरुषार्थ आता है। क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा नियतवाद नहीं, परन्तु सम्यक् पुरुषार्थवाद है।' यह प्रवचन कालान्तर में 'वस्तुविज्ञानसार' नामक पुस्तक में प्रकाशित होता है।

गुरुदेवश्री का अमृतमय मंगल सन्देश-उपदेश-वाणी जगतभर में पहुँचानेवाला 'आत्मधर्म' अनेक सुपात्र जीवों के भाव परिवर्तन में निमित्त बनता है। उसके उत्कृष्ट दृष्टान्तरूप एक अनुपम प्रसंग इस वर्ष बनता है, जो गुरुराज के 'गुरुतत्त्व' को अधिकरूप से उजागर करता है। बात है पूज्यश्री निहालचन्दजी सोगानी की। वे सत्सुख की शोध में थे, उसमें एक आत्मार्थी उन्हें 'आत्मधर्म' देता है। 'आत्मधर्म' में प्रकाशित प्रवचनप्रसादरूप एक सारगर्भित वाक्य पर उनकी नजर पड़ती है : 'छह आवश्यक क्या ? एक ही आवश्यक

है।' — यह वाक्य पढ़ते ही अन्तर में चोट लगती है। यह अमृतवाक्य उनके अन्तर को जगा देता है और रोम-रोम में झनझनाहट व्याप्त हो जाती है। अन्तर में से आवाज आती है : 'अरे! मिल गया, जिस सत्य की शोध थी वह मिल गया और उसकी प्राप्ति की विधि बतानेवाले भी मिल गये।' तत्क्षण गुरुदेवश्री और आपश्री की मंगलकारी वाणी के प्रति श्रद्धा-अन्तरंग रुचि स्फुरित होती है। उसी 'आत्मधर्म' में प्रकाशित गुरुदेवश्री के भव्य चित्र को देखते ही अहोभाव उछल जाता है और मन, भक्ति-उल्लास से भर जाता है।

बस, अब तो ऐसे सन्त-महात्मा के दर्शन के लिए मन तड़पने लगता है। अन्ततः आराध्य गुरु के चरणकमल में पहुँच कर उनकी पवित्र चरणरज मस्तक पर चढ़ाने को सोगानीजी सोनगढ़ आ पहुँचते हैं। स्वर्णपुरी आकर अनुपम आदर्श सन्त साक्षात् चैतन्यमूर्ति गुरुदेवश्री की दिव्य मुखमुद्रा को भावविभोर-मन्त्रमुग्ध होकर निहारते हैं और भेदज्ञान भरपूर गुरुवाणी का यह वचन : '**ज्ञान ने राग जुदा छे**' सुनते ही एकदम शान्ति का वेदन होता है। गुजराती भाषा आती नहीं थी, तथापि गुरुवचनों के भाव समझने में कोई कठिनता नहीं पड़ी, क्योंकि रुचिवन्त को कोई बाधक है ही नहीं। उसी क्षण सच्चा पुरुषार्थ जगता है और सोनगढ़ की भोजनशाला 'समिति' के एक रूम में बैठकर पूरी रात ज्ञायक ध्रुवस्वभाव का घोलन करते हैं। गुरुवाणी के भावभासन से अनन्त काल से अनन्त कर्तृत्व के बोझ तले दबा हुआ उनका आत्मा सहजरूप से भारमुक्त हो जाता है। अहो! स्वानुभवप्राप्त सन्त और देशनालब्धिदाता गुरुदेवश्री के प्रथम तथा अल्प परिचय से और प्रथम बार प्रत्यक्ष वाणी सुनकर वे उसी रात्रि में निर्विकल्प स्वानुभूति प्राप्त करते हैं। गुरुदेवश्री के जिनशासन प्रभावना के प्रताप और प्रसाद से अन्तरंग में भावजिनशासन प्रगट होता है।

इस प्रकार एक अनुपम-अनोखा गौरवमयी प्रसंग बनता है, जो तीर्थधाम स्वर्णपुरी के स्वर्णमयी इतिहास के पृष्ठों पर सदा के लिये अंकित रहेगा। सोनगढ़ कहान गुरुदेव की साधनाभूमि तो है ही; अब ज्ञानतीर्थ-सम्यक्स्थली बनता है।

वैशाख शुक्ल षष्ठी को अष्टपाहुड़ पर प्रवचन शुरु होते हैं।

ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी-श्रुतपंचमी के पवित्र दिन परमागम श्री समयसारजी पर सातवीं बार के प्रवचन पूर्ण होते हैं। गुरुवर फरमाते हैं : 'इस शास्त्र में गम्भीर रहस्य भरे हैं। गुरुगम

के बिना वे समझ में आये ऐसा नहीं हैं। पण्डित जयचन्दजी कहते हैं कि इस ग्रन्थ का गुरु सम्प्रदाय विच्छेद हो गया है। यह कथन तो 150 वर्ष पहले का है, परन्तु अभी वह विच्छेद फिर से अटूटरूप से जुड़ गया है, गुरु परम्परा अविच्छिन्नरूप से चलती है।'

प्रवचन या तत्त्वचर्चा के दौरान गुरुराज कदाचित् ही अपनी अन्तरंगदशा के विषय में बतलाते हैं, परन्तु आज उल्लासपूर्वक घोषित करते हैं : 'श्री कुन्दकुन्द-आचार्यदेव की कृपा से-सेवा से **इस आत्मा को भावश्रुत मिला है** और इसलिए उनकी कृपा से आज इस समयसार की परम्परा जुड़ गयी है। सीमन्धर भगवान की ध्वनि के लाभ से, कुन्दकुन्दप्रभु की कृपा से तथा स्वयं की पात्रता से एवं मुमुक्षु जीवों के महाभाग्य से यह समयसार की परम्परा फिर से शुरु हुई है और आचार्यश्री का आशय अक्षुण्ण रहा है। इस प्रकार श्रुतधारा अछिन्न है।' अहो! पुराणपुरुष, शासनप्रभावक गुरुदेवश्री के सातिशय पुण्य प्रभाव से यह वीतरागशासन पंचम काल के अन्त तक जयवन्त रहेगा इसमें शंका है? वाह! धन्य हो! कुन्दकुन्दाचार्य की कृपा से भावश्रुत प्राप्त करनेवाले गुरुराज धन्य हो!

भावश्रुतज्ञानधारी कहान गुरुदेव की जय हो... विजय हो...

आज के दिन ही समयसारजी पर आठवीं बार के प्रवचन शुरु करते हुए गुरुवर महिमापूर्वक कहते हैं : 'सभा में प्रवचनरूप से आठवीं बार पढ़ा जा रहा है। अंतरंग अपने स्वाध्याय में लगभग बीस बार पढ़ा गया है, परन्तु यह कोई अधिक नहीं है। पूरी जिन्दगी तक इस समयसार के भावों का घोलन किया करे तो भी इसके भाव पूरे न पड़े — ऐसे गूढ़ रहस्य इसमें भरे हैं। केवलज्ञान हो, तब समयसार के भाव पूरे पड़े। समयसार के भावों का आशय समझकर स्वयं एकावतारी हो जाये, इतना कर सकता है....। यह समयसार इस काल में भव्य जीवों का महान आधार है...। निश्चयस्वभाव गुम हो गया है - ढक गया है, तब यह समयसार शुद्धात्मतत्त्व बतलाकर तत्त्व के विरह को भुला देता है।' देखो! यह बात तो सही है न? कि जब भी पूज्य गुरुदेवश्री आचार्यदेव के अक्षरदेहरूप समयसार पर प्रवचन प्रदान करते हैं, तब वह चेतनवन्त लगता है।

गुरुदेवश्री को समयसार शास्त्र प्राप्त हुए चौबीस वर्ष पूर्ण होकर पच्चीसवाँ वर्ष चलता है, उसमें बीस बार तो अंगत स्वाध्याय में पढ़ा गया है। अहो! कैसा समयसारजी

के प्रति अगाध प्रेम! इसीलिए आपश्री कहते हैं : 'यह परमागम ग्रन्थ निरन्तर अभ्यास–श्रवण–मनन करने योग्य है। विक्रम संवत् 1978 में यह समयसार हाथ में आया, पढ़ा और अभ्यास करने पर इसमें से अलौकिक भाव निकले।... यह ग्रन्थाधिराज है।' क्या अब इससे अधिक कहने की कुछ आवश्यकता है?

समयसारमर्मज्ञ सन्त की जय हो.... मुमुक्षुजीवन गढ़नेवाले गुरुदेव की जय हो....

धन्य दिव्य वाणी समयसारने रे,
जेणे प्रगट बताव्यो आत्मदेव,
समयसार जयवंत त्रण लोकमां रे।

स्याद्वाद–अंकित शास्त्र महा रे,
समयसार छे जिनवाण.... समयसार०

सुविमल वाणी समयसारनी रे,
दर्शावे शुद्धात्मसार.... समयसार०

मात! रत्नत्रयी दातार छो रे,
छो भवसागरनी नाव.... समयसार०

खोल्यां रहस्य समयसारनां रे
गुरु कहान वरतावे जयकार.... समयसार०

गुरु प्रतापे शास्त्र मलीयुं रे,
गुरु कहान महिमा छे महान.... समयसार०

महामंगलमूर्ति गुरु माहरा रे,
अहो! रहस्य खोल्या अद्भुत.... समयसार०
गुरुराज सदा जयकार.... समयसार०

समयसार के प्रवचन में कर्ता–कर्म अधिकार शुरु होता है। अहो! एक तो भरतक्षेत्र का अलौकिक कर्ता–कर्म अधिकार हो और उसमें भी समझानेवाले श्रुतलब्धिवन्त आत्मरस से ओतप्रोत ऐसे गुरुदेवश्री हों तो फिर कहना ही क्या? मानो सोने पे सुहागा!

पूज्य बहिनश्री का भक्तिभाव देखिये : 'पूज्य गुरुदेवश्री के उपकार की क्या बात करें ? उन्होंने तो प्रत्येक शब्द का अर्थ किया है, तल खोजा है। यदि गुरुदेवश्री ने ऐसे अर्थ नहीं किये होते तो समयसार का एक शब्द भी कौन समझता ? कर्ता-कर्म अधिकार का मर्म कौन जानता ?'

इस प्रकार धर्मक्षेत्र स्वर्णपुरी में धर्मकाल वर्त रहा है। भक्तजन महामंगल मन्दिर ऐसे 'स्वाध्याय मन्दिर' में महत्पुरुष श्री गुरुदेव के मुख से प्रवाहित धर्मप्रपात झेलने को, झुलसा देनेवाली धूप हो या बरसती बरसात हो तो भी हर्ष सहित आते हैं।

अध्यात्म और स्वानुभवरस से भीगी हुई दिव्यध्वनि के समान वाणी से आकर्षित होकर जिज्ञासु, अभ्यासी, त्यागी, विद्वान् इत्यादि सोनगढ़ आने लगे हैं तथा जैनसमाज में एक पूर्ण युगपरिवर्तन होता है। गुरुदेवश्री अन्धकार में डूबे हुए सत्य को अन्तरंग में उदित सम्यग्ज्ञानप्रकाश द्वारा बाहर निकालते हैं। अनादि से पंच परावर्तन-भव परिभ्रमण-करके अनन्त-अनन्त दुःख भोगते हुए जीवों को शाश्वत शान्ति-सुख का मार्ग-उपाय बताकर वीतराग धर्म का उद्योत करते हैं और अचूक लक्ष्यभेदी रामबाण वाणी से भव्य भक्तों के मिथ्यात्व-अज्ञान पटल को भेद डालते हैं। इसलिए ही आपश्री के प्रताप से दिगम्बर धर्म का ऐसा विस्मयकारी अद्भुत प्रचार-प्रसार देखकर, 'दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद' अपना आगामी अधिवेशन सोनगढ़ में रखने का निर्णय करती है।

दीपावली पर्व के प्रसंग पर पूज्य सोगानीजी भावना भाते हैं : 'सतत् कृपादृष्टि की धारा बरसाते हुए, चैतन्य के असंख्य प्रदेश-प्रदेश में सहज भावश्रुतज्ञान के दीपक प्रगटाकर अध्यात्म दीपावली मनानेवाले गुरुदेव को नमस्कार !

तीर्थंकर से भी अधिक ऐसे सर्वस्वदाता गुरुदेव का योग प्राप्त हुआ है, तो यही भावना है कि परम-उपकारी श्री गुरुदेव की छत्रछाया में हम सब मुमुक्षु अपने नित्य स्व-क्षेत्र में अडिग-निश्चल रहें। गुरुदेव के आशय को यथार्थ परिणमा देना, यह अपने सब मुमुक्षुओं का परम कर्तव्य है। परमपिता ने भक्त-पुत्रमण्डल को अटूट लक्ष्मी भण्डार भोगने को दिया है, (उसे) नित्य भोगें।'

परम प्रतापी-परम उपकारी कृपालु गुरुदेव को बारम्बार नमस्कार !

★ ★ ★

विक्रम संवत् 2003 (सन् 1946-47)

'प्रवचन मण्डप' उद्‌घाटन तथा विद्वत् परिषद अधिवेशन वर्ष

पूज्य गुरुदेवश्री की मंगल उपस्थिति से तथा वीरवाणी के अद्‌भुत न्यायों को खोलनेवाली, मोक्षमार्ग के रहस्य को समझानेवाली, कल्याणकारी गुरुवाणी से स्वर्णपुरी अध्यात्म तीर्थधाम-वीतरागविज्ञान का केन्द्र-बन गया है। दिनभर के धार्मिक कार्यक्रम और अध्यात्म वातावरण से थोड़े दिन के लिये मात्र देखने आये हुए जिज्ञासु को यहाँ से वापस जाने का मन नहीं होता। उसे लगता है कि आत्मार्थपोषक ऐसा पवित्र धाम अन्यत्र कहीं नहीं है। आत्मरस के पिपासु जीव पंचम काल के परम आश्चर्य ऐसे इस तीर्थंकर -दूत की पुरुषार्थप्रेरक अमृतवाणी का पान करके शान्ति का अनुभव करते हैं। मानो कि चौथा काल फिर से आया हो!!

मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्थी, बुधवार। रात्रि को स्वप्न आता है। उसमें गुरुदेवश्री फरमाते हैं : 'देह और आत्मा भिन्न-भिन्न है — ऐसा माने बिना सब वर्तन शून्यवत् है।' अहो! दिन भर जो भाव घोलन में आते हैं, वे रात्रि में भी स्वप्नरूप से घोलन में चलते हैं न!

फाल्गुन कृष्ण पंचमी को 'अष्टपाहुड़' पर प्रवचन पूर्ण होने पर, फाल्गुन कृष्ण षष्ठी को 'पंचास्तिकाय' पर प्रवचन शुरु होते हैं।

फाल्गुन कृष्ण अष्टमी, गुरुवार। पिछली रात्रि का स्वप्न : स्वयं भवसमुद्र तिर गये हों, उसका सूचक ऐसे इस स्वप्न में ऐसा आता है कि स्वयं समुद्र तिर जाते हैं।

समयसार जिनवाणी के प्रति अति गाढ़ भक्ति / बहुमान से इस वर्ष ऐसा भाव जागृत होता है कि आचार्यदेवश्री कुन्दकुन्द आचार्य ने जिन ताड़पत्रों में समयसार लिखा है, वे मूल ताड़पत्र मिलें तो उन्हें सोने से मँढ़वाना। वाह! क्या समयसार भक्ति!!

जिसका शिलान्यास गत वर्ष हुआ था, वह 'भगवान श्री कुन्दकुन्द प्रवचन मण्डप' एक वर्ष में ही तैयार हो जाता है। जिन्होंने भरतक्षेत्र में श्रुत की अपूर्व प्रतिष्ठा की है — ऐसे

श्री कुन्दकुन्द भगवान के अपार उपकारों की प्रसिद्धि जगत में हो, इस हेतु से 'प्रवचन मण्डप' के साथ वह पवित्र नाम जोड़ा जाता है। वीतरागी सन्त-मुनियों के परम ज्ञान -ध्यान और वैराग्यमय दृश्यों से इस 'प्रवचन मण्डप' की भव्यता कोई अलग ही लगती है, जिसे देखकर मुमुक्षुओं के हृदय में आत्मिक भावना की उर्मियाँ जागृत हुए बिना नहीं रहती। उत्सव के प्रसंगों में प्रवचन के समय 'स्वाध्याय मन्दिर' छोटा पड़ने लगा और यह 'प्रवचन मण्डप' निर्मित हुआ, वही सूचित करता है कि दिन-प्रतिदिन सत्‌धर्म की प्रभावना वृद्धिंगत होती जा रही है; सत् पिपासु जीव बढ़ते जा रहे हैं।

'प्रवचन मण्डप' के उद्‌घाटन का दिन, फाल्गुन शुक्ल एकम दिनांक 21-2-47 निश्चित किया जाता है। उद्‌घाटन के प्रसंग पर सेठ हुकमचन्दजी कुटुम्ब परिवार, सद्‌गृहस्थों तथा पण्डित जीवन्धरजी, पण्डित देवकीनन्दनजी सहित पैंतालीस व्यक्तियों को साथ लेकर तीन दिन के लिये सोनगढ़ आते हैं और इस प्रवास को 'सोनगढ़-यात्रा' ऐसा नाम देते हैं।

सबेरे 08.15 बजे पूज्य गुरुदेवश्री की मंगल उपस्थिति में भगवान श्री कुन्दकुन्ददेव के जयकार नाद के बीच 'प्रवचन मण्डप' का उद्‌घाटन होता है। इस प्रसंग पर इतना मुमुक्षु समुदाय उमड़ता है कि 'प्रवचन मण्डप' लगभग भर जाता है। सेठश्री 35000 रुपये की दानराशि की घोषणा करके कहते हैं : 'आप सर्व मुमुक्षुओं का महा धन्यभाग्य है कि श्री कानजी महाराज के पवित्र उपदेश का बारम्बार लाभ ले रहे हैं। मैं ऐसा समझता हूँ कि मेरी सम्पूर्ण सम्पत्ति इस सत्‌धर्म की प्रभावनार्थ न्यौछावर कर दूँ तो भी कम है।' भावनगर राज्य के दीवान सन्देश भेजते हैं : 'श्री कानजीस्वामी महाराज जैसे पवित्र आत्मा हमारे राज्य में हैं, इससे हमारा राज्य महान गौरववन्त है।' दूसरे दिन वे स्वयं आते हैं।

वर्तमान में प्राप्त जैनशासन के समस्त शास्त्र 'स्वाध्याय मन्दिर' में हैं और उन सबका अभ्यास गुरुदेवश्री ने कर लिया है। उन सत्‌श्रुतों का-जिनवाणी का-प्रकाशन, जैसे-जैसे मुमुक्षुओं में सत् की जिज्ञासा बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे होता जाता है। उसकी कड़ीरूप आचार्यश्री उमास्वामी रचित 'मोक्षशास्त्र-तत्त्वार्थसूत्र' का प्रकाशन आज होता है, जिसकी टीका मुरब्बी रामजीभाई दोशी-'बापूजी' ने अथाह मेहनत से की है। 'सम्यग्ज्ञान दीपिका' का प्रकाशन भी आज होता है।

सेठ हुकमचन्दजी के साथ पण्डित जीवन्धरजी तो पहले दो बार आ चुके हैं, इस समय पण्डित देवकीनन्दनजी प्रथम बार आते हैं। उन्हें गुरुदेवश्री के साथ हुई तत्त्वचर्चा से बहुत प्रमोद आता है और बहुत बार उल्लास से कहते हैं : 'हमारी सारी पढ़ाई तो भूलयुक्त है; आप कहते हो ऐसी पढ़ाई ही हमारी नहीं है। हम सब पण्डितों की पढ़ाई निमित्ताधीन ही है। इसी प्रकार ही पढ़ाया जाता है। आपने ही सत्य समझाया है। अभी तक अपनी दृष्टि से हम शास्त्रों के अर्थ बैठाते थे, परन्तु शास्त्रों के वास्तविक अर्थ क्या हैं वह आपने ही सिखलाया है।' तदुपरान्त जब उन्हें क्रमबद्धपर्याय का सिद्धान्त समझाया जाता है, तब वे आश्चर्य को प्राप्त होते हैं और कहते हैं : 'अहो! ऐसी बात है! यह बात अभी तक हमारे लक्ष में नहीं आयी।'

फाल्गुन शुक्ल तृतीया। सोनगढ़ के पश्चात्, प्रथम जिनमन्दिर के निर्माण के निमित्त वींछिया में श्री जिनमन्दिर और स्वाध्याय मन्दिर का शिलान्यास होता है। इस प्रसंग पर विशिष्टरूप से आये हुए श्री हुकमचन्दजी सेठ भावना व्यक्त करते हैं : 'ऐसे पवित्र धर्म-प्रसंग में भाग लेने को मैं दिन-रात तैयार हूँ। मेरी भावना है कि स्वामीजी द्वारा भारत-भर में दिगम्बर जैनधर्म का डंका बज जाये। जब भी मुझे याद करोगे, तब आधी रात्रि को भी उठकर आने को तैयार हूँ।' पण्डित देवकीनन्दनजी भी गुरुदेवश्री के प्रति भक्तिभाव व्यक्त करते हुए कहते हैं : 'ऐसे धर्मप्रभावक, महान तत्त्वज्ञ, तीर्थस्थापक, युगप्रधानी, महर्षि पुरुष बहुत वर्षों से नहीं हुए — ऐसा मैं मेरे हृदय से मानता हूँ। शास्त्राधार सहित वस्तुस्वरूप बतलाने की आपकी शैली, मैंने आज तक कहीं नहीं देखी।'

इस शिलान्यास के बाद पन्द्रहवें दिन सोनगढ़ में एक घटना बनती है, जिससे भारत के दूर-दूर के गाँवों में भी गुरुदेवश्री का नाम रोशन होता है — प्रसिद्धि को प्राप्त होता है और तत्त्वज्ञान की लहरें उछलती हैं। वह घटना है तीर्थधाम सोनगढ़ में आयोजित 'श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद' का अधिवेशन।

वीतरागमार्ग प्रभावक महान उपकारी गुरुराज के पुनीत प्रताप से पवित्र जिनशासन की महान प्रभावना हो रही है और सोनगढ़ का नाम प्रसिद्ध हुआ है। इस कारण सोनगढ़ आकर गुरुवर की मंगलकारी वाणी का प्रत्यक्ष लाभ मिले — ऐसी भावना से 'श्री

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद', अपना तीसरा वार्षिक अधिवेशन, दिनांक 7 से 9 मार्च 1947 — तीन दिन, सोनगढ़ में रखती है। इस अधिवेशन में बनारस, कटनी, आगरा, दिल्ली, बीना, बड़ौत, रोहतक, सागर, लखनऊ, ललितपुर इत्यादि भिन्न-भिन्न प्रदेशों के अलग-अलग शहर-गाँवों से न्यायाचार्य, सिद्धान्तशास्त्री ऐसे 32 विद्वान आते हैं। जिनमें मुख्य हैं : पण्डित कैलाशचन्दजी, पण्डित जगन्मोहनलालजी, पण्डित राजेन्द्रकुमारजी, पण्डित महेन्द्रकुमारजी, पण्डित दरबारीलालजी, पण्डित फूलचन्दजी, पण्डित लालबहादुरजी और पण्डित पन्नालालजी। स्याद्वाद् महाविद्यालय बनारस के पण्डित कैलाशचन्दजी को अधिवेशन का प्रमुख चुना जाता है।

स्वागत-अध्यक्ष ट्रस्ट प्रमुख श्री रामजीभाई दोशी, स्वागत प्रवचन करते हुए कहते हैं : 'विक्रम संवत् 1978 में ग्रन्थाधिराज श्री समयसार, गुरुदेवश्री के हस्तकमल में आने पर आनन्दसागर उल्लसित हुआ। समयसार के परम गम्भीरभाव भावुक हृदय में पचाते हुए अमृतसागर का अनुभव हुआ। अहो! स्वतन्त्र द्रव्य... स्वतन्त्र गुण... स्वतन्त्र पर्याय!... प्रत्येक द्रव्य की स्वतन्त्रता को प्रकाशित करनेवाले ज्ञानांश का-निश्चयनय का-निरूपण करके वीतराग भगवन्तों ने हम पर परम उपकार किया है। हम सबके लिये खेद की बात है कि जैनदर्शन का यह एक मुख्य अंग-निश्चयनय-आज लकवा से पीड़ित हो रहा है। जैनसमाज में इस निश्चयनय के ज्ञान की भारी हीनता वर्त रही है। जीव के त्रस-स्थावर और गुणस्थान-मार्गणास्थान आदि भेदों पर तथा कर्म की स्थिति इत्यादि पर जो लक्ष दिया जाता है, इससे अधिक लक्ष जब भेदविज्ञान के कारणभूत अध्यात्मशास्त्रों के ज्ञान पर दिया जायेगा वह दिन धन्य होगा। हमारी प्रभावनाप्रेम प्रेरित यह भावना है कि आप जैसे जैनदर्शन के विद्वानों द्वारा स्वतन्त्र द्रव्य, स्वतन्त्र गुण और स्वतन्त्र पर्याय का ज्ञान विशेष-विशेष प्रचार को प्राप्त हो। कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शन की परम महिमा जनसमाज में विस्तृत हो और नयाधिराज निश्चयनय का विजय डंका दिगन्त तक गुंजायमान हो।'

इस अधिवेशन के प्रस्तावों में एक महत्व का प्रस्ताव है गुरुदेवश्री के अभिनन्दन का। सौराष्ट्र में लुप्तप्राय: हो रहे दिगम्बरधर्म का पुन: उद्योत होता देखकर, उसके प्रबल कारणभूत पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति बहुमान का एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाता है।

जिसे सभी विद्वान उत्साह से स्वीकारते हैं। प्रोफेसर खुशाल जैन द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव का सारांश :

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद का महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव

'आत्मार्थी श्री कानजी महाराज द्वारा जो दिगम्बर जैनधर्म का संरक्षण और संवर्धन हो रहा है, विद्वत् परिषद उसका श्रद्धापूर्वक अभिनन्दन करती है...। वह इसे परम सौभाग्य और गौरव का विषय मानती है कि आज दो हजार वर्ष बाद भी महाराज ने श्री 1008 वीरप्रभु के शासन के मूर्तिमान प्रतिनिधि भगवान कुन्दकुन्द की वाणी को समझ कर अपने को ही नहीं पहचाना है, अपितु हजारों और लाखों मनुष्यों को जीव के उद्धार के सत्यमार्ग पर चलने की सुविधाएँ जुटा दी हैं।.... इस अवसर पर अभिनन्दन और स्वागत के साथ साथ परिषद यह भी घोषित करती है कि जो आपका कर्तव्य है, वह हमारा भी है। अतः इस प्रवृत्ति में हम आपके साथ हैं।'

पण्डित महेन्द्रकुमारजी इस प्रस्ताव को समर्थन देते हुए कहते हैं : 'आत्मार्थी सत्-पुरुष श्री कानजी महाराज के प्रवचन सुनकर हमारा हृदय आश्चर्यचकित हो गया है। हमें अध्यात्मदृष्टि का स्पष्ट और भीगा हुआ विवेचन सुनने को मिला है। हम अपनी प्रसन्नता किन शब्दों में व्यक्त करें ?... श्री कानजी महाराज सौ वर्ष तक चिर जीवन प्राप्त करें और हम सबको लाभ पहुँचाते रहें।'

पण्डित परमेष्ठीदासजी तथा पण्डित राजेन्द्रकुमारजी भी उसे समर्थन देता हुआ हृदयद्रावक भाषण करते हैं। पण्डित राजेन्द्रकुमारजी तो कहते हैं : 'हम महाराजश्री को अभिनन्दन देते हैं, बहुमानपूर्वक स्वागत करते हैं।... जो लोग ऐसा बोलते है कि महाराज व्यवहार का निषेध करते हैं, वे लोग महाराजश्री के उपदेश को ही यथार्थ नहीं समझते।.... हम दृढ़ता से कहते हैं कि महाराजश्री निमित्त का निषेध नहीं करते, किन्तु उपादान और निमित्त, इन दोनों पदार्थों की स्वतन्त्रता को ही भलीभाँति दिखाते हैं। स्वामीजी आज दो हजार वर्ष के बाद भी श्री कुन्दकुन्दस्वामी के शास्त्रों का रहस्य प्रगट कर रहे हैं।.... हम गद्गद् हृदय से कहते हैं कि स्वामीजी का उपदेश हमें बहुत अच्छा लगता है। हम स्वामीजी के चरणों में श्रद्धांजलि देते हैं, श्रद्धा करते हैं। हम सहृदय से कहते हैं कि

सोनगढ़ जैसा वातावरण सारे हिन्दुस्तान में फैल जावे।... हमारी अन्तरभावना यह है कि हम यहाँ पर ही रह जावे।.... हम दृढ़तापूर्वक कहते हैं कि महाराजश्री का उपदेश यथार्थ है, परम सत्य है।'

अन्त में अधिवेशन के प्रमुख पण्डित कैलाशचन्दजी अपने भावभीने वक्तव्य में गद्गद् होकर कहते हैं : 'यहाँ पर परिषद का अधिवेशन करने से हम सबको महाराजश्री के पास में अध्यात्म का बहुत लाभ मिला है। अधिवेशन में उपस्थित सभी विद्वान कह रहे हैं कि हमको महाराजश्री के आध्यात्मिक उपदेश से बहुत लाभ हुआ है।.... 1996 की साल में जूनागढ़ में जब महाराजश्री से मेरा एक घण्टे तक परिचय हुआ था, तब से ही मेरे हृदय में ऐसी छाप पड़ी हुई थी कि महाराजश्री का उपदेश अवश्य सुनना चाहिये।... जब हम विद्यार्थियों को शास्त्राभ्यास कराते थे, तब प्रवचनसारादि में चिदानन्द शुद्ध आत्मा की जो अध्यात्म बात आती थी उसको तो छोड़ देते थे और उद्धवांस कल्पनादि बात सिखाते थे।... यह सोनगढ़ जैसा वातावरण अन्यत्र कहीं पर भी नहीं है।... दिन-रात अध्यात्म की चर्चा सुनाई पड़ती हो, वही सोनगढ़ है।... यहाँ महाराजश्री के पास में हम सबको नयी दृष्टि मिली है। हमारी भावना यह है कि हम नित्य यहाँ पर ही ठहर जाएँ और महाराजश्री का उपदेश सुनकर अपना आत्मकल्याण करें।... आज दो हजार वर्ष के बाद भी मैं महाराजश्री को कुन्दकुन्दस्वामी के मूर्तिमन्तरूप में देख रहा हूँ।...'

सागर के पण्डित दामोदरदासजी कहते हैं : 'सोनगढ़ की हवा शास्त्रमय है। सिद्धान्त में वर्णित निश्चयनयरूप सोने की परख इस जौहरी ने की है।'

इन तीन दिनों में श्रुतमर्मज्ञ गुरुदेवश्री के सबेरे-दोपहर के प्रवचन सुनकर तथा सतत तत्त्वचर्चा से सभी विद्वानों को बहुत प्रमोद आता है और जिनवाणी के रहस्य खोलनेवाले गुरुराज के प्रति आदरभाव प्रगट होता है। प्रखर विद्वानों की विविध शंकाओं और प्रश्नों के सरल भाषा में स्पष्टीकरण से तथा कभी नहीं सुने ऐसे अपूर्व न्याय सुनने में आने से वे प्रभावित भी होते हैं। वे स्वीकार करते हैं कि यहाँ परिषद के कार्य की गौणता है, मुख्य तो गुरुवर्य का उपदेश सुनना है। वास्तव में होता भी ऐसा ही है। सभी विद्वान उल्लास से अध्यात्मवाणी और तत्त्वचर्चा का लाभ लेते हैं।

इस परिषद के मन्त्री पण्डित फूलचन्दजी और अधिक दिन रुकते हैं और उन्हें गुरुदेवश्री के प्रति भक्ति जगती है। वे भी बारम्बार कहते हैं : 'ये युगप्रवर्तक पुरुष हैं, असाधारण व्यक्ति हैं, यह निःसन्देह है।'

इस परिषद के दौरान पण्डित महेन्द्रजी एक बार कहते हैं : 'पर की अपेक्षा हो तो पर्याय होती है।' उत्तर मिलता है : 'पर्याय होने में पर की अपेक्षा तो नहीं, परन्तु अपने द्रव्य–गुण की भी अपेक्षा नहीं। पण्डितजी! ऐसा तत्त्व है।'

इस प्रकार विद्वत् परिषद का अधिवेशन अभूतपूर्व सफलतापूर्वक पूर्ण होता है। गुरुवर की वाणी से, आपश्री के प्रभावनायोग से तथा सोनगढ़ के अध्यात्ममय वातावरण से मात्र हुकमचन्दजी सेठ इत्यादि श्रीमन्त ही नहीं, अब तो धीमन्त पण्डित भी प्रभावित होते हैं। महाप्रतापी पुरुष गुरुदेवश्री के अति प्रचण्ड प्रभावना उदय से जैनशासन का विजय डंका बज रहा है। गुरुदेवश्री का प्रभाव और अध्यात्म का प्रचार अब हिन्दी प्रदेशों सहित सम्पूर्ण भारत में शीघ्रता से फैलने लगता है।

कहानगुरु अे भक्तों ने जगाडिया रे, अहो मलाव्यो ज्ञायकदेव
आज वन्दन करूँ गुरुराजने रे....
धर्मचक्री भरतमां ऊतर्या रे, अहो धर्मावतारी पुरुष....
आज वंदन करूँ गुरुराजने रे....
ज्ञानावतारी अहो आविया रे, पधार्या सीमंधरसुत...
आज वंदन करूँ गुरुराजने रे....
गुरुदेवना गुणने शुं कथुं रे, प्रभु सेवक तणा शणगार...
आज वंदन करूँ गुरुराजने रे....

✯✯✯✯

एक साधु के साथ चर्चा होती है। कृपालु गुरुदेव कहते हैं : 'आत्मा, कर्म को बाँधे या छोड़े नहीं, उसका कर्ता नहीं होता तथा उससे विकार नहीं होता।' वह साधु कहता है : 'वर्तमान में यह बात चलती तो नहीं?' अर्थात् तुम्हारी बात मिथ्या है — ऐसा उनका कहना था। गुरुराज कहते हैं : 'यह बात चलती नहीं उससे क्या हुआ? सत्य तो यह है।'

तत्पश्चात् इस विषय पर आगे चर्चा चलती है। अन्त में अधिक दलील न कर सकने से, वह साधु जाने के लिये खड़े होते हैं और कहते हैं : 'हमने चालीस वर्ष से मुढ़ाया है, तो उसका कुछ लाभ होगा न?' अरे...रे...! विपरीतता का सेवन करना है और लाभ की आशा रखनी है!!

ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी। 'स्वाध्याय मन्दिर' में गुरु पदार्पण के नौ वर्ष पूर्ण होकर दसवाँ वर्ष शुरु होता है। आज के मंगल दिन 'उपादान-निमित्त संवाद' पर गुरुदेवश्री के प्रवचनों की पुस्तक 'मूल में भूल' की हिन्दी आवृत्ति प्रसिद्ध होती है।

परिवर्तन के पश्चात् के वर्षों दौरान अध्यात्मयोगी गुरुदेवश्री और आपश्री की अनुभव झरती वाणी का प्रभाव ऐसा बढ़ता जाता है कि यह वाणी सोनगढ़ से बाहर बसनेवाले सुपात्र जीवों को प्रतिदिन उसी समय live (प्रत्यक्ष) सुनने को मिले इस हेतु मैनपुरी के तत्त्वप्रेमी जीव, सर्व सम्मति से एक प्रस्ताव पास करते हैं। जो इस प्रकार है :

श्री जैन साहित्य सभा

85, मियाना स्ट्रीट, मैनुपरी (उत्तरप्रदेश)

दिनांक 14-6-1947

श्री जैन साहित्य सभा मैनपुरी ऐसा प्रस्ताव पारित करती है कि स्वर्णपुरी सोनगढ़ में एक वायु प्रवचन स्थान (Broadcasting Station) स्थापित किया जाये, जिसके द्वारा वर्तमान समय के उत्कृष्ट जैन तत्त्ववेत्ता श्री कानजीस्वामी के परमोपकारी आध्यात्मिक प्रवचन सम्पूर्ण जगत को सरलता से मिल सकें और जिससे जगत के मुमुक्षुओं का कल्याण हो।

— महताबचन्द्र जैन, मन्त्री

वाह! क्या उत्तम अभिनन्दनीय भावना! बाहर में ऐसा योग बन सके या नहीं — बना या नहीं — यह बात गौण है; परन्तु गुरुवाणी के प्रति कैसी पवित्र-उत्कृष्ट भक्ति है, वह तो ज्ञात होता है न!

श्रावण कृष्ण चतुर्दशी, गुरुवार। एक स्वप्न आता है। उसमें स्वयं उपदेश देते हैं कि शुद्धात्मा का सत्य स्वरूप समझना हो और मोक्ष की प्राप्ति करनी हो तो सोनगढ़ आना। स्वप्न में आयी हुई यह बात सत्य ही है न!

इस वर्ष पन्द्रह अगस्त को भारतदेश गुलामी छोड़कर स्वतन्त्र होता है। चलो, उस दिन के गुरुदेवश्री के वस्तु स्वतन्त्रता का ढिंढोरा गुंजायमान करनेवाले प्रवचन का लाभ लें : 'हे जीवों! यदि तुम तुम्हारी स्वतन्त्रता और सुख चाहते हो तो पर के आश्रय से मेरा सुख है, परवस्तु में मेरी सत्ता चलती है — ऐसी मान्यता छोड़ो।.... स्वतन्त्रता उसे कहते हैं कि जिसमें अपने सुख के लिये किसी दूसरे के आश्रय की आवश्यकता न पड़े, परन्तु स्वयं ही स्वाधीनरूप से सुखी हो।... अज्ञानी जीव स्वाधीन आत्मस्वभाव को नहीं जानते होने से, कभी भी स्वतन्त्रता नहीं पायी। अपने सुख के लिये पराश्रय लेना ही महान गुलामी है...। ज्ञानी ही स्वभाव की एकाग्रतारूप अहिंसा के जोर से पराश्रयरूप गुलामी के बंधन को सर्वथा छेदकर, सम्पूर्ण स्वतन्त्रदशा में सिद्ध भगवानरूप विराजमान होते हैं। ऐसी परम स्वतन्त्रता प्राप्त करने का एकमात्र उपाय भेदज्ञान है। जिसे भेदज्ञान नहीं, वह गुलाम है और जिसे भेदज्ञान है, उसे ही स्वतन्त्रता की शुरुआत है।'.... अहो! गुलामी और स्वतन्त्रता की कैसी व्याख्या!

इस वर्ष प्रथम श्रावण शुक्ल पंचमी से द्वितीय श्रावण कृष्ण अष्टमी तक प्रथम बार प्रौढ़ शिक्षण वर्ग प्रारम्भ किया जाता है, जिसका 45 जिज्ञासु लाभ लेते हैं।

भाद्रपद कृष्ण पंचमी से 'पंचास्तिकायसंग्रह' के प्रवचन पूर्ण होने पर, जिनवाणी रहस्य उद्घाटक गुरुदेवश्री आचार्यवर श्री योगीन्द्रदेव विरचित 'परमात्मप्रकाश' पर प्रवचन देना शुरु करते हैं।

भाद्रपद महीने में दशलक्षणी पर्युषण पर्व के दौरान गुरुराज 'श्री पद्मनन्दिपंचविंशति' में से उत्तम क्षमा आदि दशधर्मों पर प्रवचन प्रदान करते हैं। उसमें फरमाते हैं : 'हे आत्मा! मुझे क्षमा हो। अब मैं तुझे क्षमा करता हूँ। तेरे अखण्ड ज्ञानस्वभाव में एक विकल्प भी नहीं होने दूँगा। हे परमात्मस्वभावी आत्मा! मैं तेरा आदर छोड़कर, विकल्पमात्र का आदर नहीं करूँगा।' यह प्रवचन कालान्तर में पुस्तकरूप में प्रसिद्ध होते हैं।

तत्त्वज्ञानरसिक मुमुक्षुओं की नजर जैनशासन की राजधानी तीर्थधाम स्वर्णपुरी पर लगी रहती है, क्योंकि जिनशासन शृंगार गुरुराज के प्रताप से यह धर्मक्षेत्र बना है और यहाँ पाँचवाँ नहीं, चौथा काल वर्तता है। यहाँ सबको ऐसा अनुभव होता है कि वीतरागदेव की साक्षात् वाणी समान श्री समयसारजी की सर्वोत्कृष्ट भक्ति और बहुमान यदि सम्पूर्ण भारत में किसी को है तो गुरुदेवश्री को ही है। तथा समयसार में तत्त्वज्ञान के कैसे गहरे और अपूर्वभाव भरे हैं उसका ख्याल तभी आता है कि जब समयसारजी पर गुरुराज के अद्भुत प्रवचन सुनने को मिलते हैं।

इस प्रकार जिस वर्ष में 'प्रवचन मण्डप' का उद्घाटन हुआ और विद्वत् परिषद का अधिवेशन सोनगढ़ में हुआ, वह विक्रम संवत् 2003 का वर्ष पूर्णता को प्राप्त होता है।

त्रिकाल जयवन्त वर्तो धर्मवीर गुरुकहान, कि जो शासन की जय-जयकार वर्ता रहे हैं!

★ ★ ★

विक्रम संवत् 2004 (सन् 1947-48)

गुरु-जन्मजयन्ती मनाना प्रारम्भ वर्ष

कार्तिक शुक्ल एकम के मंगल सुप्रभात में भक्त भावना भाते हैं : इस जैनशासन में पंचम काल में गुरुदेवसूर्य सुप्रभात उदित हुआ है वही सच्चा सुप्रभात है। आपश्री के ज्ञानप्रकाश की किरणें चारों ओर फैल गयी हैं। हे गुरुदेव! निरन्तर आपश्री के दर्शन हों, सदा आपश्री की प्रसन्नता प्राप्त हो, नित्य आपश्री कृपा बरसाओ, दिन-रात आपश्री के आशीष प्राप्त हों, सर्वथा आपश्री की शरण हो। हम भक्तों का शीघ्र मंगल करो, हम पर करुणा दृष्टि करो। आपश्री जैसे उज्ज्वल-पवित्र आत्माओं से तो हम उज्ज्वल हुए हैं।

अभिनंदीए अभिनन्दीए, सुप्रभातमय गुरुदेवने,
आशीष लईए आपना, हवे साधीये निज कार्यने;
सम्यक् प्रभात खील्युं आपने, खीलवो गुरु अम हृदयमां,
भावना भरी प्रार्थना छे, नित्य वसो अम आत्ममां।

हे सम्यक् सुप्रभातस्वरूप अचिन्त्य भानु! हमारी भावनिद्रा मिटाकर मंगलकारी सम्यग्दर्शनसुप्रभात हमारी आत्मा में खिलाओ। अब चैतन्यसूर्य का उदय होकर अज्ञानरात्रि का नाश हो — ऐसी इस नूतन वर्ष में भावना भाते हैं। आपश्री के परम प्रताप से स्वर्णपुरी में धर्म की जोरदार पैढी चल रही है और हम भक्त, तत्त्व-अभ्यास से सराबोर जीवन जी रहे हैं। आपश्री ने जिनवाणी के अतिशय गम्भीर आशय को अत्यन्त स्पष्टरूप से प्रगट करके वीतराग-विज्ञान की बुझती ज्योति को सतेज की है। आपश्री के प्रत्यक्ष समागम और प्रवचनश्रवण बिना हमारे जैसे अल्प बुद्धिवन्त जीवों को जिनागम में भरपूर भरे हुए परम निधानों को देख सकने की लेशमात्र भी दृष्टि कैसे प्राप्त होती ? जब सच्चे उपदेशदाताओं की अतिशय न्यूनता के कारण मोक्षमार्ग प्राय: ढँक गया था, तब आपश्री ने भेदज्ञान के बल से परमागम का मर्म खोलकर मुक्तिपंथ स्पष्ट किया है और वीतरागधर्म का उद्धार करके महा-प्रभावशाली प्रभावना कर रहे हो। स्वानुभूतिपंथ प्रकाशक आपश्री तथा आपश्री की वाणी सदा जयवन्त रहो।

संसारमूल को छेदने का यदि कोई अमोघ शस्त्र है तो, दुर्लभ मनुष्यभव का प्रथम में प्रथम यदि कोई कर्तव्य है तो, वह है आत्मानुभूति। स्वरूपसुधा के इच्छुक हम भक्तगण उल्लासपूर्वक तत्त्व-अभ्यास करके उग्र पुरुषार्थ से ऐसी स्वानुभूति को प्राप्त करें और शाश्वत परमानन्द को पायें — ऐसे आशीष की याचना आपश्री के समक्ष इस मंगल सुप्रभात में करते हैं...।

श्री सीमन्धरादि जिनेन्द्रदेव की उपशमरस झरती वैराग्य मुद्रावन्त प्रतिमायुक्त जिनमन्दिर; समवसरण की अद्‌भुत और शोभायमान रचना तथा आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान की धारा बहानेवाले गुरुदेवश्री और आपश्री की वाणी से सोनगढ़ तीर्थधामरूप से प्रसिद्ध हो चुका है। इस धर्मक्षेत्र स्वर्णधाम की वास्तविक महिमा तो गुरुदेवश्री द्वारा जो अध्यात्म ज्ञानवर्षा निरन्तर बरस रही है, उससे ही है। वह अपूर्व तत्त्वज्ञान सम्पूर्ण दुनिया से अलग है और आत्मार्थियों के आत्मा को सीधा स्पर्श करनेवाला है। इस कारण सोनगढ़ की वास्तविक शोभा स्वरूपानन्दी गुरुवर कहान ही हैं। आपश्री की पवित्र छत्रछाया में पूरे दिन अध्यात्म का शान्त वातावरण छाया रहता है, जिससे मुमुक्षु संसार की जंजाल भूल जाते हैं। अरे! तिथि, वार, या तारीख तक याद नहीं रहते।

आत्मसाधनार्थी जिज्ञासु की परिणति में ज्ञान-वैराग्य-भक्ति का उत्साह जगानेवाला स्वर्णपुरी का आत्महितलक्षी दैनिक कार्यक्रम सामान्यरूप से इस प्रकार होता है :

प्रात:	5.45 से 6.00	श्री देव-शास्त्र-गुरु वन्दन
	6.30 से 7.30	श्री जिनेन्द्र पूजन
	8.00 से 9.00	वस्तु-स्वतन्त्रता की घोषणा करनेवाली गुरुराज की अमृतवाणी की वर्षा
दोपहर	3.00 से 4.00	फिर से भवनाशक वीरवाणी की धारा
	4.00 से 4.45	श्री जिनेन्द्र भक्ति
	5.00 से 5.45	तत्त्वचर्चा
सायंकाल	6.45 से 7.15	आरती
	8.00 से 9.00	रात्रिचर्चा

ऋतु अनुसार समय में थोड़ा परिवर्तन होता है।

— ऐसी पुरुषार्थपोषक प्रवृत्ति में संसार कैसे याद आये ?

मार्गशीर्ष शुक्ल पूर्णिमा : प्राथमिक भूमिकावाले तत्त्व जिज्ञासु जीवों को हितकारी हो ऐसी पुस्तक 'वस्तुविज्ञानसार' प्रकाशित होती है।

पौष शुक्ल अष्टमी की रात्रि को एक स्वप्न आता है। उसमें बलदेव और वासुदेव चर्चा करते हुए दिखाई देते हैं। गुरुदेवश्री उनसे प्रश्न करते हैं : 'तुम क्या करते हो ?' उसका उत्तर मिले इससे पहले ही आँख खुल जाती है। तुरन्त ही गुरुदेवश्री को विचार चलता है कि यह बलदेव और वासुदेव कौन होंगे ? ये दोनों बहिनें — चम्पाबहिन और शान्ताबहिन — तो मेरे साथ मोक्ष जायें — ऐसा लगता है। इसलिए दूसरे दिन दोनों बहिनों को बुलाकर पूछते हैं : 'तुम दोनों बलदेव-वासुदेव होनेवाले हो ? मुझे स्वप्न में आया है वह क्या है ?' तब पूज्य बहिनश्री अति नम्रभाव से कहती हैं : 'नहीं, वे बलदेव-वासुदेव हम नहीं; हम तो आपके पुत्र होकर, गणधर होकर, मोक्ष प्राप्त करनेवाले हैं।' इस प्रकार स्वयं क्या होनेवाले हैं — यह बात भगवती माता पूज्य बहिनश्री ने, स्वयं को जातिस्मरण ज्ञान द्वारा पता होने पर भी, दस वर्ष बाद और वह भी गुरुदेवश्री ने पूछा तब, कही। वाह ! ज्ञान को पचाने की कैसी शक्ति ! बाह्य में प्रसिद्ध होने की-जगत प्रसिद्धि की-उपेक्षारूप वैराग्य ! गुरुवर के शब्दों में कहें तो : 'उनकी स्थिति बहुत ऊँची है। शक्ति बहुत है, परन्तु किसी को कहती नहीं, बोलती नहीं। उन्हें अहंकार है ही नहीं; अहंकार मर गया है और वे अन्दर ठहर गयी हैं।'

संवत् 2001 में प्रकाशित 'समयसार-प्रवचन' की प्रस्तावना में स्वयं के लिए प्रयुक्त 'युगप्रधान' विशेषण पढ़कर गुरुराज ने कहा था : 'मेरे लिए बहुत बड़ा शब्द लिखा है।' परन्तु इस चैत्र महीने में पण्डित लालन अति उल्लास में आकर कहते हैं : 'गुरुदेव ! आपश्री युगप्रधान नहीं, अपितु युगस्रष्टा हो।' अहो ! सही में गुरुदेवश्री युगप्रधान से भी अधिक, आध्यात्मिक वस्तुविज्ञान के तथा समयसार के 'युगसृजक' हैं। आपश्री के अतिरिक्त अनुभव की वज्रभूमि पर खड़े रहकर 'मैं भगवान आत्मा हूँ' - ऐसी घोषणा करनेवाला कौन है ? आनन्दसागर उछालते-उछालते प्रमोदपूर्वक चैतन्य के गीत गाकर भक्तों के जीवन को गढ़नेवाला कौन है ?

भरतक्षेत्र के भव्यजीवों का दु:ख मिटाने के लिए 58 वर्ष पहले भगवान ने एक पथप्रदर्शक यहाँ भेजा था। तुमने उसका साक्षात्कार किया है ? किसी ने उसे देखा है ? पहचाना है ? अरे ! अब तो कोई उसका साक्षात्कार करो ! पहचानो ! भारतभूमि में धर्मयुग के सृजक महापुरुष गुरुदेवश्री जीवन के '58' वर्ष पूर्ण करके इस वैशाख शुक्ल दूज को 59 वें वर्ष में प्रवेश करते होने से, असाधारण हर्षोल्लास के कारण इस भावी तीर्थंकर की 59 वीं जन्मजयन्ती का सुभागी दिवस विशेष महोत्सवपूर्वक मनाने की भावना भक्तों को जागृत होती है और वैशाख शुक्ल एकम से तृतीया – ऐसे तीन दिवस, प्रथम बार जन्मोत्सव मनाने का निर्णय किया जाता है। गुरुसेवकों में आनन्द–उत्साह–उमंग की लहरें फैलती हैं और जोरदार तैयारी होने लगती है। दैवी महापुरुष का जन्म–महोत्सव मनाने के लिए किसके हृदय में आनन्द–सागर नहीं उछलेगा ? जिस धन्य दिवस को अनाथों के नाथ जन्मे, उस उज्ज्वल दिवस की भक्त आतुरता से राह देखने लगते हैं।

वैशाख शुक्ल एकम : सबेरे मंगल सुप्रभात में 'सत्‌धर्म प्रभावक दुन्दुभी मण्डली' के वाजिंत्र मंगल नाद करके महा–महोत्सव की बधाई देते हैं। स्थानीय और बाहर गाँव से पधारे हुए अनेक मुमुक्षु, सम्यग्दर्शन–ज्ञान सुप्रभातस्वरूप गुरुवर कहान के दर्शन तथा स्तुति करते हैं। पश्चात् जिनमन्दिर में जिनेन्द्र–पूजा होती है। तत्पश्चात् जिनका भारतभूमि में पावन पदार्पण धर्मजिज्ञासु जीवों के महाभाग्योदय से–सद्‌भाग्य से–पुण्योदय से–हुआ है — ऐसे गुरुराज का प्रवचन होता है : 'संसार तथा संसार की ओर झुकाववाले समस्त भावों से अब हम संकुचित होते हैं और चिदानन्द ध्रुवस्वभावी समयसार में–शुद्धात्मा में –समाते हैं। हमें बाह्य संयोग या अन्तरंग रागादिभाव स्वप्न में भी नहीं चाहिए। हमें जो शुद्धपरिणति की धारा प्रगट हुई है उसे रोकने को जगत में कोई समर्थ नहीं।' प्रवचन के पश्चात् पैंतालीस मिनिट जन्मोत्सव सम्बन्धी भक्ति होती है। दोपहर को, भक्तों में सच्ची जिज्ञासा, उत्कण्ठा, जोरदार लगन और कठोर पुरुषार्थ जागृत करानेवाला गुरुदेवश्री का प्रवचन होता है और जिनमन्दिर में उत्कृष्ट भावनायुक्त भक्ति होती है। पूज्य बहिनश्री बेन को ऐसी तो भक्ति उछलती है कि वे खड़ी होकर भक्ति कराती हैं।

वैशाख शुक्ल दूज : अनुपमेय, अवर्णनीय, अद्वितीय गुरुदेवश्री का जन्म अर्थात्

आत्मार्थी को सम्यग्दर्शन के जन्म का सुकाल; मनुष्यजन्म की सफलता का सुयोग; जैनशासन की उन्नति का सुअवसर; पंचम काल का चौथे काल में परिवर्तन; भरतक्षेत्र का महाविदेहक्षेत्र में परिवर्तन; पामर को प्रभुता की प्राप्ति; क्रमबद्ध के सिद्धान्त द्वारा अकर्तापने की घोषणा; निमित्त-उपादान का फैसला; निश्चय-व्यवहार की यथार्थ समझ; पर्यायमात्र की स्वतन्त्रता का सिंहनाद; विस्मृत शुद्धात्मा के स्मरण का प्रसंग; उदय प्रसंग में शूरवीरता प्रगट करने का मौका; वीतराग-विज्ञानी का जन्म; मोक्षप्राप्ति के झनकार का काल; विभाव से निवृत्ति पाने का क्षण; शाश्वत निजनिधि प्राप्त करने का पल; भीषण दु:ख से छूटने का प्रसंग और सम्पूर्ण जगत से निस्पृह होने का अवसर....।

इस कलिकाल में इस भरतभूमि में जैसे धर्मपुरुष की आवश्यकता थी, वैसे धर्मधुरन्धर सन्त ने 58 वर्ष पहले आज के सद्‌भागी दिन जन्म लिया था। उस मंगल घड़ी-दिन का स्मरण कराने को मंगल मुहूर्त में मंगल वाद्य बजते हैं। 'स्वाध्याय मन्दिर' ज्ञानप्रकाश के प्रतीकरूप 59 दीपकों से जगमगा उठता है। जन्म बधाई के उमंग भरे भक्तिगान करता हुआ मुमुक्षुवृन्द गुरुनिवास ऐसे 'स्वाध्याय मन्दिर' को तीन प्रदक्षिणा देकर तरणतारण का वन्दन करने गुरु-दर्शन को आता है। भावभीनी स्तुति होती है और भक्त, भावी भगवान को भावना के जल से पूजते हैं।

जिनेन्द्र पूजा और जिनवाणी की रथयात्रा के पश्चात् ज्ञायक के गहनस्वरूप को सरल करके बतलानेवाली गुरुवाणी की धारा बहती है :

1. जो अपने बिना न हो और पर के बिना ही हो, वह धर्म।
2. आत्मा के गुण को रोकनेवाले शुभभाव को भला मानना महापाप है।
3. तू तीन लोक का नाथ-बादशाह होने पर भी तुझे शुद्धपरिणति नहीं वह क्या शोभा देता है ?
4. हम पंचम काल के हैं इसलिए हमारी वाणी और उसका फल साधारण है — ऐसा मत समझो।
5. तीन काल-तीन लोक में यह मानने से ही छुटकारा है। आज मानो, कल मानो या बाद में मानो, परन्तु यह मानने से ही छुटकारा है।

6. तेरा प्रभु तेरे पास नहीं, तू ही है।
7. द्रव्यदृष्टि होने पर, पर्याय में द्रव्य का फोटो पड़ता है।
8. स्वभाव असली और विभाव नकली होता है।
9. प्रथम में प्रथम भवरहित स्वभाव की नि:शंक श्रद्धा करो।
10. ज्ञान की डोरी से अन्दर जाना, राग से भिन्न ज्ञायक दिखेगा।
11. जो अपना नहीं उसे अपना मानना वही परिभ्रमण का कारण है।

प्रवचनधारा के पश्चात् भक्त, उस दिव्य विभूति के प्रति उपकार भक्तिरूप भावना भाते हैं : हे गुरुवर! आपश्री हमें घोर अज्ञान-अन्धकार में से सूर्य समान उज्ज्वल और चन्द्र समान शीतल ज्ञानप्रकाश में लाये हो। निरन्तर दु:ख से पीड़ित और सुख के लिए जहाँ-तहाँ भटकते हुए हम जीवों को शाश्वत सुख का राजमार्ग बतलाया है। डूबते सत्य को उभारकर, जगत के समक्ष प्रस्तुत किया है। जिज्ञासुओं को भावमरण से बचाने के लिए अनन्त तीर्थंकरों द्वारा प्रदत्त भेदज्ञान संजीवनी की भेंट दे रहे हो। मृतक कलेवर में मूर्छित जीवों को ज्ञानांजलि छिड़ककर, उनकी सुषुप्त चेतना को जागृत कर रहे हो। ज्ञानपिपासु आत्मार्थियों को ज्ञानामृत पिला रहे हो। आपश्री ज्ञानप्रभा से शोभित, धर्मकाल प्रवर्तानेवाले अजोड़ धर्मवीर हो। धर्मप्रपात बहानेवाले धर्मक्षेत्र के महत् पुरुष हो। आपश्री हृदय-भाजन में वीतरागदेव के अमृत भरकर लाये हो और उनका प्रवाह यहाँ बहा रहे हो।

हे दिव्यमूर्ति! धन्य है आपश्री के समकित को, ज्ञान को, वैराग्य को, आराधना को!! तीर्थंकर का विरह भुलानेवाली आपश्री की वाणी सुनने को मिलना, वह जीवन का धन्य अवसर है। आपश्री निरन्तर धर्मोपदेश प्रदान कर हम पर महान उपकार कर रहे हो। महत्पुण्य से हम आपश्री के दर्शन को प्राप्त हुए हैं; महासद्भाग्य से आपश्री की वाणी सुनने को मिली है और अब उसके रहस्य को समझकर हम सच्चे भाग्यशाली बनें। बस, जिन्हें शुद्धस्वरूप का उत्साह है, ज्ञायकदेव की भक्ति है और शासन प्रेम है — ऐसे आपश्री के चरणकमल में इस मंगल दिन आपश्री के अनन्त उपकारों का स्मरण करके सर्वांग अर्पणता करते हैं।

फिर कोई भावना भाता है : चैतन्य के स्पर्श से जिन्होंने स्वयं का जीवन धन्य किया है — ऐसे हे गुरुदेव! आपश्री युग-युग जियो। आपश्री का अन्तरंग जीवन पवित्र भेदज्ञान द्वारा बाह्य भावों से परम अलिप्त होने पर भी, आपश्री को आश्चर्यकारी प्रभावनायोग भी वर्त रहा है, जिसके कारण एक युग परिवर्तन हुआ है। आपश्री ज्ञानमूर्ति आत्मा, सम्यग्दर्शन की महत्ता और पदार्थ की स्वतन्त्रता के परम प्रकाशक हो। आपश्री ने अथाह पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त की हुई अद्‌भुत वस्तु हमें अपूर्व वाणी से समझा रहे हो। आत्मज्ञानरहित अन्धश्रद्धा तथा तत्त्व समझ से शून्य बाह्यक्रिया में लोग धर्म मान रहे थे, तब आपश्री ने अबाधित वीतराग-विज्ञान के सिद्धान्तों का गहन अवगाहन करके, चमत्कारिक आत्मानुभवपूर्वक वज्रवाणी द्वारा डंके की चोट पर घोषणा की कि 'मैं भगवान आत्मा हूँ' — ऐसी स्वानुभूति बिना धर्म नहीं। हम जिस मार्ग पर चलते हैं और बताते हैं, उस मार्ग पर निशंक चले आओ, अवश्य कल्याण होगा।

हे गुरुदेव! आपश्री के चरणों में हमारी प्रत्येक पर्याय से अनन्त-अनन्त वन्दन, गुणगान और स्तुति करें तो भी आपश्री ने जो उपकार किया है उसका बदला कैसे चुका सकेंगे? आपश्री के उपकारों के समक्ष वह किसी हिसाब में नहीं है, उसकी कुछ कीमत ही नहीं है, क्योंकि बदला न चुकाया जा सके — ऐसा अनुपम उपकार आपश्री ने किया है। अहो! आपश्री तो भूतकाल के महापुरुष हो; वर्तमान काल के धर्मयुग सृजक धर्मात्मा हो; और भावि काल के त्रिलोक पूज्य महाविभूति हो।

हे गुरुराज! जिस क्षण आपश्री का साक्षात्कार हुआ, वह मेरा उत्तम क्षण है।

हे कृपानाथ! जिस पल आपश्री मिले, वह मेरा धन्य पल है।

हे गुरुदेव! जिस काल में आपश्री के दर्शन हुए, वह मेरा मंगल काल है।

हे कृपासागर! जिस समय आपश्री प्राप्त हुए, वह मेरा अपूर्व समय है।

हे तारणहार! जिस वक्त आपश्री का समागम हुआ, वह मेरा अमूल्य वक्त है।

हे कृपासिन्धु! जिस घड़ी में आपश्री की पहचान हुई, वह मेरी अलौकिक घड़ी है।

हे स्वरूपसाधक! जिस क्षेत्र में आपश्री का साक्षात्कार हुआ, वह मेरा उत्तम क्षेत्र -तीर्थ है।

हे कृपानिधान! जब से आपश्री का संग हुआ, तब से मेरा जीवन सार्थक हुआ है।

अहो! जब आपश्री मिले, वह मेरे जीवन का अचिन्त्य प्रसंग है, महा-महोत्सव है, अद्‌भुत घटना है, अचम्भा है-आश्चर्य है।

अधिक क्या कहूँ ? आपश्री मिलने से क्या नहीं मिला ? सब ही मिला, क्योंकि आपश्री ही मेरे सर्वस्व हों।

आवो आवो, गाओने सहु नरनार, वंदन गुरुने करिए;
जोडो जोडो हैयाना तारेतार, वंदन गुरुने करिए....

तननो हुं तंबूर बनावुं, वाणीनी हुं वीणा बजावुं;
वागे वागे गुरुगुणतणा रणकार, वंदन गुरुने करिए......

बे करना हुं झांझ बनावुं, ताले ताले नाच नचावुं;
गाजे गाजे गुरुजीना जयकार, वंदन गुरुने करिए.....
गाजे गाजे वीरना लघुनंदन आज, वंदन गुरुने करिए....
जयवंत वर्तो सेवकना वहाला गुरुदेव, वंदन गुरुने करिए.....

प्रात:काल के उल्लास भरे कार्यक्रम के पश्चात् दोपहर में बालिकाओं द्वारा संवाद होता है। उसमें भक्ति की लहरें उछलती हैं और मानो देवलोक में भी यह जन्मोत्सव मनाया जाता है — ऐसी भावना व्यक्त होती है। तीन से चार बजे तक पुन: प्रवचनधारा बरसती है :

जैसे छोटी पीपल रंग से काली और अल्प चरपराहटवाली दिखाई देने पर भी, अन्दर में शक्तिरूप से परिपूर्ण हरा रंग और चरपराहट भरी है; उसी प्रकार आत्मा अशुद्ध-रागी और अल्प ज्ञानवाला दिखने पर भी, अन्दर में स्वभाव से तो पूर्ण वीतराग और सर्वज्ञ ही है।

ज्ञानी हो या अज्ञानी, कोई भी जीव कभी भी परद्रव्य को भोग ही नहीं सकता। भले अज्ञानी जीव मानें कि मैं पर को भोगता हूँ, तथापि उसे भी अपने भावों का ही वेदन होता है। जैसे कुत्ता सूखी हड्‌डी चबाता है तब हड्‌डी की नोंक स्वयं की दाढ़ को लगने से खून निकलता है और उस खून को कुत्ता चखता है। इस प्रकार कुत्ता चखता तो है अपना ही खून, तथापि मानता है कि हड्‌डियों को चखता हूँ।

जैसे बिल्ली जिस मुख से अपने बच्चे को पकड़ती है उसी मुख से चूहे को भी पकड़ती है, तथापि 'पकड़-पकड़ में अन्तर है' — बच्चे को लगे नहीं और चूहा भगे नहीं। उसी प्रकार जिन संयोगों के बीच अज्ञानी होता है उन्हीं संयोगों के बीच ज्ञानी होने पर भी, अभिप्राय में अन्तर है। अज्ञानी संयोगों में एकत्व-ममत्व-कर्तृत्व करता है, जबकि ज्ञानी मात्र ज्ञाता ही रहता है।

जिस प्रकार तोता नलनी पर बैठता है तब नलनी पलटने से उल्टा लटकता है और नलनी को जोर से पकड़ रखता है। परन्तु यदि तोता नलनी छोड़ दे तो आकाश में उड़ने लगेगा, क्योंकि उसका स्वभाव उड़ने का है। परन्तु अन्दर में 'मैं गिर जाऊँगा' - ऐसा मिथ्याभय हो गया है और उड़ने के स्वभाव का विस्मरण हो गया है-विश्वास नहीं है; इस कारण नलनी को नहीं छोड़ता। उसी प्रकार यह अज्ञानी जीव अपने सुखस्वभाव को भूलकर पर इन्द्रिय-विषय और रागादि विभाव में सुख-आनन्द की कल्पना करके उसे अपना मानता है-पकड़ कर रखता है, परन्तु निज ज्ञानानन्दस्वरूप को नहीं पहचानता।

प्रवचन की ज्ञानधारा के पश्चात् 45 मिनिट भक्तिधारा बहती है। सायंकाल आरती, रात्रिचर्चा के बाद फिर से एक घण्टे उल्लास-उमंग भरा भक्तिभाव का प्रवाह बहता है।

वैशाख शुक्ल तृतीया : जन्मोत्सव के आज के अन्तिम तीसरे दिन भी उत्साह, उमंग सहित कार्यक्रम होते हैं।

इस प्रकार प्रथम बार आनन्दोल्लासपूर्वक गुरु जन्म-जयन्ती मनायी जाती है और गुरुराज की महिमा से स्वर्णपुरी गुंजायमान हो उठती है।

ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी : 'स्वाध्याय मन्दिर' की स्थापना को दस वर्ष पूर्ण होते हैं। 'स्टार ऑफ इण्डिया' में दस-बीस जिज्ञासु दिखाई देते थे; 'स्वाध्याय मन्दिर' बनने पर सैंकड़ों मुमुक्षु दिखाई देते थे और 'प्रवचन मण्डप' बनने के बाद तो हजारों आत्मार्थी उमड़ने लगे हैं। जो कोई साधक आत्मार्थी इस क्षेत्र और काल में साधना करता है और बाद में भी पंचम काल के अन्त तक करेगा, उसमें प्रत्यक्षरूप से या परोक्षरूप से कारणभूत अजोड़ धर्मप्रभावना करनेवाले गुरुवर कहान ही होंगे, ऐसा स्पष्टरूप से — निश्चितरूप से—ज्ञात होता है।

ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्दशी को 'परमात्मप्रकाश' के प्रवचन पूर्ण होते हैं और आषाढ़ कृष्ण एकम के दिन प्रात:काल के प्रवचन में गुजराती में भाषान्तर हुआ 'प्रवचनसार' शुरु होता है। दोपहर में समयसारजी पर प्रवचन होते हैं।

आषाढ़ कृष्ण पंचमी, शुक्रवार, रात्रि को स्वप्न आता है। अन्यमत के चार साधु अपूर्व गुणधारी गुरुदेवश्री के समीप आकर वन्दन करके बैठते हैं और आपश्री की वाणी सुनते हैं। आत्मज्ञ सन्त गुरुदेवश्री फरमाते हैं : 'यह बात केवली भगवान द्वारा कथित है। जो बात उन्होंने स्वीकार की है, वही बात हम कहते हैं।' यह सुनकर वे चार साधु प्रसन्न होते हैं।... वाह! स्वप्न भी सत्यता का सूचक है न!!

श्रावण शुक्ल नवमी : जिनशासनप्रभावक गुरुदेवश्री के परम प्रताप से लाठी में जिनमन्दिर का शिलान्यास होता है।

भाद्रपद कृष्ण एकादशी से भाद्रपद शुक्ल नवमीं तक श्री समयसारजी गाथा 390 से 404 पर, जिनका ऐसे कलिकाल में सुयोग मिलना महा दुर्लभ है — ऐसे गुरुदेवश्री के, भेदज्ञानरस झरते अद्‌भुत प्रवचन होते हैं, जो बाद में 'भेदविज्ञानसार' नामक पुस्तकरूप से प्रसिद्ध होते हैं।

भाद्रपद शुक्ल दूज, रविवार। शासनमान्य शासनशिरोमणि श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव कृत परमागम श्री प्रवचनसारजी का, पण्डित श्री हिम्मतभाई शाह कृत गुजराती भाषान्तरसहित, प्रथम बार प्रकाशन होता है।

आश्विन शुक्ल चतुर्दशी, शनिवार। रात्रि को स्वप्न आता है। उसमें ऐसा आता है कि गुरुराज प्रवचनसभा में उपदेश देते हुए फरमाते हैं कि : इस उपदेश में जरा भी शंका मत करना। जो बात तीर्थंकरदेव यहाँ कहते थे, वही बात हम कहते हैं। उनकी और हमारी — दोनों की बात समान है।... बात सत्य ही है न! केवली की या अनुभवी की, बात तो समान ही होती है न!

जिनकी वाणी सुनने से चैतन्य जागृत हो — ऐसे कहान गुरुदेव द्वारा दर्शाये गये तत्त्वज्ञान में अब हजारों जिज्ञासु जीव रस लेने लगे हैं। भूतकाल के सुदीर्घ काल में देखने

पर, नजर से नहीं दिखती ऐसी शासनप्रभावना हो रही है। इसी के फलरूप कार्तिक कृष्ण एकादशी के दिन सौराष्ट्र के पाटनगर ऐसे राजकोट में 500 मुमुक्षुओं की उपस्थिति में श्री नानालालभाई जसाणी के हस्त से जिनमन्दिर का शिलान्यास सम्पन्न होता है।

इस प्रकार जिस वर्ष में धर्मधुरन्धर सन्त गुरुदेवश्री के जीवन के '58' वर्ष पूर्णता को प्राप्त हुए और जन्म-जयन्ती मनाने की शुरुआत हुई, वह संवत् 2004 का वर्ष पूर्ण होता है।

भक्त जीवन आधार, दिव्य ज्ञानधारी, परम कृपालु कहान गुरुदेव को परम भक्ति से बारम्बार नमस्कार!

★ ★ ★

विक्रम संवत् 2005 (सन् 1948-49)

प्रथम बार कुमारिका बहिनों द्वारा ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा अंगीकार वर्ष

कार्तिक माह की अष्टाह्निका के दौरान त्रयोदशी के शुभ दिन स्वर्णपुरी में एक अपूर्व भव्य प्रसंग बनता है।

स्वानुभव से समृद्ध गुरुदेवश्री ब्रह्मचर्य के रंग से रंगे हुए सत्पुरुष हैं। आपश्री स्वयं कठोर शील का पालन करते हैं और अन्य से भी उसका आग्रह रखते हैं। इसलिए रात्रि के कार्यक्रमों में मात्र पुरुष ही भाग लेते हैं। आपश्री के ऐसे ब्रह्मचर्य के आदर्श गुण से प्रेरित होकर तथा चैतन्यस्पर्शी अध्यात्म उपदेश और ज्ञान-वैराग्यमय जीवन से प्रभावित होकर, निज जीवन में भेदज्ञान के संस्कारों का सिंचन करके आत्महित करने, तत्त्वज्ञान का अभ्यास करने और ज्ञानी-सन्तों की कल्पवृक्ष समान शीतल छाया में निरन्तर निवृत्तिमय जीवन जीने के लिए, छह कुमारिका बहिनें आजीवन ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा धारण करती हैं।

प्रचुर भौतिक विलास के इस युग में जब जीव सुख के लिए इन्द्रिय-विषयों के पीछे दौड़ते हैं, तब असंगी चैतन्य के मंथन से वैराग्य प्रगट होना वह ज्ञान-वैराग्यपोषक सुमेघ गुरुदेवश्री की अनुपम प्रभावना का फल है। जो भक्तों के जीवन को ज्ञान-वैराग्य के जल से सींच रहे हैं और जीवन गढ़ रहे हैं — ऐसे समयसारयुगप्रवर्तक गुरुदेवश्री की प्रवचनवाणी का लाभ लेनेवाली और पूज्य बहिनश्रीबेन की मंगल छाया में वर्षों से रहनेवाली छह कुमारिका बहिनें, अन्य के संग में जो अशक्य है और धर्मात्मा के चरण-शरण में सुगम है ऐसे, आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा आज एक साथ भक्तजीवनशिल्पी गुरुदेवश्री के समक्ष अंगीकार करती हैं। तत्त्वज्ञान के बल से तथा उसमें ही आगे बढ़ने की भावना से यह प्रतिज्ञा ली जाती है। इस प्रसंग को मुमुक्षुसमाज विशिष्ट उत्साह से मनाता है। अभी तक कुमार भाईयों तथा बहुत से दम्पति आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा लेते ही थे, आज

प्रथम बार कुमारिका बहिनें चौथा व्रत धारण करती हैं। वे ऐसी भावना भाती हैं कि हमें गुरुचरणों का यह लाभ हो कि जिससे आत्मा की प्राप्ति हो, आत्मसन्मुखता हो।

अहो! जब जैनधर्म के नाम से बाह्य प्रवृत्तियाँ चल रहीं थीं; जैनों को अजैनपने का उपदेश दिया जा रहा था; वीतरागमार्ग में गृहीतमिथ्यात्व का पोषण हो रहा था अर्थात् मोक्षमार्ग सुषुप्त और लुप्त हो रहा था, तब भव्य भक्तों के भाग्य से तथा पंचम काल के अन्त तक धर्म टिकनेवाला है इसलिए शुद्धात्मसाधनामय जीवन जीनेवाले गुरुदेवश्री मिले। आपश्री के प्रताप से अभी हजारों लोग आपश्री की कल्याणकारी वाणी का लाभ ले रहे हैं। आरम्भ हुई धर्म की पेढ़ी अब जमती जा रही है और उसके मीठे मधुर सुखमय फल भी मिलने लगे हैं।

पौष कृष्ण अष्टमी : सीमन्धरप्रभु के अपूर्व सन्देश भरत में लानेवाले, कलिकालसर्वज्ञ श्री कुन्दकुन्दाचार्य के 'आचार्यपद आरोहण' का आज पवित्र दिन है। सोनगढ़ में प्रति वर्ष यह आनन्दकारी दिन अति उल्लासपूर्वक मनाया जाता है। आज इस पर्व के उपरान्त परमागम श्री समयसारजी पर समयसाररहस्य उद्घाटक गुरुवर के आठवीं बार के प्रवचन पूर्ण होने का प्रसंग भी है। जैसे मुनिवरों में श्री कुन्दकुन्दाचार्य अग्र स्थान पर हैं, प्रमुख-मुख्य हैं; वैसे ही जैन परमागमों में श्री समयसारजी अग्र स्थान पर है। इस परमागम पर आठवीं बार के प्रवचन विक्रम संवत् 2002 में ज्ञान के दिन-श्रुतपंचमी पर्व ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी को -शुरु हुए थे और आज विक्रम संवत् 2005 के चारित्र के दिन — श्री कुन्दकुन्ददेव के आचार्यपद आरोहण पर्व पौष कृष्ण अष्टमी को—पूर्ण होते हैं।

यह अन्तिम प्रवचन पूर्ण करते हुए अनुभवरसपूर्ण वाणी बरसाने वाले गुरुराज फरमाते हैं : 'हे जीवों! अन्दर में स्थिर हो, स्थिर हो!! अनन्त महिमावन्त शुद्धात्मस्वभाव का आज ही अनुभव करो!' — इस प्रकार स्वानुभूति की अनुपम-अद्भुत प्रेरणा प्रदान करके आगे कहते हैं : 'इस समयसार के वाँचन की शुरुआत श्रुतपंचमी के दिन हुई थी और पूर्णता आचार्यपदवी के दिन होती है। श्रुतपंचमी ज्ञान का दिन है और आचार्यपदवी में चारित्र है। इसलिए ज्ञान से शुरुआत हुई है वह आगे बढ़कर चारित्रदशा प्राप्त करके, केवलज्ञान तक पहुँच कर पूर्ण होगी। बोलो समयसार भगवान की जय हो...।' इस प्रकार

जब गुरुदेवश्री स्वयं की आराधना की पूर्णता के करारपूर्वक समयसारजी की पूर्णता करते हैं और 'जय' बुलाते हैं, तब समस्त श्रोताजन भी अति हर्षोल्लास और भक्तिभावसहित वह 'जयकार' झेल लेते हैं। 'सद्धर्मप्रभावक दुन्दुभी मण्डल' के वाद्य भी मंगलध्वनि से उसमें साथ देते हैं। यह है आत्मार्थिता को प्रगट एवं पोषण करनेवाले गुरुवर के जीवन में घटित ग्रन्थाधिराज श्री समयसारजी के प्रति अगाध-अमाप-आश्चर्यकारी महिमा के अनेक प्रसंगों का एक नमूना।

अहो! सागर समान गम्भीर समयसारजी के अनुपम रहस्य को आठ-आठ बार सुनाकर, अकारण करूणा के सागर गुरुवर कहान, मुमुक्षु-जिज्ञासु समाज पर महान उपकार कर रहे हैं। भक्तों के सद्भाग्य से ही इस वाणी की वर्षा हो रही है। कुछ वर्षों पूर्व इस सौराष्ट्र की भूमि में शायद ही किसी ने समयसारजी का नाम भी सुना होगा, परन्तु आज ऐसा योग बना है कि प्रत्येक जैन उसे जानता है। इस काल में, इस क्षेत्र में, आत्महित के कारणभूत ऐसी देशनालब्धि अर्थात् गुरुदेवश्री के प्रवचन। अनुभवभावों से सुशोभित, आत्मिक-वीर्य को उछालनेवाले और वैराग्यरस को बहानेवाले समयसार-प्रवचन आत्मार्थी के हृदय को स्पर्श कर जाते हैं। अध्यात्ममस्ती से बजाई जाती यह प्रवचनवीणा सुनते हुए श्रोताजन एकतान हो जाते हैं और अनेक वर्षों से एकधारा श्रवण करने पर भी, किसी को कभी उकताहट नहीं आती, अपितु बारम्बार सुनने की जिज्ञासा रहा करती है।

भाव समयसार अर्थात् शुद्धात्मा और द्रव्य समयसार अर्थात् ग्रन्थाधिराज शास्त्र। — इन दोनों के अन्तर मन्थन द्वारा स्वानुभूति-अमृत का पान स्वयं गुरुदेवश्री ने किया है, कर रहे हैं, और भक्तों को भी करा रहे हैं। जैसे-जैसे पुनः-पुनः समयसार पढ़ा जाता है, वैसे-वैसे उसमें भरे हुए सूक्ष्म न्याय प्रकाश में आते हैं और जैसे-जैसे सूक्ष्म न्याय समझ में आते हैं, वैसे-वैसे श्रोताओं का उपयोग अधिक से अधिक निर्मल-स्पष्ट होता है, अन्तर में आनन्दतरंग उछलने लगती हैं। आज भक्त भावना भाते हैं : जिस प्रकार दिव्यमूर्ति गुरुराज ने आठ बार समयसार समझाकर भक्तों को निहाल किया हैं, उसी प्रकार आगे भी अनेक बार इस परमागम के गहनभावों को प्रकाशित करके हमारे आत्मजीवन को उज्ज्वल करें, इस दुर्लभ मनुष्यपर्याय को सार्थक करें।

सुणो कहानगुरुनी वाण, चैतन्य झलकावनहार....
ज्ञान विकसावनारी वाणी अहो, जड़ चैतन्य भेदावनार वाणी अहो;
तारा भावे पूजन करूँ आज, जय गुरुवाणी अहो!......

गुरु ज्ञान गुंजारव काने आवे, आ चैतन्यमां रणकार जागी उठे;
मारुं हैयुं आनंदे उभराय, जय गुरुवाणी अहो!......

गुरु पर्याये पर्याय ज्ञान दीवडा जाग्या, जाणे गगनेथी भानु आवी मल्या;
एवा तेज अंबार छलकाय, जय गुरुवाणी अहो!......
श्रुतसागर ऊछल्या महान, जय गुरुवाणी अहो!......

धन्य धन्य सीमन्धरनन्दन अहो, धन्य धन्य कुंद केड़ायत अहो;
तारा चरणोमां रहीए सदाय, जय गुरुवाणी अहो!......

माघ शुक्ल नवमीं : सोनगढ़ के पश्चात् सर्व प्रथम बार पंच कल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव के प्रसंग में, जिनके प्रताप से जिनशासन की जय-जयकार हो रही है ऐसे वीतरागमार्ग प्रणेता कहान गुरुवर का धर्मोद्योतकारी मंगल विहार सौराष्ट्र में होता है।

आजे सौराष्ट्रदेशमां तोरणो बंधाय छे रे,
मारा सद्‌गुरुजी करे छे विहार रे.... वीतरागी आंबा रोपवा रे....
धर्मना आंबा रोपवा रे......

गामेगाममां जिनालय स्थपाय छे रे,
घेर घेर वर्ते छे जयमाल रे.... वीतरागी आंबा रोपवा रे....

जेवा कुंदकुंददेव ने नेमिचंद्रदेवे कार्यो कर्यां रे,
तेवा अद्‌भुत कार्यो मारा गुरुजी हाथ रे.... वीतरागी आंबा रोपवा रे....

श्री जिनेन्द्र शासन जयवंत वर्ती रह्युं रे,
एनो नावडीयो छे मारो गुरुजी कान रे.... वीतरागी आंबा रोपवा रे....

गुरुजी विहार मंगल उत्तम कार्य करी रे,
गुरुजी वहेला वहेला पधारो तीर्थधाम रे.... वीतरागी आंबा रोपवा रे...
गुरुजी वहेला वहेला पधारो सेवक घेर रे... वीतरागी आंबा रोपवा रे....

प्रथम दिन पद-विहार करते-करते धारूका गाँव पधारते हैं। यहाँ तथा अन्य गाँवों में 'पद्मनन्दि पंचविंशति' के 'सद्बोधचन्द्रोदय अधिकार' पर प्रवचन होते हैं।

दूसरे दिन जन्मनगरी उमराला में पदार्पण होता है। जन्मजात असाधारण प्रतिभा के स्वामी ऐसे भावी तीर्थाधिनाथ के चरण से स्पर्शित इस भूमि के रजकण मानों कि गौरव अनुभव करते हों ऐसा लगता है। हमारे गाँव के सन्त हमारे आँगन पधारे हैं — ऐसे भक्ति-उल्लास से समस्त ग्रामजन स्वागत करते हैं। स्वागतयात्रा के पश्चात् उमराला के सन्त मांगलिक सुनाते हैं। दोपहर को प्रवचन होता है :

1. जैसे ज्ञानी का अशुभराग, सम्यग्दर्शन को बाधक नहीं; वैसे उसका शुभराग, सम्यग्दर्शन को सहायक नहीं।
2. जो अपनी आत्मा का आश्रय करता है, वही भगवान की वाणी समझा है।
3. वीतराग के भक्त को राग का आदर नहीं होता।
4. सत्पुरुष से सत् की रुचिपूर्वक सत् का श्रवण एक बार तो अवश्य करना ही चाहिए और तभी सत् का परिणमन होता है।
5. हे भाई! तुझे आत्मकल्याण की भावना है, परन्तु तत्त्वज्ञान का अभाव है; इसलिए आत्मा प्राप्त नहीं होता।
6. अरे चैतन्य! तुझे निज अनुभव के बिना जीवन कैसे रुचता है?
7. आत्मा में अभेद हो वही सच्चा ज्ञान है।
8. समझ ही धर्म है और अज्ञान ही संसार है।
9. स्वतन्त्र-स्वाधीन स्वभाव की नि:शंकता आये बिना स्वतन्त्र होने का पुरुषार्थ जागृत नहीं होगा।

माघ शुक्ल एकादशी : सबेरे बैण्डबाजों सहित भक्ति करते-करते भक्त, गुरुजन्मस्थान में आते हैं। नौ से दस एक घण्टे यहाँ भक्तिभाव का सागर ऐसा उछलता है कि गाँव के मुखियाजी भी प्रशंसा किये बिना नहीं रहते। जन्मोत्सव सम्बन्धी भक्ति के बाद गुरुचरण से पावन जन्मस्थान में 'जन्मधाम' बनाने का निर्णय होता है। दोपहर में प्रवचन और रात्रि में तत्त्वचर्चा होती है। अपने गाँव के 'कानजी' को सुनने पूरा गाँव उमड़ता है।

माघ शुक्ल द्वादशी : उमराला में जिन्हें ओम् ध्वनि आयी थी, वे उजमबानन्दन समयसार कलश 32 का अर्थ समझाते हुए कहते हैं : 'आचार्यदेव सबको सपरिवार निमन्त्रण देते हैं कि आनन्दकन्द आत्मा में सभी जीव स्थिर हो जाओ, डूब जाओ, इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ सार नहीं है।' समझ पर वजन देते हुए श्रेष्ठी मोतीचन्दभाई के कुँवर कहते हैं : 'जैसे कुल्हाड़े से कपड़े नहीं धुलते, अपितु फट जाते हैं; उसी प्रकार आत्मा की सच्ची समझ के बिना शरीर आदि की क्रिया से धर्म नहीं होता, परन्तु अधर्म होता है।'

माघ शुक्ल त्रयोदशी के दिन भी उमराला नगरी में जन्म लेनेवाले उमराला के महात्मा उमराला में विराजते हैं। इस प्रकार माघ शुक्ल 10 से 13, ऐसे चार दिन जन्मनगरी में विराजकर, माघ शुक्ल 14 के दिन दड़वा होकर उजलवाव पधारते हैं। जिस-जिस गाँव में ज्ञानरस में सराबोर गुरुवर्य पधारते हैं, उस-उस गाँव में दोपहर के तीन से चार बजे तक 'पद्मनन्दी पंचविंशति' पर प्रवचन होते हैं और उन्हें सुनने के लिए किसान अपना काम बन्द रखते हैं। प्रतिदिन रात्रि तत्त्वचर्चा के दौरान जिज्ञासुओं की शंका का समाधान भी होता है।

माघ शुक्ल पूर्णिमा : लाखनका गाँव में पदार्पण होने पर, गाँव के मुखिया दरबार भी भक्तिभाव और प्रेम व्यक्त करते हैं। ग्रामीणजन उत्साह से गाँव का शृंगार करके, स्वागत करते हैं और प्रवचन का लाभ लेते हैं।

फाल्गुन कृष्ण एकम : पूर्वजों का मूल गाँव गढ़डा जाते हुए, बीच में अड़ताला के धर्मजिज्ञासुओं द्वारा विनती करने से मांगलिक सुनाकर गढ़डा पधारते हैं। यहाँ स्थापित मुमुक्षुमण्डल अति भक्ति से स्वागत करता है और मंगलमय गुरुदेव अर्थ सहित मांगलिक फरमाते हैं। दोपहर के प्रवचन में विशिष्टरूप से शिक्षित वर्ग की उपस्थिति विशेष ज्ञात होती है। यहाँ दो दिन रुकना होता है।

फाल्गुन कृष्ण चतुर्थी को उगामेडी और पंचमी को गोरडका पधारते हैं। यह छोटा सा गाँव होने पर भी यहाँ प्रतिदिन स्वाध्याय होता है।

फाल्गुन कृष्ण षष्ठी : नागलपर की ओर विहार करते हुए बीच में टाटम गाँव आता

है। भक्तों की विनती से यहाँ मांगलिक सुनाते हैं। दोपहर को नागलपर में प्रवचनधारा प्रवाहित होती है :

1. पूर्ण स्वभाव का आश्रय ही पूर्णता प्राप्त करने का उपाय है।
2. अज्ञानी, बाह्य त्यागी होने पर भी अधर्मी है और ज्ञानी, गृहस्थदशा में होने पर भी धर्मी है।
3. जैनशासन अर्थात् स्वाश्रय, वीतरागता।
4. समझने के लिये सदा ही मांगलिक काल है।
5. रागभाव कभी भी कर्तव्य नहीं है।
6. मोक्ष प्राप्त करने के लिए सम्यग्दर्शन की भावना करो और संसार के अभाव के लिए मिथ्यात्व का वमन करो।
7. ज्ञानी को निरन्तर ज्ञान बढ़ता है और अज्ञानी को निरन्तर विकार बढ़ता है।
8. 'सत्' का आदर और अज्ञान का त्याग ही सर्व प्रथम धर्म है।
9. अन्तर से सत् के स्वीकार बिना धर्म समझ में नहीं आयेगा।
10. सम्यग्दृष्टि का भव बिगड़ता नहीं और बढ़ता भी नहीं।

फाल्गुन कृष्ण सप्तमी से दशमी, ऐसे चार दिन के लिए बोटाद आगमन होने पर भक्त-मण्डल भव्य स्वागत करता है। यहाँ दोपहर में प्रवचन और प्रातः-रात्रि में तत्त्वचर्चा होती है, जिसका बहुत जिज्ञासु लाभ लेते हैं। एक जिज्ञासु प्रश्न करता है : 'सम्यग्दर्शन तो जब चाहे तब हो सकता है न ?' समाधान : 'जिज्ञासु को ऐसा होना चाहिए कि चाहे जब नहीं, परन्तु मुझे अभी ही सम्यग्दर्शन प्राप्त करना है। जिसे जिसकी रुचि हो, उसे वर्तमान में ही प्राप्त करने का प्रयत्न करे।' अन्तिम दिन एक मुमुक्षु दम्पति के ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा अंगीकार करने के प्रसंग पर, 'मोक्षमाला' के 34 वें पाठ 'ब्रह्मचर्य सुभाषित' पर व्याख्यान होता है। ऐसे प्रसंगों पर भवान्तकारी आत्मसाधना साधनेवाले गुरुवर बहुत बार फरमाते हैं : 'वास्तविक ब्रह्मचर्य तो ब्रह्मानन्द-ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा का भान करके उसमें चरना-रमणता करना है। बाह्य विषयभोग तो अनन्त बार भोगे हैं, परन्तु उनमें सुख

नहीं है; सुख तो आत्मा में है। इसलिए विषयभोगों में सुख है — ऐसी बुद्धि छोड़कर, आत्मा की समझ का प्रयत्न करना चाहिए।'

संसारविषवृक्ष को क्षणमात्र में क्षय करानेवाले गुरुदेवश्री का आगमन फाल्गुन कृष्ण एकादशी को भद्रावडी और दूसरे दिन सरवा गाँव में होता है। यहाँ विक्रम संवत् 1972 में केवलज्ञान तथा पुरुषार्थ संबंधी चर्चा हुई थी। आज भी उस सम्बन्धी बात निकलने पर आराधनामूर्ति गुरुराज उल्लासपूर्वक कहते हैं : ''पुरुषार्थी जीव के अनन्त भव नहीं होते और केवली भगवान ने भी नहीं देखे। जिसे भवरहित आत्मा की श्रद्धा हुई, उसे अनन्त भव होते ही नहीं। जिसे भवरहित केवली की प्रतीति हुई, उसके अनन्त भव भगवान ने देखे ही नहीं। 'मोक्ष के लिए जीव का पुरुषार्थ काम नहीं करता' ऐसी बात जगत के किसी भी जीव को कभी भी सुनने में न आये।'' वाह! क्या पुरुषार्थमूर्ति की पुरुषार्थप्रेरक बात!

शान्तरसमय पुरुषार्थ द्वारा साधनामार्ग में प्रबल रीति से आगे बढ़ते हुए गुरुवर्य की वाणी का एक शब्द भी पात्र जीव के लिये तो अमूल्य है। जैसे, स्वातिनक्षत्र की वर्षा का एक बिन्दु, सीप के मुख में मोतीरूप परिणमित होता है, वैसे ही भेदविज्ञानी गुरुराज का एक शब्द-वाक्य भी पात्र जीव की दृष्टि को आत्मप्राप्ति करा देता है। अहो! उस वाणी की और उसके वक्ता की क्या महिमा करना! वस्तुतः तो गुरुवाणी जिस शुद्धात्मा को दिखलाती है उस ज्ञायकभाव की महिमा / महत्ता जिसे आती है, उस आत्मार्थी को ही गुरुवाणी की वास्तविक महिमा / महत्ता भासित होती है। महामूल्यवान भगवान आत्मा प्राप्त हुआ तो उसे बतलानेवाली वाणी और वक्ता भी मूल्यवान है — ऐसा भासित होता ही है न!

गुरुवर प्रतिदिन लगभग पाँच-सात मील पैदल चलकर विहार करते हैं। जिस गाँव में आपश्री पधारते हैं, वहाँ के किसान उत्सव जैसा मानकर उस दिन खेत पर नहीं जाते और अत्यन्त उत्साह से प्रवचन सुनने आते हैं।

फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी : आज छोटी-सी वींछीया नगरी सुन्दर कमान-ध्वजा-पताका-तोरण आदि के शृंगार से स्वर्गसमान सुशोभित हो रही है। क्या कारण है? जिनमार्ग के परम प्रभावक धर्मचक्री गुरुवर कहान, श्री जिनेन्द्र पञ्च कल्याणक

प्रतिष्ठामहोत्सव के प्रसंग पर पदार्पण कर रहे हैं। मात्र भक्तमुमुक्षुओं को ही नहीं, समग्र जनसामान्य को भी आनन्द–उत्साह वर्त रहा है। अजोड़ रत्न गुरुदेवश्री के पधारने पर भव्य स्वागत होता है। अहा...! जिस–जिस नगर में गुरुराज का आगमन होता है, उस प्रत्येक नगर में भक्तों की भक्ति उछल पड़ती है और भव्य–अति भव्य अद्‌भुत स्वागत होता है। यह अनुपम प्रभावना उदय आत्मार्थियों को तीर्थंकर के साक्षात् विहार काल का मंगल स्मरण कराता है तथा महा समर्थ आचार्यों—सिद्धान्त चक्रवर्ती श्री नेमिचन्द्राचार्य, श्री अकलंकदेव इत्यादि — द्वारा भूतकाल में कैसी धर्मप्रभावना हुई होगी उसका अन्दाज देती है।

स्वागतयात्रा के पश्चात् नवीन निर्मित 'जैन स्वाध्याय मन्दिर' में गुरुदेवश्री पधारते हैं और अर्थसहित मांगलिक फरमाते हैं। यहाँ आकार प्राप्त स्वाध्याय मन्दिर और जिनमन्दिर हूबहू सोनगढ़ जैसा ही है, मानो कि उसका प्रतिबिम्ब!

श्री जिनेन्द्र पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठामहोत्सव अर्थात् विश्व का सर्वोत्तम मांगलिक महोत्सव! यह संसारी जीवों की संख्या घटाकर मुक्त जीवों की संख्या में वृद्धि करता है। इस महोत्सव का कार्यक्रम फाल्गुन शुक्ल एकम के दिन 'समवसरण विधान पूजा' से शुरु होता है। कलकत्ता, इन्दौर, अजमेर, कानपुर, भेलसा, मलकापुर, अंजड़, सिद्धक्षेत्र बावनगजा–चूलगिरि इत्यादि दूर–दूर के नगरों से और सौराष्ट्र के सावरकुण्डला, बोटाद, राणपुर, वढ़वाण, सुरेन्द्रनगर, आंकड़िया, चोटीला इत्यादि गाँवों से भी कुल 42 प्रतिमाएँ प्रतिष्ठा के लिए आती हैं। मानो कि वींछीया में जिनेन्द्र के झुण्ड उतरे! एक साथ इतने जिनबिम्बों की प्रतिष्ठा का अवसर कौन जाने कब सौराष्ट्र में आया होगा! प्रतिष्ठा में विधिनायक श्री ऋषभदेव हैं और मूलनायक श्री चन्द्रप्रभ यहाँ विराजमान होनेवाले हैं। प्रतिष्ठाविधि कराने के लिए इन्दौर से पण्डित नाथूलालजी आये हैं। महोत्सव के दौरान परमागम प्रवचनसारजी की गाथा 159–160 पर प्रवचन होते हैं।

फाल्गुन शुक्ल सप्तमी, सोमवार। आज श्री चन्द्रप्रभ का निर्वाणकल्याणक दिन है और इसी उत्तम दिन, पवित्र जिनमन्दिर में मंगलमय श्री चन्द्रप्रभ आदि भगवंतों की प्रतिष्ठा जिनेन्द्रभक्त गुरुदेवश्री अपने पावन हस्त से करते हैं। कैसा योगानुयोग! तत्पश्चात्

‘स्वाध्याय मन्दिर’ में श्री समयसारजी की स्थापना, ओमकार ध्वनि के सन्देश सुनानेवाले गुरुराज के कर–कमलों से होती हैं।

जिनशासन प्रभावक पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठामहोत्सव पूर्ण होने के बाद भी चैत्र कृष्ण पंचमी तक गुरुवर्य यहाँ वींछीया में विराजते हैं। फिर विहार करके छाशीया, सणोसरा, पीआवा, चोटिला, कुवाडवा इत्यादि गाँवों को पावन करते हैं। चोटिला के पास के मोलडी गाँव का एक प्रसंग देखते हैं। एक भाई गाँव के लोहार को कहते हैं : ‘एक महाराज गाँव में आये हैं।’ उपेक्षाभाव से लोहार कहता है : ‘आये होंगे, ऐसे तो बहुत आते हैं।’ वह भाई फिर से कहते हैं : ‘यह महाराज (अर्थात् गुरुदेवश्री) तो ऐसा कहते हैं कि लोहार हथोड़ा उठाता नहीं।’ लोहार आश्चर्यचकित हो जाता है। जगत से अत्यन्त अलग बात किसे आश्चर्य नहीं करायेगी!

इस विहार के दौरान, छाशीया में ‘श्रीमद् राजचन्द्र’ में से सौवें पत्र पर, सणोसरा में ‘मोक्षमाला’ के पाठ 4 पर, पिआवा में ‘मोक्षमाला’ के पाठ 16 पर, चोटिला में ‘पद्मनन्दि पंचविंशति’ पर और कुवाडवा में ‘भरतेश–वैभव’ पर व्याख्यान होते हैं, जिसमें गाँव के जैनेतर लोग भी समझ जायें – ऐसी सरल भाषा में गुरुदेवश्री आत्मा की समझ पर वजन देते हैं।

चैत्र शुक्ल एकम : सौराष्ट्र की राजधानी राजकोट में आगमन होने पर उल्लासपूर्ण स्वागत होता है। यहाँ सदर में आये हुए ‘आनन्दकुंज’ में वैशाख शुक्ल अष्टमी तक विराजते हैं, जिस दौरान ‘प्रवचनसारजी’ के ‘ज्ञेयतत्त्व–प्रज्ञापन अधिकार’ की 172 वीं गाथा पर, जिसमें कि अलिंगग्रहण के 20 बोल हैं उस पर, 30 प्रवचन होते हैं। कितने ही प्रवचनों की तो रिकार्डिंग होती है। पुरुषार्थप्रेरक गुरुदेवश्री व्याख्यानों में मुख्यरूप से द्रव्यदृष्टि के जोर–बल की और पर्याय की गौणता की बात करते हैं। जबकि अलिंगग्रहण के अन्तिम बीसवें बोल में पर्याय की बात है; पर्याय को ‘आत्मा’ कहा है। इससे एक मुमुक्षुभाई को जिज्ञासा होती है कि गुरुदेवश्री इस बोल का अर्थ क्या करेंगे? और जब न्यायपूर्ण तथा समझ–विवेकवाला अर्थ सुनते हैं कि ‘वेदन में पर्याय ही आती है, द्रव्य नहीं; इसलिए वेदन अपेक्षा से पर्याय ही आत्मा है।’ तब वे आश्चर्यचकित हो जाते हैं।

कोई भी विषय हो; अनुभवी की अमृतवाणी जगत को आश्चर्य / विस्मय कराये ऐसी ही होती है।

एक बार स्वप्न आता है। उसमें कोई व्यक्ति जिज्ञासापूर्वक प्रश्न करता है : 'केवलज्ञान प्राप्त करने की चाबी बताओ ?' उत्तर मिलता है : 'भाई ! उसकी चाबी यह है — आत्मज्ञान।' पूरक प्रश्न होता है : 'वह किस प्रकार ?' समाधानरूप में गुरुदेवश्री एक गाथा कहते हैं, उसका अर्थ यह है कि 'एक आत्मा को जानने से सब जानने में आ जाता है।'

श्रुतज्ञानसूर्य गुरुराज के व्याख्यान सुनने के लिए यहाँ जैन-जैनेतर के उपरान्त वकील, डॉक्टर इत्यादि शिक्षित वर्ग का विशाल समुदाय उमड़ पड़ता है। गुरुदेवश्री फरमाते हैं :

1. इस जीव ने अपने स्वभाव की प्रभुता उत्साह से सुनी भी नहीं और स्वीकारी भी नहीं, परन्तु यदि वह अपने स्वभाव की प्रभुता पहिचाने तो स्वयं प्रभु हुए बिना रहे ही नहीं।
2. जब तक राग है तब तक ज्ञान भी भेद / खण्डरूप होता है और वाणी भी भेद / खण्डरूप होती है।
3. पर्यायदृष्टि से संसार और द्रव्यदृष्टि से मुक्ति।
4. स्वभाव के अतिरिक्त अन्य की ओर ज्ञान को ले जाना प्रपंच है।
5. परमात्मशक्ति का विश्वास और आत्मस्वभाव का उल्लास लाओ।
6. मुक्तिमार्ग में व्यवहार का ज्ञान होता है, परन्तु आश्रय नहीं होता।
7. जैनशासन, निमित्त की उपेक्षा करने को कहता है।
8. द्रव्य में से मोक्षपर्याय आती है; इसलिए द्रव्यदृष्टिवाले को 'मोक्ष कब होगा ?' — ऐसी मुक्तपर्याय प्रगट करने की भी आकुलता नहीं होती।
9. द्रव्यदृष्टि हुई ऐसा कहो या क्रमबद्धपर्याय का यथार्थ निर्णय हुआ ऐसा कहो — दोनों का एक ही भाव है।

10. द्रव्यदृष्टि के अपूर्व पुरुषार्थ बिना क्रमबद्धपर्याय या केवलज्ञान की प्रतीति नहीं होती।
11. जैनशासन का मूल रहस्य अकर्तापना है। अकर्तापना अर्थात् क्या? कि द्रव्य, पर्याय को भी नहीं करता; और ऐसा अकर्तापना मानना ही पुरुषार्थ है।

यहीं, वैशाख शुक्ल 1-2-3 ऐसे तीन दिन महासुखसागर प्राप्त करने का सम्यक् -मार्ग बतलानेवाले गुरुदेवश्री का मंगलकार साठवाँ जन्मजयन्ती महोत्सव मनाया जाता है। इस आनन्दकारी प्रसंग पर भक्त भावना भाते हैं : कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शन का अपार माहात्म्य बतलानेवाले हे गुरुराज! आपश्री एक अजोड़ लोकोत्तर व्यक्ति हो। आपश्री जगत से अनोखे हो और आपश्री की प्रवचनशैली भी अनोखी है। आपश्री मात्र आगम के आधार से ही नहीं, परन्तु प्रत्यक्ष अनुभवपूर्वक वस्तुस्वरूप को समझाते हो और स्वानुभव कभी भी आगम से विरुद्ध होता ही नहीं। भवरहित आत्मा की अनुभूति के बिना भवनाशक सम्यग्दर्शन या सम्यग्ज्ञान कैसे प्रगट होंगे? और उस शुद्ध भूमिका के बिना चारित्र कैसे होगा? — ऐसी, तीन काल और तीन लोक में न बदले ऐसी तथा सर्व तीर्थंकरों और अनुभवी पुरुषों द्वारा कथित अपूर्व बात सुनाकर, आपश्री परम उपकार करते हो। आगम और आचार्यों की साक्षी सहित तथा अनुभव की वज्र मोहर के साथ, आपश्री युक्ति से तत्त्व को स्पष्ट और सुन्दर रीति से समझाकर, भवभ्रमणनाशक परम कल्याणकारी लोकोत्तर धर्मयुग का पुनः प्रवर्तन कर रहे हो। आपश्री के उपदेशसागर की अमृत लहरें, हम मुमुक्षुसमाज को पावन करती हैं।

आपश्री ने ही हमारे चैतन्यजीवन को गढ़ा है। हमारी परिणति में जो कुछ ज्ञान -वैराग्य-भक्ति-स्वभाव का आदर इत्यादिरूप सुन्दरता है, वह सब ही आपश्री की ही कृपा है। हमारे श्रद्धा-चारित्रजीवन के, ज्ञान-वैराग्यधारा के गढ़नेवाले-निर्माता आपश्री ही हो। आपश्री के प्रत्यक्ष जीवनदर्शन और प्रवचनश्रवण द्वारा ही हमारा जीवन गढ़ा गया है। सागर का जल मेरु की ऊँचाई को किस प्रकार माप सकता है? उसी प्रकार अनुपम उपकार करनेवाले हे गुणमेरु गुरुदेव! आपश्री की महिमा-गुणप्रशस्ति शब्दों से किस प्रकार हो सकती है? हे स्वरूपदानदातार दयानिधि! आज के पवित्र दिन बस, आपश्री के चरण-कमल में भक्तिभावभीगी भावांजलि अर्पण करते हैं।

राजकोट में स्वानुभवरस झरती धारा प्रवाहित कर, वैशाख शुक्ल नवमीं के दिन श्री जिनेन्द्र पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठामहोत्सव के निमित्त लाठी की ओर विहार करते हैं और ज्येष्ठ कृष्ण षष्ठी के दिन लाठी में मंगल पदार्पण करते हैं। प्रतिष्ठामण्डप 'मुक्तिनगर' में विधि-अध्यक्ष महावीरप्रभु को विराजमान करके, ज्येष्ठ कृष्ण एकादशी से 'समवसरण विधान पूजा' द्वारा महोत्सव की उत्साह भरी शुरुआत होती है। विधिनायक श्री शान्तिनाथ भगवान हैं, जबकि मूलनायक श्री सीमन्धरप्रभु हैं। महोत्सव के दौरान प्रवचनसार की गाथा 194 पर प्रवचन होते हैं और दीक्षाकल्याणक प्रसंग में तो वैराग्य की बाढ़ आती है। अन्तर का वैराग्य गुरुवाणी में उछल जाता है और उसमें श्रोता सराबोर हो जाते हैं।

'अहो! एक चिदानन्दी भगवान आत्मा के अतिरिक्त अन्य किसी भाव को मन-मन्दिर में नहीं लाऊँ। एक चैतन्यदेव को ही ध्येयरूप बनाकर, उसके ध्यान की लीनता से आनन्दकन्द स्वभाव की रमणता में मैं कब पूर्ण होऊँ? अकेले चैतन्यस्वभाव का ही आश्रय करके केवलज्ञान प्रगट करना वह तीर्थङ्करों के कुल की टेक है। अनन्त तीर्थङ्कर जिस पंथ में विचरे उसी पंथ में चलनेवाले हम हैं। मैं चिदानन्दनिधि हूँ और समस्त संसार अनित्य है। मेरा आनन्दकन्द स्वभाव ही मुझे शरण है; जगत में अन्य कोई शरण नहीं। — ऐसी भावना भाकर तीर्थङ्कर भगवान जब दीक्षा लेते होंगे, वह काल और प्रसंग कैसा होगा?'

ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी। श्रुतपंचमी के पवित्र पर्व पर, गुरुवर्य महा-निर्मलभाव से मंगलमय जिनबिम्ब प्रतिष्ठा करते हैं। इस प्रतिष्ठामहोत्सव में एक ओर जिनभक्ति उछलती थी तो दूसरी ओर गुरुदेवश्री के प्रवचनों में अध्यात्म का शान्तरस बहता था। इस प्रकार भक्ति और अध्यात्म का अद्भुत सुमेल हुआ था। गुरुवर के पुनीत प्रताप से और बलवान प्रभावनायोग से हजारों वर्ष के बाद फिर से सौराष्ट्र में जिनशासन की स्थापना हो रही है, जैनधर्म का ध्वज उन्नतरूप से लहरा रहा है। भक्त भावना भाते हैं : गुरुवर्य के मंगल कर-कमलों से ऐसे उत्तम कार्य हजारों बार हों और जिनेन्द्र धर्मचक्र सर्वत्र सर्वदा सर्वथा प्रवर्तो।

प्रतिष्ठामहोत्सव पूर्ण करके, ज्येष्ठ शुक्ल नवमीं के दिन स्वरूपविहारी गुरुदेवश्री लाठी से प्रस्थान करते हैं और ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा के दिन लगभग सवा चार महीने का

सौराष्ट्र विहार करके पुनः स्वर्णपुरी पधारते हैं। यहाँ पधारकर समयसारजी के सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार और प्रवचनसारजी के ज्ञेयतत्त्व-प्रज्ञापन अधिकार पर प्रवचन प्रदान करके अध्यात्म वर्षा बरसाते हैं।

सभी जीव सही तत्त्व समझकर सुखी हों — ऐसी करुणा गुरुवर के हृदय में उछलती थी; इसलिए यह विहार हुआ है। भिन्न-भिन्न गाँव, जाति, रीति-रिवाजवाले जीवों को एक सूत्र में बाँधना कठिन है, तथापि विहार के दौरान चमत्कारी और अतिशयतावाली वाणी से यह कार्य सहजरूप से हो गया — सभी तत्त्व अभ्यास में लग गये।

इस प्रकार जिस वर्ष में वींछीया और लाठी में वीतरागमार्ग प्रभावक पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठाएँ हुईं, वह विक्रम संवत् 2005 का वर्ष पूर्ण होता है।

कल्याणमूर्ति सद्गुरुदेवश्री का प्रभावना उदय जगत का कल्याण करो!

★ ★ ★

विक्रम संवत् 2006 (सन् 1949-50)

सौराष्ट्र का विक्रमी विहार वर्ष

जिनके अनुपम, अद्‌भुत, अकथ्य, अनन्य, अलौकिक, अद्वितीय, अजोड़, अनहद, अपार, अमाप, अपरिमित, अनन्त उपकार, भक्तों के हृदय में सदैव उत्कीर्ण हैं — ऐसे गुरुदेवश्री के सानिध्य में स्वर्णपुरी में निवास करनेवाले जीवों का जीवन समस्त जगत से अलिप्त / निराला है। मानो वे कोई अलग ही दुनिया में बसते हों — ऐसा उन्हें लगता है। अरे! बाहर गाँव से आये हुए जिज्ञासु भी यहाँ आकर भावविभोर हो जाते हैं और वापस जाने का मन नहीं होता, क्योंकि प्रेरणामूर्ति गुरुराज की उपस्थिति से प्रत्येक पर्व-प्रसङ्ग-उत्सव भावना से मनाये जाते हैं। इस वर्ष कार्तिक माह की अष्टाह्निका भी भक्तिभावसहित मनायी जाती है। वह पूर्ण होने के बाद, राजकोट के नवीन जिनमन्दिर में श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों को पञ्च कल्याणकपूर्वक विराजमान करने का प्रतिष्ठा महोत्सव होने से, गत वर्ष की तरह पुनः, जिनधर्म का विजय डंका बजाता हुआ विहार होता है।

मार्गशीर्ष कृष्ण त्रयोदशी के दिन स्वर्णपुरी से प्रस्थान करके, उमराला, बोटाद, राणपुर, चूड़ा होकर, पौष शुक्ल चतुर्थी के दिन लींबड़ी पधारते हैं। यहाँ दूसरे दिन अर्थात् पंचमी के दिन शनिवार को सबेरे एक स्वप्न आता है, जिसमें गुरुदेवश्री अपने छोटे भाई मगनभाई को देवरूप में देखते हैं और कहते हैं : 'मैं तीर्थङ्कर होनेवाला हूँ।' यह सुनकर मगनभाई का जीव, जो कि देव है वह, कहता है : 'हमें पता लग गया है।' वाह! कैसा मङ्गल सूचक स्वप्न! यहाँ 'पद्मनन्दिपञ्चविंशति' के एकत्व अधिकार पर प्रवचन होता है।

बरवाला के एक भाई प्रश्न करते हैं : 'आत्मा विभु है इसलिए सर्व व्यापक है न?' गुरुराज उत्तर देते हैं : 'भाई! ऐसा नहीं है। आत्मा तो अपनी अनन्त शक्ति में व्यापक है इसलिए विभु है।' ख्याल आया न! कि शास्त्र के मात्र शब्द पकड़ने से वास्तविक मर्म समझ में नहीं आयेगा। इसके लिए अनुभवी सत्पुरुष ही चाहिए।

लींबड़ी से पद-विहार करते-करते वढ़वाण, जोरावरनगर, सुरेन्द्रनगर, मोरबी

होकर, फाल्गुन कृष्ण तृतीया के दिन श्रीमद् राजचन्द्र जन्मधाम ववाणिया में पधारते हैं। यहाँ 'श्रीमद् राजचन्द्र जन्मस्थान भवन' में 'अनेकान्तिक मार्ग भी सम्यक् एकान्त ऐसे निजपद की प्राप्ति कराने के अतिरिक्त अन्य किसी हेतु से उपकारी नहीं।' — इस कृपालुदेव के वाक्य पर मर्म उद्घाटक अद्भुत प्रवचन होता है, जो बाद में 'अनेकान्त का रहस्य' इस नाम से पुस्तकरूप में प्रसिद्ध होता है। यह प्रवचन सुनकर वनेचन्दभाई सेठ कहते है : 'श्रीमद्जी को समझना हो तो यहाँ अर्थात् गुरुदेवश्री के पास आना पड़ेगा।' वास्तविक सत्य बात तो ऐसी ही है न! कि ज्ञानी के गहरे-गम्भीर भावों को ज्ञानी ही जान सकते हैं।

ववाणिया से पुनः मोरबी में आगमन होता है। यहाँ रतनलालजी नामक एक स्थानकवासी साधु कहते हैं : 'तुम्हारे शास्त्र में - प्रवचनसार में ऐसा कहा है कि गृहस्थ को शुभराग से परम्परा मोक्ष होता है।' चैतन्यस्पर्शी अनुभव वाणी के दाता गुरुराज समाधान कराते हैं : 'भाई! अशुभराग से बचने-उसे टालने-के लिए शुभराग आता है, परन्तु फिर उस शुभराग को भी टालेगा तब मोक्ष होगा; इसलिए शुभराग को परम्परा मोक्ष का कारण कहा है।' शास्त्र का रहस्य तो अनुभवी पुरुष के समीप ही समझना पड़ेगा। सही है न?

इस विहार के दौरान जगह-जगह — गाँव-गाँव में गुरुवर के भव्य स्वागत होते हैं और भक्त मुमुक्षु, जिज्ञासु, जैन-जैनेतर भी गुरुवाणी सुनने के लिए उमड़ पड़ते हैं। गुरुवर्य अनुपम रहस्य झरती अमृतवाणी बहाते हुए बहुत बार फरमाते हैं :

1. हे जीव! तू अनादि से मिथ्याबुद्धि की गोद में सो रहा है, अब तो गुलांट मार!
2. आचार्यदेव तेरे प्रभुत्व की महिमा गाकर तुझे जागृत करते हैं, तो तू 'ना' कहे — ऐसा नहीं चलेगा।
3. सिद्ध होने के लिए सिद्धस्वरूप का स्वीकार करो।
4. जहाँ लाभबुद्धि हो, वहाँ एकताबुद्धि होती ही है और जहाँ एकताबुद्धि हो, वहाँ एकाग्रता हुए बिना रहती ही नहीं।
5. प्रत्येक परिणाम अपने-अपने अवसर में द्रव्य में से प्रगट होता है।

6. यदि तुझे 'मैं सर्वज्ञस्वरूप हूँ' — ऐसा विश्वास नहीं है, तो सर्वज्ञ की बात अन्तर में नहीं बैठेगी।
7. निज परमात्मा को पामर मानना वह कितना बड़ा दोष है इसका पता है?
8. जीव, तत्त्वज्ञान के अभाव में उलझते हैं अथवा विपरीतमार्ग में फँसते हैं, परन्तु यदि शास्त्र-अभ्यास करें, तत्त्वविचार करें तथा सत्य-निर्णय करें तो सच्ची समझ पायें और कल्याण के पंथ में विचरण करें।
9. सबको जानना वही तेरा पूर्णरूप है।
10. ज्ञानी, शुभभाव छोड़कर अशुभभाव में जाने का नहीं कहते, परन्तु शुभभाव में धर्म मानने से मना करते हैं।

मोरबी से बाँकानेर होकर, फाल्गुन शुक्ल एकम दिनाङ्क 17-2-1950 के दिन गुरुदेवश्री राजकोट पधारते हैं। भक्त भव्य स्वागत करते हैं। अद्‌भुत-अचिन्त्य गुरुवर्य ज्ञानरस में सराबोर होकर समयसार के कर्ता-कर्म अधिकार पर प्रवचनधारा बहाते हैं।

यहाँ मूलशंकरभाई प्रश्न करते हैं : 'जीव राग करता है तो कर्म बँधते हैं न? और राग न करे तो नहीं बँधते न? क्या कर्म अपने आप बँधते हैं?' जिनके चैतन्य प्रदेश-प्रदेश में श्रुतज्ञान के दीपक प्रकाशित हो रहे हैं ऐसे गुरुदेवश्री समाधान कराते हैं : 'भाई! पुद्‌गल की कर्मरूप होने की योग्यता हो तो कर्म बँधते हैं; जीव के राग के कारण वे नहीं बँधते। तथा जीव राग न करे तो कर्म न बँधे — यह प्रश्न ही नहीं है, क्योंकि जब कर्म बँधते हैं तब राग निमित्तरूप होता ही है। यहाँ तो जिस समय राग है उस समय की बात है कि राग से कर्म नहीं बँधे, परन्तु स्वयं-अपने आप बँधे हैं और यदि राग न हो तो पुद्‌गल में भी कर्मरूप परिणमित होने की योग्यता नहीं होती।'

एक बार गुरुराज कहते हैं : 'हमारे (अर्थात् हमें) दर्शनशुद्धि है, परन्तु प्रतिमा या चारित्र नहीं।' सत्य का स्वीकार करने में उलझन क्यों?

राजकोट में गुरुदेवश्री के आगमन के दिन ही विधि-मण्डप में विधि-अध्यक्ष प्रभुजी को विराजमान करके प्रतिष्ठा महोत्सव का मङ्गल प्रारम्भ किया जाता है। फाल्गुन

शुक्ल तृतीया से षष्ठी तक 'नन्दीश्वर विधान पूजा' होती है। प्रतिष्ठा का तथा गुरुवाणी का लाभ लेने पाँच से छह हजार तत्त्वप्रेमी जीव उमड़ पड़ते हैं। अजमेर की भजनमण्डली भी भक्तिभाव दर्शाने के लिए प्रथम बार सौराष्ट्र में आती है। प्रतिष्ठा में विधिनायक श्री चन्द्रप्रभ भगवान हैं और जिनमन्दिर में मूलनायक श्री सीमन्धरभगवान विराजमान होनेवाले हैं। इस पावन प्रतिष्ठा में अजमेर, इन्दौर, उज्जैन, मुम्बई, पोरबन्दर, राणपुर, सुरेन्द्रनगर इत्यादि नगरों के कुल 39 जिन प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित होने के लिए पधारती हैं। फाल्गुन शुक्ल द्वादशी के पवित्र दिन 65 फुट उन्नत जिनमन्दिर में विदेहीनाथ और अन्य जिनभगवन्तों का आनन्दकारी पदार्पण होता है तथा प्रवचनसारजी की गाथाएँ चाँदी के पत्रों में उत्कीर्ण कर विराजमान की जाती हैं।

इस आश्चर्यकारी भव्यमहोत्सव से विस्मित प्रतिष्ठाचार्य पण्डित मुन्नालालजी कहते हैं : 'आपश्री जैसा प्रभावशाली पुरुष बहुत वर्षों में हुआ हो — ऐसा मेरे ख्याल में नहीं है। लोग पूछते हैं कि आत्मा का भान और ध्यान कैसे हो ? मैं उन्हें दृढ़तापूर्वक कहता हूँ कि यदि आत्मा का ज्ञान और ध्यान करना हो तो तुम्हारा मुख सोनगढ़ की ओर फेरना पड़ेगा।' वे हर्ष में आकर नानालालभाई जसाणी को कहते हैं : 'तुम्हारा आठ भव में मोक्ष होगा — यह बात निश्चित है।' तत्त्व-अभ्यासी नानालालभाई उत्तर देते हैं : 'हमारे महाराज (अर्थात् गुरुदेवश्री) ऐसा नहीं कहते।' इस प्रतिष्ठा महोत्सव की फिल्म बनायी जाती है।

वैशाख कृष्ण पञ्चमी। श्रीमद् राजचन्द्रजी के समाधि दिन पर विशिष्ट प्रवचन होता है और उसके प्रारम्भिक भाग की ग्रामोफोन रेकॉर्ड भी बनायी जाती है।

कल्याणकारी प्रतिष्ठा के पश्चात् भक्तों के सर्वस्व गुरुदेवश्री का 61 वाँ जन्म-जयन्ती महोत्सव भी गत वर्ष की तरह यहीं मनाया जाता है।

वैशाख शुक्ल दूज। आज भक्तों के हृदय आनन्द से नाच उठे हैं, गुरुभक्ति का उल्लास उछल रहा है और भावभरी भावना का प्रपात बहता है : हे लोकोत्तर महापुरुष! आज का दिन हमारे लिए महा मङ्गलकारी है, क्योंकि आज से साठ वर्ष पहले इस भरतभूमि में पधारकर आपश्री ने हमें जगाया है; आत्मप्राप्ति का अप्रतिहत मार्ग दर्शाकर निहाल किया है। हे सर्वस्व उपकारी! आपश्री के उपकारों का वर्णन कैसे करें ? आपश्री

के अनुपम-अपूर्व-अनन्त उपकार कभी भी स्मरणपट में से हटते नहीं। आपश्री के पवित्र योग से श्री कुन्दकुन्दाचार्य के अक्षरदेहस्वरूप समयसार, मानो कि चैतन्यवन्त होकर शुद्धात्मा के दर्शन कराता है। अहो! स्वरूपजीवन जीनेवाले आपश्री तो हमारे आदर्श हो। आपश्री के ज्ञान-वैराग्य से उछलते हुए चैतन्यजीवन का वर्णन कौन कर सकता है ? शास्त्र में वर्णित आत्मसाधना की आपश्री साक्षात् मूर्ति हो। आपश्री की वाणी अध्यात्म-अमृत सरिता है, जो अनेक आत्मार्थियों को आत्मजीवन अर्पित करती है।

जैसे बहुत वर्षों के दुष्काल के पश्चात् शीतल वर्षा होवे तो तृषातुर जीवों को कैसा आनन्द होता है ? इसी प्रकार अनादि से स्वानुभूति के सुधापान बिना भव-भव व्यतीत हो गये, परन्तु जन्म-मरणरूप संसार के ताप में कहीं शान्ति नहीं मिली। हमारा जीवन सूखने लगा था, पीड़ा असह्य हो गयी थी और सुखवेदन की छटपटी तीव्रता को प्राप्त हो रही थी। तब... उस समय... हे अनेकविध उपकारमेरु! आपश्री ने स्वरूपसाधना के अमृतमेघ बरसा कर हमें तृप्त किया है — कर रहे हो। आपश्री की वाणी में भी यदि आत्मतेज झलकता है तो आपश्री के अन्तरंग परिणमन में क्या नहीं होगा ? इस काल में, इस क्षेत्र में दिव्यध्वनि के पावन सन्देश प्रदाता आपश्री एक ही हो। संसार से थके हुए जीवों के विश्रामस्थान आपश्री एक ही हो। आपश्री के पुनीत प्रताप से आज जिनशासन की जयकार वर्त रही है। हे गुणभण्डार गुरुवर! हम जैसे पामर जीव हमारी तुच्छ वाणी और अल्पज्ञान द्वारा आपश्री की स्तुति-स्तवना कैसे कर सकें ? बस, आपश्री के आत्मार्थ प्रेरक-पोषक पवित्र गुण नजर में चढ़ने से हृदय में भक्ति-उल्लास उछले बिना नहीं रहता और इसलिए आपश्री के चरणकमल में भावांजलि अर्पण करते हैं।

आत्मोन्नति का सुमधुर मार्ग दर्शाकर स्वरूपसम्पत्ति का अपूर्व दान देनेवाले दिव्य दानेश्वरी गुरुदेवश्री को परम भक्ति से बारम्बार नमस्कार....।

आनन्दकारी जन्म महोत्सव पूर्ण होने पर भक्तों के प्रिय गुरुदेवश्री राजकोट से विहार करके महिका, गढ़का, वींछीया इत्यादि गाँव होकर लाठी पधारते हैं। यहाँ प्रवचनसारजी की गाथा 271 से 273 पर प्रवचन होते हैं। श्रुतपञ्चमी के मङ्गल दिन जिनमन्दिर का प्रथम वार्षिकोत्सव मनाया जाता है। यहाँ से गुरुवर्य अमरेली को पावन करते हैं।

ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी के सोमवार को अमरेली में इस प्रकार का स्वप्न आता है : गुरुराज वीतराग प्रभुजी की प्रतिमा के सन्मुख बैठकर ध्यान धरते हैं और उसमें एकाग्रता की धुन बहुत जमती है। अहो! अन्तर्मुखता की तीव्र भावना हो तो स्वप्न भी ऐसे ही आते हैं न!

अमरेली से प्रस्थान करके भेदज्ञानविभूषित गुरुदेवश्री सावरकुण्डला पधारते हैं, जहाँ समयसारजी की 49 वीं गाथा पर प्रवचन होते हैं।

विहार के दौरान ज्ञानसागर गुरुदेवश्री गाँव-गाँव में भगवती वाणी द्वारा ज्ञानगंगा का पवित्र प्रवाह व्याख्यान तथा तत्त्वचर्चाओं के माध्यम से बहाते हैं। जिसमें पात्र जीव डुबकी लगाकर तत्त्वबोध से पावन होते हैं; इसलिए उन्हें वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु के प्रति बहुमान-भक्ति प्रगट होती है। फलस्वरूप नये-नये जिनमन्दिर बनाने की, उनमें जिनबिम्ब विराजमान करने की भावना जागृत होती है। इस प्रकार सौराष्ट्रभर में जिनशासन का जयनाद गूँज रहा है।

कुण्डला से विहार करते-करते पाँच पाण्डवों की ध्यानभूमि और तीन पाण्डव तथा आठ करोड़ मुनिश्वरों की निर्वाणभूमि शत्रुञ्जय की दूसरी बार की यात्रा को अति अल्प संसारी गुरुराज पधारते हैं। प्रथम आषाढ़ शुक्ल चतुर्थी के दिन 800 यात्रियों सहित मङ्गल यात्रा होती है। पर्वत पर भक्ति की धारा बहती है :

केवा हशे मुनिराज, अहो एने वंदन लाख...
केवा हशे पांडव मुनिराज, अहो एने वंदन लाख...
केवा हशे कोटि मुनिराज, अहो एने वंदन लाख...

राज-पाट त्यागी वसे, अघोर जंगलमां,....... (2)
जेणे छोडयो स्नेहीओनो साथ, अहो एने वंदन लाख...

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रना ए धारक,...... (2)
करे कर्मो ने बाळी ने खाख, अहो एने वंदन लाख...

प्रमत्त-अप्रमत्त स्वरूपमां ए झूलतां,...... (2)

वसे ए स्वरूप आवास, अहो एने वंदन लाख...
धन्य ते देशने ज्यां टोळेटोळां मुनिराजना,...... (2)
दर्शन करतां जाय भवाताप, अहो एने वंदन लाख...

पालीताना शहर के जिनमन्दिर में भी पञ्चमी के दिन भक्तिभाव उछलता है। व्याख्यान में समयसार गाथा 206 पर प्रवचन होता है।

यहाँ एक प्रसिद्ध श्वेताम्बर आचार्य कहते हैं : 'अनन्त उपकारी त्रिलोकनाथ तीर्थङ्कर भगवान ऐसा कहते हैं कि कर्म के कारण जीव भटकता है; कर्म से विकार होता है।' उत्तर : 'जीव अपनी भूल से – अपने अपराध से – भटकता है; वह कर्म के कारण भटकता है — ऐसा बिल्कुल नहीं है।'

दूसरे दिन अर्थात् प्रथम आषाढ़ शुक्ल षष्ठी को लगभग सवा सात महीने का जिनशासन प्रभावक धर्मोद्योतकारी सौराष्ट्रविहार करके अपूर्व गुणधारी गुरुदेवश्री पुनः स्वर्णपुरी को पावन करते हैं। विचारो तो सही! मात्र सौराष्ट्र में ही इतना लम्बा विहार!

यह धर्मप्रभावक विहार पूर्ण हुआ इस सम्बन्ध में, स्वयं की विशिष्ट शैली में, पूज्य सोगानीजी बतलाते हैं : 'पूज्यश्री गुरुदेव के मुमुक्षुगण सहित राजकोट के विहार कार्य की सुन्दर धर्मप्रभावनापूर्वक पूर्णता हुई यह जानकर इस बात की प्रतीति होती है कि मानो नेतासहित समग्र संघ का निश्चय प्रभावनारूपी कार्य भी शीघ्र और निर्विघ्नरूप से पूर्ण होनेवाला है। आपश्री का निश्चित स्थान ऐसे सोनगढ़ में आगमन इस बात का द्योतक है कि मानो हम सभी की परिणति का त्रिलोकरूपी राजकोट के विहाररूपी भ्रमण समाप्त होकर, निश्चित अविनाशी स्वस्थान ऐसे अमृतमय चैतन्यलोक आत्मगढ़ में आगमन हो रहा है।'

लाख लाख वार गुरुराजना वधामणां,
अंतरीयुं हर्षे उभराय, आज मारे धन्य वधामणां...

मोतीनो थाल भरी गुरुराजने वधावीए,
माणेक मोतीना स्वस्तिक रचावीये, आनंदथी लईए वधाई... आज मारे....

मुक्तिनां द्वार गुरुराजे उघाडियां,
वीतराग स्वरूपना स्थापन करावियां, जयकार जगते गवाय... आज मारे....
सुवर्णपुरे सुवर्ण गुरुवर पधारिया,
सुवर्णमय भूमिना रंगो रंगाईया, सुवर्ण दृश्यो देखाय... आज मारे....
गुरुजी पधारीया सेवक आंगणीये,
शी शी करूँ वधामणीनी वातडी, रोम रोम हर्ष उभराय... आज मारे....
मीठां मीठां गीत गुरुजीनां गजावीये,
सेवा भक्तिनी धून मचावीये, चरणोमां रहीये सदाय.... आज मारे....

प्रथम आषाढ़ शुक्ल अष्टमी : भरतक्षेत्र में सत्‌धर्मवृद्धि करनेवाले भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के दो महान परमागम श्री समयसारजी और श्री प्रवचनसारजी के प्रवचनों का प्रारम्भ आज एक साथ होता है। एक ही दिन प्रात: ज्ञानप्रधान प्रवचनसार के भाव तथा दोपहर को दृष्टिप्रधान समयसार के भाव सुनने को मिलते हैं यह महाभाग्य है। श्री समयसारजी पर यह नौवीं बार के जाहिर प्रवचन हैं।

कुरावली के एक तत्त्वप्रेमी भाई ज्ञानावतारी गुरुवर के प्रवचनों की पुस्तक 'वस्तुविज्ञानसार' और 'मूल में भूल' पढ़कर, उल्लास में आकर, जिनके दर्शन और वाणी मिलना दुर्लभ है — ऐसे गुरुदेवश्री के प्रति उपकार भावना एक काव्य द्वारा व्यक्त करते हैं।

समझ उर धर, कहत गुरुवर, आत्मचिन्तन की घड़ी है.....

श्रावण कृष्ण एकम : वीरशासन जयन्ती के मङ्गल दिन समयसार कलश दो पर प्रवचन में गुरुवर्य फरमाते हैं : 'वस्तु में तीन काल की अवस्थाएँ क्रमबद्ध ही होती हैं; कोई अवस्था आगे-पीछे नहीं होती — ऐसा ही वस्तुस्वभाव है। क्रमबद्धपर्याय में पुरुषार्थ इत्यादि का क्रम भी साथ ही है। इसलिए क्रमबद्धपर्याय की प्रतीति में पुरुषार्थ इत्यादि की प्रतीति भी आ ही जाती है; पुरुषार्थ कहीं क्रमबद्धपर्याय से अलग नहीं रह जाता। इस कारण नियत के निर्णय में पुरुषार्थ उड़ नहीं जाता, परन्तु साथ ही आ जाता है। जो जीव वस्तु की पर्यायों को नियत-क्रमबद्ध होता न माने अथवा तो क्रमबद्धपर्याय के निर्णय में

विद्यमान सम्यक् पुरुषार्थ को न माने, उसे अनेकान्तमय वस्तुस्वभाव का पता नहीं है, वह मिथ्यादृष्टि है।'

रात्रि तत्त्वचर्चा के दौरान भी दृढ़ता से कहते हैं : 'वास्तव में तो क्रमबद्धपर्याय का और सर्वज्ञ का निर्णय हुए बिना सम्यक् पुरुषार्थ होता ही नहीं। जिसे सर्वज्ञ का तथा क्रमबद्धपर्याय का निर्णय नहीं और फेरफार करने की बुद्धि है, उसका पुरुषार्थ मिथ्यात्व और राग-द्वेष में ही अटका हुआ है; उसे ज्ञानस्वभाव की सन्मुखता का यथार्थ पुरुषार्थ नहीं होता।' वाह ! इस काल में पुरुषार्थमूर्ति पूज्य गुरुदेवश्री ने क्रमबद्धपर्याय का शंखनाद फूँक कर—सिंहनाद करके, पुरुषार्थ के बहाने राग के कर्तृत्व का ही पोषण करने का जो मोहराजा का कपटजाल था, उसे छिन्न-भिन्न करके तोड़ डाला है और पात्र जीवों को सच्चा पुरुषार्थी बनाया हैं।

हे अध्यात्मविद्या के दाता ! हम पामर जीव पुरुषार्थ के नाम पर विकल्प के कर्तृत्व में ऐसे ठगा गये थे कि कभी भी सम्यक् पुरुषार्थ का मार्ग ही नहीं पाया। ऐसे हम जीवों को आपश्री ने समझाया कि प्रत्येक पर्याय स्वकाल में स्वतन्त्र परिणमित होती है और यही क्रमबद्ध है। ऐसा निर्णय जो करता है वह राग का अकर्ता होता है और ऐसा अकर्तापना प्रगट होना ही सच्चा पुरुषार्थ है। अहो ! ऐसा विशुद्ध सत्य यदि आपश्री ने नहीं समझाया होता तो हम मुमुक्षु, पुरुषार्थ के नाम से कर्ताबुद्धि-कर्तापने का ही पोषण करते होते न ?

भक्तों में आत्मार्थिता जगानेवाले हे अध्यात्मयोगी ! जैसे-जैसे क्रमबद्धपर्याय के सिद्धान्त की गहनता भासित होती है, वैसे-वैसे अकर्तापने का — ज्ञाता-दृष्टापने का भावभासन होता है। इस क्रमबद्धपर्याय के सिद्धान्त से परद्रव्य का कर्तृत्व तो कहीं दूर रहा; विकल्प के करने का कोलाहल भी विराम पाता है और अकर्ता ज्ञायकप्रभु की महिमा आती है। क्रमबद्धपर्याय कोई सामान्य सिद्धान्त नहीं है, अपितु गहन सिद्धान्त है। तथापि हमें विश्वास है कि आत्मा के ही कामी — आत्मार्थी होकर इस महान सिद्धान्त का विचार करेंगे तो अन्तर में बैठे बिना रहेगा ही नहीं।

ऐसा अलौकिक सिद्धान्त इतनी सरलता से समझानेवाले इस तीर्थङ्करद्रव्य का जितना उपकार मानें, जितनी महिमा करें, उतनी कम है।

अध्यात्मकेसरी सिंह गुरुदेवश्री के जिनशासन प्रभावक विहारों से तथा 'आत्मधर्म' के प्रकाशन से चारों तरफ से स्वाध्याय-अभ्यास के लिए शास्त्रों की अधिक से अधिक माँग आने लगती है। जिसके परिणामस्वरूप विक्रम संवत् 2001 में स्थापित 'भगवान श्री कुन्दकुन्द-कहान जैनशास्त्रमाला' के 51 पुष्प, अति अल्प समय में प्रसिद्ध तथा तैयार हो चुके हैं तथा और भी प्रसिद्ध होते रहते हैं।

दुर्लभ मानवजीवन पाकर जिसे आत्मकल्याण की किंचित् जिज्ञासा जगी है, उस पात्र जीव का सर्व प्रथम कर्तव्य है : सत्पुरुष के प्रत्यक्ष समागम में उनकी वाणी का श्रवण करके तत्त्व का निर्णय करना। आत्मज्ञानी की वाणी के श्रवण का सद्भाग्य महादुर्लभ है, तथापि सत् जिज्ञासु जीवों के प्रबल पुण्योदय से वह वाणी वर्तमान में बरस रही है। यदि कदाचित् वह योग न बने तो भेदविज्ञानी की वाणी का अन्तर मंथन करना। संसाररूपी विष के लिए वह संजीवनी समान है। सत्पुरुष की सातिशय वाणी का घोलन सभी जीव करें इस हेतु से यह शास्त्र प्रकाशित किये जाते हैं।

भाद्रपद शुक्ल पञ्चमी : आज पर्यूषण पर्व के प्रारम्भ अवसर पर, स्वानुभव के अडिग जोर द्वारा तत्त्व का हार्द समझानेवाले गुरुराज के ज्ञानामृत पिलानेवाले अध्यात्म प्रवचनों का लाभ, गाँव-गाँव में निवास करनेवाले प्रत्येक जिज्ञासु मुमुक्षु को प्रतिदिन प्राप्त हो — ऐसे उत्तम हेतु से 'श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद' नामक हस्तलिखित दैनिक पत्रिका का प्रकाशन श्री अमृतभाई सेठ तथा श्री खीमचन्दभाई सेठ शुरु करते हैं। गुरुदेवश्री के प्रातः-दोपहर के प्रवचन, प्रवचन के समय झेलना, उन्हें व्यवस्थित लिपिबद्ध करना, फिर से स्टैन्सिल में लिखना, हाथ द्वारा मशीन चलाकर कॉपियाँ तैयार करना और गाँव-गाँव में पत्रिकाएँ रवाना करना — यह सब कार्य करने होते हैं। यह देखते ही, शास्त्र की बात को अन्तर के भाव के साथ मिलाकर कहनेवाले गुरुदेवश्री की वाणी के प्रसार की भावना कैसी प्रबल है; साथ ही साधर्मी वात्सल्य कैसा है — वह ज्ञात हो जाता है।

जिस दिव्यमूर्ति के मङ्गल दर्शन से और श्रुतधारा के रुचिसह श्रवण से चैतन्यनिधि प्रगट होती है — ऐसे गुरुवर्य के इस वर्ष के सौराष्ट्रप्रवास-विहार से हुई अद्वितीय अनुपम धर्मप्रभावना के कारण सम्पूर्ण ही सौराष्ट्र में — राजकोट, सुरेन्द्रनगर, वढ़वाण, वींछीया,

बोटाद, राणपुर, लाठी, कुण्डला, मोरबी, वांकानेर इत्यादि नगरों में... अरे! मुम्बई में भी पर्वाधिराज दशलक्षणी पर्यूषण पर्व आत्मसाधना और देव-शास्त्र-गुरु की भक्तिपूर्वक उल्लास-उमंग से मनाया जाता है।

अब तो किसी-किसी नगर में जिनमन्दिर बन गये हैं, कहीं-कहीं उनकी तैयारी चल रही है, किसी-किसी जगह स्वाध्याय मन्दिर तैयार हुआ है, तो फिर कहीं-कहीं चैत्यालयों में जिनप्रतिमाएँ विराजमान की गयी हैं। इन सभी स्थानों पर प्रतिदिन गुरुदेवश्री के भव-तापनाशक प्रवचन पढ़े जाते हैं, उन पर स्वाध्याय होता है। इस प्रकार अध्यात्म का प्रवाह अति वेगपूर्वक आगे बढ़ रहा है।

पुण्य के थोक बिना जिनका योग प्राप्त होना अशक्य है — ऐसे धर्मधुरन्धर गुरुदेवश्री की आत्मकल्याणी वाणी का प्रभावप्रकाश अब अफ्रीका देश में भी फैलता है। आषाढ़ कृष्ण चतुर्थी के दिन स्वाध्यायप्रेमी तत्त्वजिज्ञासु जीव नैरोबी में मुमुक्षु मण्डल की स्थापना करते हैं। थोड़े से मुमुक्षु एकत्रित होकर गुरुदेवश्री के प्रवचन, 'आत्मधर्म' आदि का वाँचन तो बहुत समय से करते थे, परन्तु अब व्यवस्थितरूप से मण्डल स्थापित होता है। प्रथम प्रत्येक रविवार और फिर शनिवार को भी स्वाध्याय शुरु होता है। श्रावण कृष्ण अष्टमी के दिन 'सरस्वती भण्डार' की स्थापना होती है और सोनगढ़ से सत्शास्त्र मँगाये जाते हैं। इस वर्ष के पर्यूषण पर्व भी मनाये जाते हैं, जिसमें वाँचन, भक्ति, प्रतिक्रमण इत्यादि कार्यक्रम होते हैं। आश्विन शुक्ल दशमी से तो प्रतिदिन स्वाध्याय शुरु किया जाता है। इस प्रकार अफ्रीका देश के जिज्ञासु भी गुरुवर की अध्यात्मक्रान्ति से अछूते नहीं रहते।

इस प्रकार, जिस वर्ष में लगभग सवा सात महीने के विहार से सौराष्ट्रभर में अद्भुत धर्मप्रभावना हुई, वह विक्रम संवत् 2006 का वर्ष पूर्णता को प्राप्त होता है।

जिनकी मुद्रा चैतन्यतेज से चमक रही है और वाणी आत्मिक शौर्य से उछल रही है — ऐसे गुरुवर के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन.....!

★ ★ ★

विक्रम संवत् 2007 (सन् 1950-51)

गुरुवाणी जीवन्त रखने के लिए रिकार्डिंग शुरु होने का वर्ष

वीतराग प्रभु के दर्शन और वीतराग वाणी का श्रवण — ये दोनों यदि कहीं मिलते हों तो, वे मिलते हैं जीवन्ततीर्थ स्वर्णपुरी में। जागृत तीर्थधाम भी सोनगढ़ है और शान्तिमय निवृत्तधाम भी सोनगढ़ है। यहाँ सीमन्धर आदि भगवन्तों के दर्शन तथा कहानगुरु की अनुभवरस से छलकती वाणी का प्रत्यक्ष श्रवण निरन्तर मिलता है, जिसका लाभ लेने दूर-दूर से पण्डित, त्यागी तथा जिज्ञासु निरन्तर आते हैं। अध्यात्मविद्या का केन्द्र यह तीर्थधाम अब तो जगत्प्रसिद्ध हो चुका है।

नूतन वर्ष के प्रारम्भ में सम्यग्दर्शन-ज्ञान सुप्रभातस्वरूप गुरुदेवश्री आशीर्वाद देते हैं : 'परम पारिणामिक स्वभावभाव की महिमा करना ही वास्तविक नूतन वर्ष है।'

स्वानुभवरस झरती साधना करनेवाले गुरुदेवश्री बहुत बार फरमाते हैं :

1. जिस द्रव्य की, जिस समय, जिस कार्यरूप परिणमित होने की योग्यता है; वह द्रव्य, उस समय, उसी कार्यरूप परिणमित होता है। वह कार्य उस समय से आगे या पीछे नहीं होता।
2. संयोग या स्वभाव के कारण राग-द्वेष नहीं होता; अज्ञान के कारण होता है।
3. एक समय में पूर्ण अखण्ड ज्ञान के लिए अर्थात् केवलज्ञान के लिए आत्मस्वभाव में उपयोग की अखण्डधारा चाहिए।
4. रागसहित ज्ञान स्थूल है; वह सूक्ष्म आत्मा को नहीं पकड़ सकता।
5. सर्वज्ञस्वभाव का स्वीकार करनेवाला स्वयं को रागमय नहीं मान सकता, क्योंकि जहाँ सर्वज्ञपना है वहाँ राग नहीं होता।
6. रे मूर्ख! क्षणिक देह के लिए अविनाशी आत्मा को मत भूल।
7. भाई! पर-रागादि तो तुझे काम नहीं आते, परन्तु कषाय की मन्दता से हुआ यह क्षयोपशमज्ञान भी अनुभव के लिए काम नहीं आता।

8. द्रव्यदृष्टि का अभ्यास परम कर्तव्य है।
9. जिसे जिसकी रुचि हो, उसकी भावना बारम्बार भाता है और भावना के अनुसार भवन (–परिणमन) हुए बिना रहता ही नहीं।
10. समय (–अवसर) मिला है तो समय में (–आत्मा में) सावधान हो।

वीतराग जिनधर्म पञ्चम काल के अन्त तक टिकनेवाला है। उसे टिकने में उत्कृष्ट निमित्तभूत गुरुवाणी, गुरुराज की ही आवाज में सदा बनी रहे — ऐसे पवित्र हेतु से चैतन्य का अभूतपूर्व रस और घोलन जगानेवाले गुरुदेवश्री के जिनवाणी रहस्ययुक्त अमृत प्रवचनों की रिकार्डिंग करने का ऐतिहासिक अद्‌भुत कार्य, आज — फाल्गुन कृष्ण सप्तमी को — प्रारम्भ होता है। सर्व प्रथम रिकार्ड होता है श्री प्रवचनसारजी गाथा 172 का प्रवचन।

स्वर्णपुरी में विदेहीनाथ जीवन्तस्वामी श्री सीमन्धरप्रभु आदि जिनेन्द्रों के पदार्पण के दस वर्ष पूर्ण होने से फाल्गुन कृष्ण नवमीं से फाल्गुन शुक्ल दूज — ऐसे आठ दिन 'अट्ठाई महोत्सव' मनाने का निर्णय लिया जाता है। इस महोत्सव में भाग लेने तथा जिनके मुखारविन्द से जिनधर्म / जिनवाणी का विशाल प्रवाह अखण्ड / अटूट धारा से बह रहा है — ऐसे गुरुराज की महिमा सुनकर, उनके दर्शन करने और वाणी सुनने के लिये, मूल लाडनू राजस्थान के और अभी कलकत्ता में रहनेवाले सेठ श्री वच्छराजजी गंगवाल परिवारसहित प्रथम बार सोनगढ़ आते हैं।

सुषुप्त चेतना को सहजरूप से तत्क्षण जागृत करनेवाले गुरुवर्य के प्रवचन सुनकर तथा सोनगढ़ में हुई धर्मप्रभावना देखकर वे प्रसन्न होते हैं। ज्ञानध्यानरत गुरुवर के मात्र चार दिन के प्रत्यक्ष परिचय से, गुरुवाणी की गर्जना से गुञ्जायमान स्वर्णपुरी के धार्मिक वातावरण से तथा धर्ममाता पूज्य बहिनश्री बेन के साधनामय जीवन से वे ऐसे प्रभावित होते हैं कि विशेष उल्लास आने से जिनमन्दिर के समीप ही विशाल भूखंड खरीदते हैं और एक लाख रुपये से भी अधिक खर्च करके बहिनों के लिए ब्रह्मचर्य आश्रम बनाने का स्वयं स्फूरित भाव जागृत होता है। अहो! अपरिमित आश्चर्यकारी अपूर्व महिमावन्त गुरुदेवश्री का कैसा धर्मप्रताप! कि अनजान मेहमान को गुरुदेवश्री के प्रथम ही दर्शन से ऐसा भाव जागृत हुआ!!

जिनका साक्षात्कार करने के लिए भक्तजनों को अन्तर में गहरी-गहरी अभिलाषा रहा करती थी, वे भक्तों के जीवन-आधार श्री सीमन्धरनाथ दस वर्ष पहले पधारे थे और वे मात्र स्वर्णधाम में ही नहीं, भक्तों के अन्तरधाम में — हृदय सिंहासन पर भी पधारे हैं। आज तो उन महा धर्मप्रवर्तक परमात्मा के पदचिह्नों पर शासन में अनेक विध मङ्गल वृद्धि हो रही है। वीतरागभाव का निमित्त ऐसी इस वीतराग प्रतिमा के दर्शन दस वर्ष पहले प्रथम बार किये, तब गुरुवर का आत्मा अन्तर से पुकार उठा था : 'वाह! प्रभु वाह! वाह! आपकी वीतराग मुद्रा! हे नाथ! आपके साक्षात् दर्शन का विरह है, परन्तु अब आपकी प्रतिमा-स्थापना के दर्शन करके सन्तोष मानेंगे और आराधना करेंगे।'

यहाँ विराजमान सीमन्धरप्रभु की ध्यानमय मुद्रा ऐसी अद्भुत है कि स्वरूप -लीन होने की पावन प्रेरणा देती है और मानो कि अभी ही दिव्यध्वनि खिरेगी — ऐसा भासित होता है। इन भगवन्तों के दर्शन करते समय मानो प्रभु के प्रत्यक्ष दर्शन करते हों ऐसा उल्लास जागृत होता है, वीतरागस्वरूप आत्मा का बहुमान आता है और वीतरागभाव प्राप्त करने की भावना पुष्ट होती है। दस वर्ष पहले पञ्च कल्याणक के प्रसंग ऐसे भावनापूर्ण मनाये गये थे कि मानो भगवान के कल्याणक वास्तव में सच्चे मनाते हों — ऐसे भाव तब उल्लसित हुए थे। अरे! दीक्षा कल्याणक के समय संयमभावना भानेवाले गुरुराज की वैराग्यभरी पावन मुखमुद्रा अभी भी भक्तों की दृष्टि के समक्ष तैरती है।

जिनमन्दिर के इस ग्यारहवें वार्षिक प्रतिष्ठा महोत्सव में ज्ञान-भक्ति की धुन जमती है। उत्कृष्ट-महान ऐसी धर्मप्रभावना के प्रणेता गुरुदेवश्री के प्रात:-दोपहर के प्रवचनों में गुरुमुख से ज्ञानसरिता बहती है और पूजन-भक्ति के समय जिनमन्दिर में भक्तिसरिता बहती है, जो भक्तों के हृदयसरोवर में जा मिलकर भक्तों को पावन करती है।

दीठी हो प्रभु दीठी जगगुरु तुज,
मूरति हो प्रभु मूरति मोहन बेलडीजी;
मीठी हो प्रभु मीठी ताहरी वाण,
लागे हो प्रभु लागे जेसी सेलडीजी....

★ ★ ★

प्यारा छो प्राण थकी व्हाला जिणंदजी,
जुओ छो शेनी वाट रे, प्रभु मारा पार उतारजो....
दर्शन-पूजन तारां भावे करीने,
जावे सेवक मुक्तिघाट रे.... प्रभु मारा पार उतारजो...

★ ★ ★

आवो आवो हे नेमस्वामी, मारा अंतरमां,
बालपणे थयां ब्रह्मचारी, तारक जगना नाथ,
गिरनार गिरिमां म्हाली प्रभुजी, कीधुं आतम काज.... आवो

इस प्रसंग पर अजमेर की भजन मण्डली प्रथम बार सोनगढ़ आती है। अन्त में विदाई के समय मण्डली के प्रधान डॉ. सौभाग्यमलजी गुरुदेव के समीप गद्गद् हो जाते हैं। गुरुदेवश्री भी कहते हैं : 'तुमने तो आकर अच्छी भक्ति की, ऐसी भक्ति इस जिन्दगी में देखी नहीं।'

फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा की रात्रि को तीर्थधाम सोनगढ़ की और दूसरे दिन रात्रि को राजकोट के पञ्च कल्याणक की फिल्म दिखायी जाती है।

वैशाख कृष्ण चतुर्दशी : आज एक मुमुक्षु मरणासन्न होने से उनकी अन्तिम घड़ी सुधारने तथा वैराग्य सम्बोधन के लिए, स्वानुभवसमृद्ध गुरुवर विशेषरूप से उनके पास आते हैं और कहते हैं : ''देखो भाई! 'मैं ज्ञायक हूँ' — ऐसा लक्ष रखना। इस देह की स्थिति तो अब पूर्ण होने की तैयारी में है। 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम' — इस मन्त्र का अन्तर में चिन्तवन करना।'' अहो! गुरुवर की करुणा तो देखो!

वैशाख शुक्ल दूज : आज के पवित्र दिन उजमबा को पुत्ररत्न प्राप्त हुआ था और भक्तों को भवोदधि तारणहार मिले थे। जिनकी आध्यात्मिक गंगोत्री में से निकली हुई ज्ञान-गंगा में स्नान करके जीव पवित्र बनते हैं वे गुरुदेवश्री, जन्म-मरणरहित होने का मार्ग दिखाने के लिये यहाँ जन्मे थे। ऐसे गुरुवर की जन्म-जयन्ती अर्थात् एक भावी तीर्थाधिनाथ के निर्मल गुण गाने का, आपश्री के उपकारों का स्मरण करने का और आपश्री के प्रति हृदय-भावनाएँ व्यक्त करने का सुअवसर। इस दिन के मङ्गल सुप्रभात में आपश्री के मंगल आशीर्वाद प्राप्त करके भक्त धन्यता का अनुभव करते हैं।

प्रत्यक्ष उपकारी के प्रति भक्ति का मधुर झरना आत्मार्थी के हृदय में सदा बहता ही है। यह निरन्तर प्रवाहित भक्तिझरना जन्म-जयन्ती आदि प्रसङ्ग पर सागर का रूप धारण करके उछलता है। ज्ञायक की अभिनव महिमा समझानेवाले हे गुरुवर! अनादि काल से अनन्त-अनन्त जीवों का काफिला बन्ध के मार्ग में चल रहा है। वे फिर बाह्य का कड़क चारित्र पालनेवाले दिगम्बर साधु हों या ग्यारह अंग नौ पूर्व का पाठी शास्त्रपाठी हों — सबकी दौड़ संसार की ओर ही है। इन सब में से कोई विरल जीव ही स्वसन्मुखता का अपूर्व पुरुषार्थ करके समकित प्राप्त करता है और मोक्षमार्ग में प्रयाण करता है, आत्मसाधक बनकर अध्यात्मपथ का पथिक बनता है। भले ही उसके पुरुषार्थ की गति मन्द हो, तो भी उसकी दिशा सच्ची है — मोक्ष की ओर है; इसलिए वह मोक्षमार्गी है। यदि सम्यग्दृष्टि का ऐसा माहात्म्य है तो जिन्होंने हम भक्तों को संसारसमुद्र तिरने का उपाय बतलाया है ऐसे परम उपकारी सम्यक् दृष्टि के धारक आपश्री के माहात्म्य की बात ही क्या करना? आपश्री की पवित्रता तो कोई अलौकिक है ही; पुण्य प्रभावनायोग भी निराला है। उसका पार कौन पा सकता है? इसलिए आज के उत्तम दिन आपश्री के प्रति हमें सर्वस्व न्योछावर करने की भावना जागृत हो यह स्वाभाविक ही है।

जिन्होंने अपने पुनीत प्रभाव-प्रताप द्वारा हमें मोक्षमार्ग में प्रेरित किया है — ऐसे त्रिकाल मङ्गलस्वरूप इस पवित्र आत्मा के चरणों में सिर झुक जाता है। हे हमारे हृदय के आराम! जीवन-आधार! आत्मकल्याण का पथ बतलानेवाले! हमारे अन्तर में से एक ही पुकार उठती है कि समस्त उपकार आपका ही है। बस, आज भावना भाते हैं कि :

भव्यजीवरूपी कमल को विकसित करनेवाले इस चैतन्यभानु की दिव्य किरणें झेंले....

अज्ञान अन्धकार को मिटानेवाले इस ज्ञानसूर्य के महा-तेज को प्राप्त करें....

मुक्तिमार्ग प्रकाशक इस अलौकिक दिव्य-भास्कर के उदित प्रकाश को पहचानें....

जैनशासनगगन के जगमगाते इस अपूर्व अरुण के अखण्ड प्रकाश को प्राप्त करें....

— ऐसी पवित्र भावनापूर्वक अपूर्व सहजानन्दवृत्ति के धारक गुरुवर का बासठवाँ जन्म महोत्सव मनाया जाता है।

धर्मधुरन्धर सन्त गुरुदेवश्री स्वयं भूतकाल के भव में महाविदेहक्षेत्र में थे इस वास्तविकता की ओर अव्यक्तरूप से संकेत करते हुए एक बार आनन्द से कहते हैं : 'हम तो पुराने दिगम्बर हैं।' यह सुनकर भक्तों को सानन्द आश्चर्य होता है।

ज्येष्ठ कृष्ण अमावस्या, सोमवार। रात्रि को स्वप्न आता है : पाँच से छह नग्न दिगम्बर द्रव्यलिंगी साधु ज्ञानसुधासिन्धु गुरुदेवश्री के पास आते हैं। उनकी भाषा कोई दूसरी होने से पूज्य गुरुदेवश्री कहते हैं : 'आपकी भाषा समझ में नहीं आती तथा हमारी बात आपको नहीं जँचेगी।' वे कहते हैं : 'नहीं, नहीं; आप सुनाओ; आपकी बात हमको जँचेगी — समझ में आयेगी।' गुरुदेवश्री कहते हैं : 'तो मैं कहता हूँ वह बात सुनो।' इसलिये वे बात सुनने के लिए प्रेम से बैठते हैं और गुरुवर कहते हैं : 'यह जीव अनन्त बार अन्तिम ग्रैवेयक तक जाकर आया, परन्तु आत्मभान बिना लाभ नहीं हुआ।' इत्यादि बात शान्ति से सुनाते हैं और साधु भी प्रेम से सुनते हैं। सत्य बात शान्ति-धीरज से कही जाये तो किसे नहीं रुचेगी? तथा 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायौ' — यह 'छहढाला' की बात याद आती है न?

अन्य एक रात्रि को स्वप्न आता है। उसमें ऐसा आता है कि अनहद-अदम्य पुरुषार्थ द्वारा उत्तम बोधिबीजप्राप्त गुरुवर स्थानकवासी साधु को कहते हैं — 'यह तुम्हारा साधुपना कुलिंग है।' किसी को रुचे या न रुचे, सत्य सदा सत्य ही रहता है।

भाद्रपद कृष्ण तृतीया : परमागम श्री प्रवचनसारजी पर अध्यात्मरस भरपूर प्रवचन पूर्ण होते हैं। इस शास्त्र के परिशिष्ट में समागत सैंतालीस नयों पर दो बार प्रवचन होते हैं, जो बाद में 'नयप्रज्ञापन' नाम से पुस्तकरूप से प्रकाशित होते हैं।

भाद्रपद कृष्ण पंचमी : परमागम श्री पंचास्तिकायसंग्रह पर प्रवचन प्रारम्भ होते हैं।

भाद्रपद कृष्ण द्वादशी से भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी तक श्री पद्मनन्दि आचार्यकृत, 'पद्मनन्दि पंचविंशति' के तेरहवें अधिकार 'श्री ऋषभजिनस्तोत्र' पर प्रवचन होते हैं।

भाद्रपद शुक्ल प्रतिपदा : निज भावना के निमित्त से श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने जिसकी रचना की है वह अध्यात्म जिनवाणी श्री नियमसारजी गुजरातीभाषा में — कि जिसका गुजराती भाषान्तर पण्डितश्री हिम्मतभाई शाह ने किया है वह — प्रथम बार

प्रकाशित होती है। इस प्रसङ्ग पर माङ्गलिकरूप में अध्यात्मधर्म प्रभावक गुरुदेवश्री उसके 297 वें श्लोक पर प्रवचन प्रदान करते हैं। इस शास्त्र का 212 वाँ श्लोक पढ़ते ही उल्लसित वीर्यवन्त गुरुवर को ऐसा भाव जागृत हुआ कि जिनके मुख में से परमागम झरता है — ऐसे इस शास्त्र के टीकाकार मुनिवर श्री पद्मप्रभमलधारिदेव तीर्थङ्कर होनेवाले लगते हैं।

इस वर्ष के पर्यूषण पर्व के दौरान स्वामी कार्तिकेय प्रणीत 'कार्तिकेयानुप्रेक्षा' में से दस धर्म पर प्रवचन होते हैं। पर्यूषण पर्व के अन्तिम दिन अर्थात् भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी को श्री नियमसारजी पर प्रवचनों का प्रारम्भ होता है।

इस प्रकार विक्रम संवत् 2007 का वर्ष पूर्णता को प्राप्त होता है।

परम उपकारी अपूर्व महिमावन्त गुरुदेव के चरणों में बारम्बार नमस्कार!

★ ★ ★

विक्रम संवत् 2008 (सन् 1951-52)

ब्रह्मचर्य आश्रम उद्‌घाटन तथा विद्यार्थीगृह प्रारम्भ वर्ष

जिसके जीवन का एक-एक पल आत्मार्थ के लिये व्यतीत होता है, एक-एक क्षण संसार को छेदता है और एक-एक घड़ी सिद्धपद के समीप ले जाती है, उसका जीवन धन्य है। ऐसा धन्य जीवन स्वानुभवमुद्रित गुरुवर कहान स्वर्णपुरी में जी रहे हैं। आपश्री की शीतल छाया में तथा स्वर्णधाम के अध्यात्ममय उपशान्त वातावरण में साधर्मी वात्सल्य के प्रवाहित मधुर झरने से मानो मुमुक्षुओं का एक परिवार बना है और वे तत्त्व-अभ्यास तथा भक्तिभावमय उल्लसित जीवन जीते हैं।

अध्यात्म और स्वानुभव से ओतप्रोत तथा श्रुतलब्धि के साथ खिरती गुरुवर्य की दिव्यध्वनि से समाज में एक युग परिवर्तन आया है। अचूक लक्ष्यभेदी रामबाण जैसी इस वाणी से अब मिथ्यात्व के पटल भिंदने लगे हैं। जो सत्य बहुत वर्षों से अन्धकार में डूबा हुआ था, वह गुरुराज की कल्याणबोधक वाणी द्वारा बाहर आता है और अनादि से चार गति में परिभ्रमण कर-करके दु:ख भोगते हुए जीवों को शाश्वत शान्ति-सुख किस प्रकार प्राप्त हो — उसके मार्ग का प्रकाशन करता है। आपश्री बहुत बार फरमाते हैं :

1. जिन दु:खों को सुनने से भी हृदय में कंपकपी उत्पन्न हो — ऐसे नरक के अनन्त दु:ख हे भाई! तूने अनन्त-अनन्त काल सहन किये, परन्तु सच्चा भान एक क्षण भी नहीं किया। अब, इस उत्तम मनुष्यजीवन में अनन्त काल के अनन्त दु:ख मिटाने का अवसर आया है। यदि अभी निज स्वरूप को जानने का सच्चा उपाय नहीं करेगा तो फिर से अनन्त काल भ्रमण करना पड़ेगा; इसलिए जागृत हो, आत्मभान कर ले!
2. श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने समयप्राभृतरूपी भेंट भव्यों को दी है, तो उस भेंट को स्वीकार करो, उसके बिना मुक्ति नहीं होगी।

3. ईश्वर, जगत का कर्ता नहीं; एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य का कर्ता नहीं; आत्मा, राग का कर्ता नहीं और वास्तव में द्रव्य भी पर्याय का कर्ता नहीं — ऐसा अकर्तापना कहनेवाला जैनशासन-जैनदर्शन ही महान दर्शन है।
4. बाह्य वैभव मिले उसकी अपेक्षा सत्य तत्त्व सुनने को मिले वह भाग्यशालीपना है।
5. 'श्रा' — स्वभाव की श्रद्धा (दर्शन); 'व' — स्व-पर का विवेक (ज्ञान) और 'क' — स्वरूप की रमणतारूप कार्य (चारित्र)। — यह तीन जिसे हुए हैं वह सच्चा श्रावक है।
6. द्रव्य भी निरपेक्ष और पर्याय भी निरपेक्ष। — यह जैनदर्शन का सारांश है।
7. जीवों ने दुनिया प्रसन्न हो और दुनिया को रुचे — ऐसा तो अनन्त बार किया है, परन्तु 'मैं आत्मा वास्तविकरूप से प्रसन्न कैसे होऊँ? मेरे आत्मा को वास्तव में क्या रुचता है?' इसका विचार भी कभी नहीं किया। अरे! दरकार ही कहाँ की है?
8. दर्शनशुद्धि बिना मात्र देहशुद्धि या आहारशुद्धि से आत्मसिद्धि नहीं होती।
9. नव तत्त्वों में, जीवतत्त्व का अवलम्बन हित का कारण है; अजीवतत्त्व का अवलम्बन अहित का कारण है; आस्रव-बन्धतत्त्व अहितरूप भाव हैं, और संवर-निर्जरा-मोक्षतत्त्व हितरूप भाव हैं।
10. आत्मा भूला तो भी भगवान है, क्योंकि भूल के समय भी भूल मिटाने की सामर्थ्यवाला है।
11. यदि जीव, स्वभाव की सामर्थ्य; विभाव की विपरीतता और जड़-पर का पृथक्पना-भिन्नता भलीभाँति पहचाने तो, स्वभाव के सन्मुख हो; विभाव से विमुख हो और जड़-पर से भिन्न-पृथक् हो।

माघ शुक्ल पंचमी, गुरुवार, बसन्त पंचमी। आज, गुरुदेवश्री के महान प्रभावना उदय के प्रताप से स्थापित और सेठश्री वच्छराजजी गंगवाल द्वारा निर्मित 'श्री गोगीदेवी दिगम्बर जैन श्राविका ब्रह्मचर्य आश्रम' का उद्घाटन होनेवाला है। इसलिए सुप्रभात में पूज्य बहिनश्री बेन जहाँ निवास करती हैं, उस 'कहान किरण' से गाजते-बाजते प्रभातफेरी

निकलती है। वह सम्पूर्ण ग्राम में घूमकर 'स्वाध्याय मन्दिर' आती है। यहाँ से, जिनकी मुद्रा में चैतन्यतेज झलकता है और वाणी में आत्मिकवीर्य उछलता है — ऐसे गुरुदेवश्री सहित समस्त संघ आश्रम में आता है। श्री वच्छराजजी सेठ आश्रम का उद्‌घाटन करते हैं। फिर आश्रम में बनाये गये शृंगारयुक्त भव्यमण्डप में गुरुवर मांगलिक सुनाते हैं और आशीष देते हैं : 'बोधिसमाधि को प्राप्त हो।'

श्री वच्छराजजी सेठ, ज्ञान-वैराग्यमय आदर्श जीवन जीनेवाले गुरुदेवश्री का उपकार व्यक्त करके, पूज्य बहिनश्री बेन का सम्मान करते हैं और आश्रम के संचालन के लिये 25000 रुपये की दानराशि घोषित करते हैं। तत्पश्चात् श्री नियमसारजी पर व्याख्यान में अनुभव के जोरवाली और हृदयभाव से भीगी हुई प्रवचनधारा बहती है। प्रवचन के पश्चात् सोनगढ़, वींछीया, लाठी, तथा राजकोट के पञ्च कल्याणक प्रसंग पर हुए अनुभवमूर्ति गुरुदेवश्री के प्रवचनों का संकलन 'पञ्च कल्याणक प्रवचन' नामक पुस्तकरूप से प्रसिद्ध होते हैं।

आज, आत्माभिमुख ध्येयलक्षी जीवन जीनेवाले गुरुवर के महा-पुनीत चरण तो आश्रम में पड़े ही; आपश्री के आनन्दकारी आहारदान का प्रसंग भी आश्रम की प्रणेता पूज्य बहिनश्री बेन के यहाँ आश्रम में होता है। यह भक्ति-उल्लास भरे भव्य प्रसंग को निरखते हुए भक्तों के हृदयपट में से अहो दानम्! महा दानम्! ऐसी पुकार उठती है।

आश्रम की उद्‌घाटन-विधि कराने के लिए कारकल से आये हुए शास्त्री, अध्यात्मक्रान्तिवीर गुरुदेवश्री के प्रवचन और तत्त्वचर्चा से बहुत प्रसन्न होते हैं; इसलिए गुरुवर से प्रार्थना करते हैं कि आपश्री मद्रास की ओर पधारें तो वहाँ ज्ञान का बहुत उद्योत हो।

इस उद्‌घाटन प्रसंग पर वच्छराजजी के प्रति पत्र में इन्दौर के सेठ सर हुकमचन्दजी लिखते हैं : हम आपको हार्दिक धन्यवाद देते हैं। आप व आपकी धर्मपत्नी द्वारा इस शुभ धार्मिक संस्था की स्थापना की गयी तथा सत्यधर्म के प्रवर्तक, आत्मकल्याण के हेतु जैनधर्म के अध्यात्मवाद के उपदेशक सद्‌गुरु श्री कानजीस्वामी पर आपने श्रद्धा कर सच्चे धर्म व सेवाभाव को समझ लिया व वैसी ही प्रवृत्ति में लगे हैं — यह जानकर जो हमें खुशी

हुई है, उसको हम लेखनी द्वारा नहीं लिख सकते।.... हमारी तो यही कामना है कि आपने सच्चे गुरु की श्रद्धा व सच्चे धर्म के तत्त्वों के मर्म को पहचान लिया है तो पूज्यश्री कानजीस्वामी की सेवा में ही रहकर, शेष अधिक काल आत्मकल्याण के हेतु ही व्यतीत कर, उच्च कोटि के धर्मलाभ को प्राप्त करना चाहिए।.... हमें खेद है कि हम उक्त अवसर पर सम्मिलित नहीं हो सकते।

माघ शुक्ल षष्ठी : श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव की अमरकृति श्री समयसारजी परमागम पर नौवीं बार के स्वानुभवमुद्रित प्रवचन समाप्त होते हैं।

विक्रम संवत् 1991 में किये हुए क्रान्तिकारी परिवर्तन के बाद अनुभव खुमारीवन्त गुरुवर ने बहुत से शास्त्रों पर मर्म उद्घाटक प्रवचन, सभा में प्रदान किये हैं। चलो, उनकी विगत देखते हैं।

भारतभर में श्री समयसारादि शास्त्रों का जो विशाल प्रचार हुआ है, हो रहा है उसका समस्त श्रेय गुरुवर के इन प्रवचनों को है।

चैत्र कृष्ण दूज, दिनांक 13.3.1952 : मुमुक्षुओं के तथा जैनों के बालक लौकिक शिक्षण के साथ-साथ गुरुदेवश्री के पवित्र सानिध्य में तत्त्वज्ञान के संस्कार भी प्राप्त करें, इस हेतु से 'श्री जैन विद्यार्थीगृह' शुरु किया जाता है और उसका उद्घाटन ट्रस्ट के प्रमुख मुरब्बी श्री रामजीभाई दोशी के कर-कमलों से होता है। गुरुवर द्वारा बोये हुए प्रभावना के बीज अब अंकुरित होने लगे हैं।

जिस पवित्र क्षेत्र में गुरुदेवश्री का परम पावन समागम और अमृतवाणी आत्मार्थियों को नया जीवन अर्पित करते हैं तथा साधक के आत्मजीवन की पुष्टि करते हैं, उस विदेहक्षेत्र समान स्वर्णपुरी में एक मानस्तम्भ बनाने का निर्णय लिया जाता है। आज तक बहुत से मुमुक्षुओं को पता भी नहीं है कि मानस्तम्भ अर्थात् क्या ? वह किसे कहते हैं ? क्योंकि सौराष्ट्रभर में कहीं भी मानस्तम्भ नहीं है। इसलिए भक्तों को बहुत समय से मन में भावना घुलती रहती थी कि सोनगढ़ में एक मानस्तम्भ बने तो अच्छा। आज उनकी भावना फलीभूत होती है।

चैत्र शुक्ल त्रयोदशी, श्री महावीर जन्मकल्याणक के पवित्र दिन दोपहर सवा बजे

— कि जब ‘स्टार ऑफ इण्डिया’ में मङ्गल परिवर्तन करके गुरुदेवश्री ने सत्य धर्म की नींव डाली थी, उस दिन और उसी समय — मानस्तम्भजी की नींव खोदने की शुरुआत पूज्य बहिनश्री बेन के शुभहस्तों से होती है।

वैशाख शुक्ल दूज : शासननायक महावीरप्रभु द्वारा प्रबोधित और कुन्दकुन्दादि निर्ग्रन्थ आचार्यों-मुनिवरों द्वारा समयसारादि शास्त्रों में संग्रहित अनुभवसिद्ध वीतराग जैनधर्म, लौकिक रूढ़ी में तथा सम्प्रदाय की बाह्य क्रियाकाण्ड में फँसा हुआ था। ऐसे काल में भक्तों के महा-पुण्योदय से जिनका जीवन तथा वाणी अध्यात्म से ओतप्रोत है तथा जो तीर्थङ्करों द्वारा बतलाये हुए अप्रतिहत मुक्तिमार्ग में निःशंकरूप से विचरण कर रहे हैं — ऐसे गुरुदेवश्री, भूले पड़े आत्मार्थियों को सन्मार्ग दिखाने के लिए यहाँ भरतभूमि में 62 वर्ष पहले पधारे थे। ‘तू भगवान आत्मा है’ — ऐसा सिंहनाद करके आपश्री सबको मोहनिद्रा में से जगाते हैं और आत्म-आराधना का अध्यात्ममार्ग दिखलाते हैं। जिसके फलस्वरूप हजारों जिज्ञासु जीव सम्प्रदाय की पकड़ में से छूटे हैं और एक यथार्थ मुमुक्षु-समाज का सृजन हुआ है। अपूर्व गुणधारी और अनुपम श्रुतधारी गुरुदेवश्री ने जिनशासन के सूक्ष्म रहस्यों-भावों को खोलकर आत्मार्थी जीवों पर अनेक अलौकिक उपकार किये हैं। — ऐसे गुणभण्डार गुरुवर की कल्याणकारी 63 वीं जन्म-जयन्ती आज स्वर्णपुरी में मनायी जाती है।

भक्त इस पावन अवसर पर भावांजलि अर्पित करते हैं : ‘हे आनन्दनिधान के दर्शन करनेवाले आत्मदृष्टा! आपश्री के अनुभव, श्रद्धा, ज्ञान, विवेक, वैराग्य इत्यादि सीखने योग्य हैं। अरे! आपश्री की सर्व परिणति हमारे लिए महान आदर्शरूप है।

हे शासनरत्न! आज आपश्री के प्रताप से भारतभर में जिनेन्द्र शासनध्वज अत्यन्त गौरवपूर्वक उन्नति के शिखर पर लहरा रहा है और उसकी छाया में हजारों तत्त्वप्रेमी जीव हर्षित होकर आ रहे हैं।

हे मुक्तिदूत! आपश्री को श्रुत का समुद्र-सागर उछला है।

हे स्फटिकहृदयी! आपश्री सत्य की रक्षा के लिए वज्र से भी कठोर होने पर भी, करुणा के प्रसंग में फूल से भी अधिक कोमल हो। किसी के अल्प गुण भी देखकर आपश्री प्रमोदित होते हैं।

हे अपार उपकारी! आपश्री की तत्त्वबोधक दिव्यवाणी भेदज्ञान के मधुर सुर सुनाकर हमें मुग्ध करती है।

हे तीक्ष्ण ज्ञानोपयोगधारी! आपश्री के द्वारा प्रदत्त तत्त्वज्ञान के मन्त्र, हृदय को चीरते हुए उतर जाते हैं और मिथ्यात्व का चूरा कर देते हैं। आपश्री के द्वारा प्रवाहित श्रुतज्ञानगंगा के अमृत प्रवाह-धारा में डुबकी मारकर पात्र जीव पवित्र होते हैं। बस, आपश्री की मंगल वाणी यथार्थरूप से आत्मा में झेलें इस भावनासहित श्रद्धा-विनय-बहुमान-भक्ति-स्तुति इत्यादि द्वारा सर्व प्रकार से आत्म-अर्पणता करते हैं।

वैशाख शुक्ल पंचमी : परम अध्यात्म परमागम श्री नियमसारजी पर प्रवचन पूर्णता को प्राप्त होते हैं और स्वामी कार्तिकेय द्वारा रचित 'कार्तिकेयानुप्रेक्षा' पर प्रवचनों का प्रारम्भ होता हैं।

ज्येष्ठ कृष्ण षष्ठी : वीतराग-विज्ञानमय जैनधर्म के प्रभावक गुरुदेवश्री के अचिन्त्य प्रताप से स्वर्णधाम में श्री सीमन्धरनाथ का समवसरण आया - रचाया उसका एक दशक आज पूर्ण होता है। समवसरण क्या चीज है? उसे स्वीकार करनेवाले को और कितना स्वीकार करना चाहिए? — इत्यादि सब ही गुरुराज ने समझाया है। आज के मंगल दिन 'समवसरण का स्वीकार करनेवाला जीव कैसा होता है?' इस विषय पर प्रवचन होता है।

ज्येष्ठ कृष्ण सप्तमी, शुक्रवार, दिनाङ्क 16.5.1952। जिनका आश्चर्यकारक प्रभावना उदय है — ऐसे गुरुदेवश्री के उत्तम सान्निध्य में और भक्तों के उत्साह-उल्लास के बीच पवित्र आत्मा पूज्य बहिनश्री के मंगल हस्त से जिनधर्मवैभव मानस्तम्भजी का शिलान्यास होता है।

लाख लाख वार जिनराजना वधामणा,
अंतरीयुं हर्षे उभराय.... आज मारे मंगल वधामणा....
आज मारे दैवी वधामणा....
आज मारे उत्तम वधामणा....

आज मानस्तम्भजी का शिलान्यास हुआ उस माङ्गलिक प्रसंग में मानस्तम्भ की

भेरी बजाता हुआ गुरुवर का प्रवचन होता है। जिसमें मानस्तम्भ क्या है ? उसका संयोग किसे होता है ? वह कहाँ-कहाँ होता है ? इसका अध्यात्म के साथ सुमेल किस प्रकार है ? इत्यादि सन्दर्भों को साथ लेकर मानस्तम्भ की महिमा बतलाते हैं। मानस्तम्भ अर्थात् मानी जीवों के मान को नाश करनेवाला उन्नत धर्मस्तम्भ। वह जैनधर्म का वैभव दिखलानेवाला होने से 'धर्मवैभव' और इन्द्रों द्वारा उसकी पूजा होती होने से 'इन्द्रध्वज' भी कहलाता है। धर्म-प्रभावना के महान निमित्तरूप समवसरण में समागत मानस्तम्भ मानो कि ऐसा प्रसिद्ध करता है कि हे जीवो ! यदि तुम्हें सत्य चाहिए और वह समझकर आत्मकल्याण करना हो तो एक वीतरागमार्ग ही उपाय है और वह यहाँ है।

ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी : 'स्वाध्याय मन्दिर' का उद्‌घाटन और उसमें समयसार जिनवाणी की स्थापना का पन्द्रहवाँ वार्षिक उत्सव आनन्द से मनाया जाता है। प्रातःकाल के प्रवचन से पूर्व समयसारजी की रथयात्रा निकलती है। फिर विशिष्ट माङ्गलिक प्रवचनरूप से समयसारजी के पहले श्लोक पर व्याख्यान होता है। तत्पश्चात् शास्त्र पूजन होता है और दोपहर के प्रवचन के पश्चात् जिनवाणी की विशेष भक्ति होती है।

आषाढ़ कृष्ण द्वादशी : शुद्धात्म-साधनामय मार्गदाता गुरुवर की मंगल वाणी का प्रत्यक्ष लाभ लेने हेतु ही बीस दिन के लिए ब्रह्मचारी छोटेलालजी, ब्रह्मचारी सुमेरचन्दजी वर्णी और ब्रह्मचारी दुलीचन्दजी सोनगढ़ आते हैं।

आषाढ़ शुक्ल पंचमी : जिसका तात्पर्य वीतरागता है — ऐसे 'श्री पंचास्तिकाय-संग्रह' परमागम के वीतरागता पोषक प्रवचन पूर्ण होते हैं।

श्रावण कृष्ण चतुर्थी : श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव द्वारा रचित 'श्री बृहद् द्रव्यसंग्रह' पर प्रवचन शुरु होते हैं।

श्रावण शुक्ल पूर्णिमा, मंगलवार। मुनिरक्षा का मंगल दिन। प्रातः सवेरे चार बजे स्वप्न आता है : गुरुवर नदी के पास खड़े हैं, तभी एकदम बाढ़ आती है। नदी के किनारे आधे और मध्य में पूरे डूब जायें इतना पानी होने पर भी, दूसरों की मदद बिना स्वयं हिम्मत करके सामने किनारे पहुँच जाते हैं, पार उतर जाते हैं। सत्य ही बात है न ! कि गुरुराज स्वयं के पुरुषार्थ से मोहनदी के पार पहुँचनेवाले हैं।

भाद्रपद शुक्ल पञ्चमी : पर्वाधिराज दशलक्षणी पर्यूषणपर्व के प्रारम्भ के अवसर पर श्री समयसारजी के बन्ध-अधिकार पर हुए गुरुवर्य के प्रवचनों की पुस्तक — कि जिसमें पूज्य बहिनश्री बेन द्वारा झेले तथा लिखे गये प्रवचन हैं वह - प्रकाशित होती हैं।

आश्विन शुक्ल तृतीया : सवेरे प्रवचन में चल रहा 'कार्तिकेयानुप्रेक्षा' ग्रन्थ पूर्ण होता है और दूसरे दिन पण्डितप्रवर टोडरमलजी कृत 'श्री मोक्षमार्गप्रकाशक' पर व्याख्यान प्रारम्भ होता है।

इस प्रकार विक्रम संवत् 2008 का वर्ष आत्मसाधनासह समाप्त होता है।

★ ★ ★

विक्रम संवत् 2009 (सन् 1952-53)

मानस्तम्भ-प्रतिष्ठा वर्ष

साधनामय लोकोत्तर जीवन जीनेवाले गुरुवर की नजर और वाणी ऐसे अमृतमयी हैं कि समागम में आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को ऐसा लगता है कि गुरुदेवश्री मेरे हैं तथा मुझ पर बहुत कृपा है। बात तो सत्य ही है। अरे! आपश्री कोई नये जिज्ञासु आवें उन्हें समीप बुलाकर विशेषरूप से पूछते हैं कि कहाँ से आये हो? इत्यादि.... जिससे आनेवाले व्यक्ति का क्षोभ दूर हो जाता है। नये को भी अपना बनाने की यह कला क्या अपनाने जैसी नहीं लगती? जैन सम्प्रदाय में तो ऐसा कहा जाता है कि तुम सोनगढ़ मत जाना, क्योंकि जो वहाँ जाता है वह उनका हो जाता है। कोई-कोई साधु तो सोनगढ़ न जाने की प्रतिज्ञा भी देते हैं। अनुपम आदर्श गुरुराज का जीवन ही कोई ऐसा है कि उनकी मधुर छत्रछाया में — उनके समागम में — ज्ञान-वैराग्य का सिंचन सहज होता है। इस कारण स्वर्णपुरी में आनेवाले प्रत्येक रसिकजन आपश्री के रंग में रंगाये बिना नहीं रहते। परिवर्तन के समय उठी हुई विरोध की आँधी के समय निःशंकरूप से कहे गये पूज्य बहिनश्री के वचन याद आते हैं कि 'गुरुदेव! सभी आठ दिन बोलकर बैठ जायेंगे, सब आठ दिन में शान्त हो जायेंगे।' वह आज प्रत्यक्ष दिखायी देता है।

कार्तिक शुक्ल तृतीया : मानस्तम्भजी में विराजमान होनेवाले जिनबिम्बों का नगर प्रवेश के प्रसंग पर स्वागत किया जाता है।

मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्थी, शुक्रवार : ब्रह्ममुहूर्त में चार बजे, अद्वितीय गुरुवर आत्मचिन्तन में बैठते हैं। डेढ़ घण्टे के चिन्तन-मन्थन के बाद, साढ़े पाँच बजे भावना में ऐसा दिखता है कि पूर्व दिशा में एक विशाल पर्वत पर स्फटिक की विशालकाय भव्य जिनप्रतिमा है। वह सूर्य जैसी तेजस्वी और श्रवणबेलगोला में स्थित बाहुबली की प्रतिमा जैसी विशाल -महान है। इन भगवान की मुद्रा तो ऐसी अतिशय तेजस्वी है कि मानो रूप का अम्बार!! अहा! मानो साक्षात् परमात्मा ही हों — ऐसी वह प्रतिमा है। यह जिनप्रतिमा निहारकर

गुरुदेवश्री को बहुत आह्लाद होता है। इसलिए भावना ही भावना में समीप में स्थित अन्य व्यक्ति को कहते हैं : 'देखो! देखो! यह भगवान! सनातन दिगम्बर जैनधर्म में भगवान तो ऐसे होते हैं। भगवान की वीतरागता ऐसी होती है।' भावना-चिन्तन पूर्ण होने के बाद उल्लासपूर्वक ज्ञाननिधि गुरुवर कहते हैं : 'अहो! वह भगवान की प्रतिमा तो साक्षात् भगवान जैसी थी।' भावना की महानता देखो! कि भक्त को भक्ति के बल से स्वप्न में भी भगवान मिलते हैं! योगानुयोग आज ही निर्माणाधीन मानस्तम्भजी में भगवान की वेदी की स्थापना होती है।

पोष कृष्ण पंचमी : 'बृहद् द्रव्यसंग्रह' पर, चैतन्य की अनुपम महिमा बतलानेवाले प्रवचन पूर्ण होते हैं और दूसरे दिन श्री दीपचन्दजी कृत 'अनुभवप्रकाश' पर अनुभवरस झरते प्रवचन शुरु होते हैं।

एक बार रात्रिचर्चा के दौरान श्रुतसमुद्र गुरुवर आत्मार्थी जीवों का प्रमाद छुड़ाने और उन्हें आत्महित के प्रति उल्लसित करने के लिए फरमाते हैं : ''आत्महित के लिए प्रतिदिन स्वाध्याय तथा मनन करना चाहिए। जिसे आत्मा की लगन लगी हो, वह स्वाध्याय और मनन बिना एक भी दिन खाली नहीं जाने देता। जीव चाहे जैसे संयोग में और चाहे जैसी प्रवृत्ति में पड़ा हो तो भी, चौबीस घण्टे में से घण्टे-दो घण्टे का समय तो स्वाध्याय-मनन में व्यतीत करना ही चाहिए। अरे! न्यूनतम — कम से कम — पाव घण्टे तो निवृत्ति लेकर एकान्त में शान्तिपूर्वक स्वाध्याय और विचार करना ही चाहिए।

प्रतिदिन स्वाध्याय-मनन करने से अन्तर में संस्कार ताजा रहा करते हैं, उनमें दृढ़ता होती जाती है। जो निवृत्ति लेकर आत्मा का विचार भी नहीं करता, वह विकल्प तोड़कर अनुभव कैसे करेगा? 'मैं तो जगत से पृथक् हूँ, जगत के साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं, मेरे पर किसी काम का बोझ नहीं, मैं तो असंग चेतन तत्त्व हूँ' — ऐसा घड़ी-दो घड़ी भी चिन्तन-मनन करना चाहिए। सत्पुरुष की वाणी का बारम्बार चिन्तन-मनन करना वह अनुभव का उपाय है। ... वाह! कैसी मंगलमय प्रेरणा!!

फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा : 'अनुभवप्रकाश' पर आत्महितकारी प्रवचन समाप्त होते हैं। दूसरे दिन अर्थात् जिनकी वाणी झेलकर श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने परमागमों की रचना की

ऐसे श्री सीमन्धर भगवान आदि भगवन्तों के स्वर्णपुरी में पदार्पण के वार्षिक मंगल दिन, जगत के अद्वितीय चक्षु श्री समयसारजी पर, जिनकी अनुपम वाणी की धारा जीवों की परिणति-उपयोग को पलटा देती है — ऐसे गुरुवर के, दसवीं बार के स्वानुभवमार्ग-प्रकाशक प्रवचनों का प्रारम्भ होता हैं।

जैसे-जैसे मानस्तम्भ प्रतिष्ठा का दिन चैत्र शुक्ल दशमी निकट आता है, वैसे-वैसे मानस्तम्भ का निर्माणकार्य आगे बढ़ता है — ऊँचाई बढ़ती है और बढ़ते-बढ़ते 63 फीट हो जाती है। प्रेरणामूर्ति गुरुदेवश्री को भी इस जीवन का 63 वाँ वर्ष चल रहा है और निकट मोक्षगामी शलाका पुरुष भी 63 होते हैं। इस कारण 63 फीट उन्नत यह मानस्तम्भ ऐसा प्रसिद्ध-सूचित करता है — कि जो भव्य जीव यहाँ आकर यथार्थ तत्त्वज्ञान समझेंगे वे निकट मोक्षगामी होंगे।

सौराष्ट्र में यह मानस्तम्भ प्रथम बार ही बन रहा होने से, उसे देखकर नये-नये जिज्ञासु और जैनेतरों को आश्चर्य होता है; इसलिए अपूर्व सत्पुरुष गुरुदेवश्री प्रवचन में, तत्त्वचर्चा में तथा बातचीत में बहुत बार समझाते हैं कि मानस्तम्भ क्या है तथा उसमें उत्कीर्ण चित्रों की समझ भी देते हैं।

इस पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के निमित्त से स्वर्णपुरी में पहली बार ही अध्यात्मभावों से भरपूर 'श्री सिद्धचक्र पूजन विधान' चैत्र कृष्ण त्रयोदशी से चैत्र शुक्ल दूज, ऐसे पाँच दिन तक होता है। अन्तिम दिन अखण्डरूप से एक साथ सिद्ध के एक हजार चौबीस गुणों की पूजा होती है।

सोनगढ़ की स्थानीय आबादी 2500 लोगों की है, परन्तु प्रतिष्ठा महोत्सव में भाग लेने हेतु अनेक त्यागी-विद्वानों के उपरान्त विदेश से बर्मा, अफ्रीका के मुमुक्षु तथा भारत के कलकत्ता, मद्रास, दिल्ली, मुम्बई इत्यादि मुख्य शहरों के मुमुक्षु मिलकर पाँच से छह हजार भक्तों का समुदाय उमड़ता है। उनके रहने आदि की व्यवस्था के लिए विजयानगरी, अयोध्यानगरी, सुसीमानगरी, पुण्डरिकीणीनगरी, कुन्दकुन्दनगर, कहाननगर इत्यादि की रचना की जाती है; इसलिए मानो सोनगढ़ एक सुन्दर स्वप्ननगर बन गया है। स्वर्णधाम, विदेहधाम और भरतक्षेत्र, विदेहक्षेत्र हो गया है तथा विदेह की तरह यहाँ भी धर्मकाल वर्त रहा है।

मानो कुदरत इस प्रसंग में साथ दे रही हो — ऐसे इन दिनों में श्रवणबेलगोला में श्री बाहुबली का महा–मस्तकाभिषेक होता है। जिसके कारण हजारों हिन्दीभाषी जैन यात्रा करते–करते सोनगढ़ आते हैं और इससे कृपासागर गुरुदेवश्री प्रथम बार हिन्दी में प्रवचन प्रदान करना शुरु करते हैं।

बाहुबलीजी की यात्रा के लिए स्पेशल ट्रेन द्वारा निकले हुए कलकत्ता के सेठ गजराजजी, तोलारामजी इत्यादि पाँच सौ यात्रियों का संघ सोनगढ़ आता है। मार्गप्रणेता गुरुवर के सत्समागम से तथा सोनगढ़ के धर्ममय वातावरण से प्रभावित होकर, संघ में आये हुए छदामीलालजी सेठ कहते हैं : 'महाराज! सम्मेदशिखर की यात्रा करने के लिए आपश्री पधारें तो यात्रासंघ निकालने की मेरी भावना है।' तदुपरान्त जयपुर, दिल्ली की ओर के जैन भी वहाँ पधारने की प्रार्थना करते हैं।

इस संघ का एक यात्री, तत्त्वमर्मज्ञ गुरुदेवश्री को विनयपूर्वक प्रश्न पूछता है : 'तपसा निर्जरा च' — ऐसा तत्त्वार्थसूत्र में आता है तो उसका अर्थ क्या है?' अति प्रेमपूर्वक उत्तर मिलता है : 'आत्मा को वीतरागता द्वारा आत्मा में टिकाये रखना वह तप है। भाई! यह निश्चय तप है और उस काल में निमित्त का लक्ष छूटा अर्थात् आहार का विकल्प छूटा वह व्यवहार तप है।' समझ में आया?

फिर एक पण्डित कहते हैं : 'प्रत्यक्ष दिखता है कि अग्नि से पानी गर्म होता है। क्या अग्नि के बिना पानी गर्म होता है? तथापि आपश्री इन्कार क्यों करते हो?' जिनका जीवन पवित्र है और उपदेश अपूर्व है — ऐसे गुरुराज समाधान कराते हैं : 'भाई! क्या प्रत्यक्ष दिखता है? पानी स्वयं के स्पर्शगुण के कारण गर्म होता है; अग्नि के कारण नहीं। कार्य, निमित्त के कर्तापने बिना ही होता है, क्योंकि निमित्त का कार्य में अभाव है।' दो द्रव्यों की भिन्नता ख्याल में आती है न?

पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा के विधिनायक सौराष्ट्र से निर्वाण प्राप्त श्री नेमिनाथ हैं और श्री सीमन्धरप्रभु मानस्तम्भ में विराजमान होनेवाले हैं। इस प्रसंग पर लाडनूँ, किशनगढ़, सहरानपुर, जबलपुर, उज्जैन, फतेपुर, जूनागढ़, मोरबी, वाँकानेर, बोटाद तथा सोनगढ़ के मिलाकर कुल 32 जिनबिम्ब प्रतिष्ठा के लिए प्रतिष्ठामण्डप 'सीमन्धरनगर' में पधारते हैं। प्रतिष्ठा कराने के लिए प्रतिष्ठाचार्य पण्डित श्री नाथूलालजी इन्दौर से आते हैं।

ग्यारह वर्ष बाद सोनगढ़ में पञ्च कल्याणक हो रहा होने से भक्तों को बहुत उत्साह है और मानस्तम्भ भी ऐसा भव्य बना है कि उसकी शोभा निहारते हुए जैनेतर भी अघाते नहीं।

जन्मकल्याणक दिन : आज का हाथी सहित का जन्माभिषेक का जुलूस इतना विशाल है कि गाँव के एक छोर से दूसरे छोर तक लम्बा-फैला हुआ है। इसलिए आज गाँव भी छोटा लगता है। नदी के किनारे मेरुपर्वत बनाया जाता है। बाल तीर्थङ्कर ऊर्ध्वगामी आत्मा है; इसलिए उनका जन्माभिषेक ऊर्ध्व स्थान में — मेरुपर्वत की पाण्डुकशिला पर — हो उसमें आश्चर्य क्या है? सबसे उत्तम पुरुष, तीर्थङ्कर और सबसे उन्नत स्थान, पाण्डुकशिला।

दीक्षाकल्याणक दिन : सकल संयम धारण के समय सोनगढ़ के आम्रवन में वैराग्य का महा-गम्भीर समुद्र फैलता है और वातावरण वैराग्य से स्तब्ध रह जाता है। आदर्श सन्त गुरुदेवश्री का रोम-रोम भी वैराग्यरस से भीगता है और भक्ति-वैराग्यभाव से नेमिकुँवर का केशलोंच करते हैं। अरे! उस समय भावुक भक्तों के भी रोमांच खड़े हो जाते हैं और अन्तर में से ध्वनि उठती है : 'धन्य संयमदशा! धन्य मुनिदशा!!'

इस प्रसंग पर ज्ञान-वैराग्य-अध्यात्म के रंग से रंगे हुए गुरुवर के वैराग्य प्रवचन के समय, आपश्री के अन्तर ज्ञानसरोवर में से उदासीन-उपेक्षामय भावना का अपूर्व प्रपात -प्रवाह बहता है : 'अहा! आज तो नेमिनाथ भगवान के वैराग्य का प्रसंग देखकर और राजमती की वैराग्यभावना सुनकर आँख में आसूँ आ गये। भगवान के वैराग्य का अद्भुत दृश्य नजरों के सामने से हटता नहीं। मानो नजर के सामने ही भगवान दीक्षा लेते हों — ऐसा लगता है। भगवान स्वयं साक्षात् पधारे हों — ऐसा अभी लगता है। भगवान ने लगभग 85000 वर्ष पहले दीक्षा ली थी, परन्तु रुचि के बल से काल का अन्तर निकालकर भक्त कहते हैं कि भगवान अभी ही दीक्षा लेते हैं।' इस समय की आत्मस्वरूपस्थ गुरुवर्य की वैराग्यरस झरती गम्भीर मुखमुद्रा, भक्तों के अन्तर-नयन से कभी न हटे — ऐसी अद्भुत है।

एक तो स्वर्णधाम में प्रतिष्ठा महोत्सव, उसमें ब्रह्मचर्य के उत्कृष्ट प्रतीकरूप नेमिकुंवर

की दीक्षा का प्रसंग और उसमें भी वैराग्यमूर्ति गुरुदेवश्री का प्रवचन। — यह त्रिवेणी संगम होने पर कमी किसकी होगी? वैराग्यरस की लहरें उछलती हैं, उनमें हजारों श्रोता शीतलता का अनुभव करते हैं और शान्तरस में झूलते हैं। भाग्यवान श्रोताओं को लगता है : आज हमारा जीवन कृतार्थ हुआ। धन्य अवसर! धन्य वाणी!! प्रवचन वाणी में मुनिदशा की अद्‌भुत महिमा और उनके प्रचुर स्व-संवेदन का अलौकिक वर्णन सुनकर सैकड़ों हिन्दी श्रोता भी आश्चर्य मुग्ध होकर कहते हैं : 'अहो! आज तो अपूर्व बात सुनायी दी। ऐसी अद्‌भुत बात हमारे सुनने में कभी नहीं आयी।...'

श्री नेमीश्वर मुनिराज का आहारदान, पूज्य बहिनश्री बेन के आँगन में ब्रह्मचर्य आश्रम में होता है। भाव भरे आहारदान के बाद मुनिराज के वनगमन के समय बहुत समय तक असाधारण उल्लासभरी भक्ति होती है और उसकी पूर्णता होने पर दूर-दूर तक सुनायी दे ऐसे जयकार नाद गूँजते हैं, जो भक्तों की उमंग-उत्साह की साक्षी देते हैं।

जिनवरभक्त गुरुदेवश्री, महामंगल कर-कमल से, अति पवित्र भाव से और अन्तर के भक्ति-उमंग से अंकन्यास विधि का उत्तम कार्य करते हैं। जो पावन दृश्य हजारों भक्त अत्यन्त उल्लास से निहारते हैं और जयनाद से गुँजाते हैं। जिनवर और जिनवर-लघुनन्दन का यह मधुर मिलन देखकर भक्त आनन्दित होते हैं।

श्री सद्‌गुरु करकमलेथी महामंगल विधि थाय छे....

आ भरतक्षेत्रमांही, प्रतिष्ठा स्वर्णे गाजे; (2)
श्री मानस्तंभ बन्या छे, सुवर्णना मंदिरीये.... श्री सद्‌गुरु....

सुवर्ण शलाका सोहे, श्री गुरुवर करकमलोमां; (2)
पुनित अंतर आतमथी, अंकन्यास विधि थाय छे.... श्री सद्‌गुरु...

श्री विदेहक्षेत्रमांही, सीमंधरनाथ विराजे; (2)
अमीदृष्टि वरसावे, आ मंगल विधि मांही... श्री सद्‌गुरु...

वीतराग स्वरूप बताव्युं, श्रीकहानगुरुदेवे; (2)
जिनवर वैभव बताव्या, जिनस्तंभने थंभावीया.... श्री सद्‌गुरु...

श्री देव-गुरु महिमानो, जयकार गगने गाजे; (2)
अंतर सेवकनां नमतां, श्री गुरुवरना चरणोमां.... श्री सद्‌गुरु...

प्रतिष्ठा महोत्सव होने पर भी, ज्ञानामृत पिलानेवाले गुरुवर के प्रवचनों में लोगों को इतना अधिक रस आता है कि अन्य कार्यक्रमों के समय गुरुवाणी के लिए तरसते हैं और बारम्बार पूछते हैं कि स्वामीजी का प्रवचन कब होगा ? प्रवचन के समय पाँच से छह हजार श्रोताओं का विशाल समुदाय होने पर भी, धीर-गम्भीर-शान्त वातावरण सृजित होता है और गुरुदेवश्री की निज आत्म-प्रसन्नता व्यक्त करती हुई अनुपम वाणी बहती है। सब श्रोता भी प्रसन्नतापूर्वक प्रवचन सुनने में मुग्ध होते हैं और आश्चर्य से डोल उठते हैं। प्रवचन धर्मसभा की भव्यता देखकर भक्तों का हृदय सन्तुष्ट होता है कि अहो! गुरुवर के प्रताप से धर्मकाल वर्त रहा है। अभी सत्य के जिज्ञासु जीव भी हैं और सत्य समझानेवाले अनुभवी ज्ञानी भी हैं।

अपूर्व आध्यात्मिक तत्त्व का प्रेमपूर्वक श्रवण करनेवाले तत्त्वपिपासु जीवों का यह भव्य मेला अजोड़ है। सर्वत्र धार्मिक वातावरण दृष्टिगोचर होता है। कोई कहता है : 'हम स्वर्णपुरी में आये हैं;' कोई कहता है : 'हम धर्मपुरी में आये हैं;' तो फिर कोई कहता है : 'हम विदेहधाम में आये हैं।' ऐसे सर्वत्र ही उत्साह-आनन्द वर्त रहा है। इस प्रकार एक ओर पञ्च कल्याणक के प्रसंगों में भक्तिरस प्रवाहित होता है तो दूसरी ओर प्रवचनों में शान्त अध्यात्मरस फैलता है और ऐसे अनुपम सुमेल से भक्तजन अपने को धन्य समझते हैं।

चैत्र शुक्ल दशमीं (दूसरी), दिनांक 25.3.53 : आज के प्रतिष्ठा के मंगल दिन भक्तों की अचिन्त्य भक्ति और जयनाद से गगन गूँज उठता है। उन्नत मानस्तम्भ में प्रथम ऊपर और फिर नीचे, विदेहीनाथ श्री सीमन्धरप्रभु की मंगलकारी प्रतिष्ठा, सीमन्धरदूत गुरुदेवश्री मानो कि प्रत्यक्ष प्रभु का साक्षात्कार हुआ हो — ऐसे भक्ति भरे आनन्द के उछालपूर्वक करते हैं। इस प्रसंग पर भावनगर और वल्लभीपुर के राजवी भी विशेषरूप से आते हैं।

इस प्रकार स्वर्णपुरी में मानो प्रभुजी प्रत्यक्ष पधारे हो — ऐसे अपूर्व उल्लास -उमंगसह यह धर्मप्रभावना का भव्य महोत्सव मनाया जाता है और उसकी फिल्म भी

बनायी जाती है। जैसे गुरुवाणी की अध्यात्म अमृतधारा का मीठा स्वाद तो सुननेवाले — समझनेवाले ही अनुभवते हैं, वैसे ही इस महा–महोत्सव की भव्यता तो नजरों से निहारनेवाले ही जानते हैं, वह कही या लिखी नहीं जा सकती।

स्वर्णपुरे स्वाध्यायसुमंदिर, जिनगृह गुरुजी लाया,
समवसरण, प्रवचनमंडप, जिनधर्मविभव लहराया;
धर्मध्वज आया आया रे, भविक उर हरख हरख छाया....

घोर भवाटवी मार्ग भूल्युं जग, सूजे क्यांय न आरो,
जिनदरबार सुमार्ग बतावी, तुं जग रक्षणहारो;
धर्मध्वज तुं आधारो रे, भविकनो तुं ध्रुव तारो रे....

विश्वदिवाकर नाथ सीमंधर, कुंदनयनना तारा,
जगनिरपेक्षपणे जगज्ञायक, वंदन कोटि अमारा;
तात जगतारणहारा रे, जगत आ तुजथी उजियारा...

हे जिनवर! तुज चरणकमलना, भ्रमर श्री कहान प्रभावे,
जिन पाम्यो, निज पामुं अहो! मुज काज पूरां सहु थावे;
आश मुज करजो रे पूरी, उभय अणहेतुक उपकारी...

✧ ✧ ✧

आज मारे रे आंगणीये, श्री मानस्तंभजी पधार्या....
आज मारे रे मानस्तंभे, सीमंधरनाथ विराज्या...
हैडानां हार आवो, आतम शणगार पधारो; (2)
पावन सेवकने करीने, सेवक सामुं नीहाळो....

ध्यान धुरंधर स्वामी, वीतराग विलासी स्वामी; (2)
सुखमंदिर जिनवर देवा, हम रहीये तुज चरणोमां....

गुरु कहानना प्रतापे, जिनराज भेट्या आजे; (2)
आ पंचमकाल भूलाये, नितनित मंगल थाये....

वीतरागमार्ग के परम-प्रभावक गुरुदेवश्री के पुनीत प्रताप से हो रही प्रभावना और भक्तों का भावना भरा उत्साह देखकर दूर-दूर से आये हुए हिन्दी भाई, त्यागी आनन्दित होते हैं। अरे! गुरुराज के आत्मस्पर्शी प्रवचनों से प्रभावित होकर लगभग बीस त्यागी आभारसूचक एक प्रस्ताव भी पारित करते हैं।

इस महोत्सव में मंगलमूर्ति गुरुवर के प्रवचन सुनकर अजमेर के हीराचन्दजी बोहरा 'जैनमित्र' में लिखते हैं : 'पूज्य श्री कानजीस्वामी के तात्त्विक प्रवचनों में बड़ा ही आनन्द आता है। निश्चय और व्यवहारदृष्टि से-सम्यक्‌रूप से-समझाने की जो सुन्दर शैली है — ऐसी अन्यत्र हमारे देखने में नहीं आयी। दृष्टिप्रधान कथन का निरूपण बहुत तर्कयुक्त एवं पूर्ण विवेचन के साथ किया जाता है। हमारा तो समाज के सभी धर्मप्रेमी बन्धुओं से अनुरोध है कि एक बार वहाँ अवश्य जावे। ऐसा निराकुल शान्त वातावरण बहुत कम जगह मिलता है।'

समाज में प्रतिष्ठित ऐसे एक त्यागी कहते हैं : 'ऐसी अपूर्व बात कहीं पर सुनने में नहीं आती। मेरा तो यह ख्याल है कि आज के सभी त्यागी व पण्डित लोगों को यहाँ आ करके यह बात सुनने की व समझने की जरूरत है।' अन्य त्यागी कहते हैं : 'महाराज! हमको तो यहाँ आकर के सच्ची निधि मिली है।' और बहुत से हिन्दी जैन भी कहते हैं : 'दूसरी सब जगह चाहे जाना बने या न बने, लेकिन सोनगढ़ तो अवश्य जाना।' अहो! गुरुप्रभावना का जादू कैसा फैल रहा है! जैसे कुन्दकुन्दादि आचार्यों ने शास्त्रों की रचना कर प्रभावना के कार्य किये, उसी प्रकार भक्तों के आत्मजीवन को गढ़नेवाले गुरुवर भी प्रवचनों तथा ऐसी प्रतिष्ठाओं द्वारा अनुपम धर्मवृद्धि कर रहे हैं।

प्रतिष्ठा के प्रसंग पर स्वर्णपुरी में आये हुए प्रत्येक जिज्ञासु किसी न किसी प्रकार ज्ञानप्रभावक गुरुवर के धर्मप्रभाव से अत्यन्त प्रभावित होता है। दक्षिण भारत की यात्रा को निकले हुए ब्रह्मचारी राजारामजी, अद्‌भुत आत्मवैभव धारक गुरुराज का प्रवचन सुनकर ऐसे प्रभावित होते हैं कि यात्रा का विकल्प छूट जाता है और स्वर्णपुरी में ही लगातार चार महीने रहते हैं। ऐसे अनेक जीवों द्वारा भारत के अजोड़ रत्न गुरुदेवश्री का परम पावन प्रभावनासन्देश, भारत के कोने-कोने में पहुँचता है और मार्गप्रभावना को महान गति

मिलती है। अब, भवान्त जिनका निकट है ऐसे गुरुराज, अभी तक सौराष्ट्र से बाहर विचरे नहीं हैं तो भी, मात्र सोनगढ़ या सौराष्ट्र की ही नहीं, भारतभर के दिगम्बर जैनसमाज की एक उत्कृष्ट विभूति बन गये हैं। विषमकाल में समर्थ गुरुवर के महा-प्रताप से हो रही यह शासन अभिवृद्धि देखकर, भक्तों का अन्तर अतिहर्षित-उल्लसित होता है।

अद्‌भुत चैतन्य-वैभवधारक कहान गुरुदेव ने अन्तरंग धर्मवैभव की पहिचान करायी है और आपश्री की कृपा से ही यह धर्मवैभव-मानस्तम्भ स्थापित हुआ है। यह धर्मस्तम्भ, भव्य जीवों को निज आत्मवैभव बताओ और हे कल्याणमूर्ति गुरुवर! आपश्री का बाह्यान्तर वैभव हमारा कल्याण करो — यही भावना है।

प्रतिष्ठा के दौरान, दो महीने में लगभग बारह हजार यात्री स्वर्णधाम दर्शन को आते हैं। यात्रियों का यह प्रवाह देखकर, अचिन्त्य आत्मा गुरुवर के परिवर्तन के समय कहे गये, पूज्य बहिनश्री के शब्दों का स्मरण हो आता है कि 'अभी भले ही लोग यहाँ नहीं आते, परन्तु बाद में आयेंगे।'

श्री मानस्तम्भजी का प्रतिष्ठा महोत्सव पूर्ण होने पर भी ऊपर चढ़ने का मचान अभी बाँधा हुआ ही रखा गया है। इस कारण जिनेन्द्रभक्त गुरुदेवश्री बहुत बार दोपहर के समय मानस्तम्भजी में ऊपर पधारते हैं और मीठे-मधुर कण्ठ से उल्लास-वैराग्यमय भक्ति का रस झरता है। दोपहर के शान्त वातावरण में शाश्वत शान्तिमार्गदाता गुरुवर की भक्ति की उपशान्त धारा झेलकर, भक्त ग्रीष्मऋतु में भी शान्तरस में सराबोर होते हैं। अहो! यह उन्नत धर्मस्तम्भ मानो दिन-प्रतिदिन वृद्धिंगत हो रहे गुरुप्रभावना को प्रसिद्ध करता है।

वैशाख शुक्ल दूज : गुरु जन्म-जयन्ती आती है और भक्तों के हृदय में उमंग लाती है, क्योंकि इस धन्य दिन, संसार-दुःख से तड़पते अशरण जीवों को शरणदाता — जीवन आधार— मिले थे। इस धर्मपिता ने अनेक सुपात्र सुपुत्रों को भेदज्ञान नौका द्वारा उभारकर, भव-समुद्र में डूबने से बचाया है और अभी भी बचा रहे हैं। इस उपकार का बदला किसी भी प्रकार से चुकाया जा सके ऐसा नहीं है।

आपश्री के पवित्र सानिध्य में निर्भयरूप से साधना करते हुए चरणसेवक भावना भाते हैं : हे शुद्धात्मसाधनामय आदर्श जीवन जीनेवाले गुरुदेव! आपश्री की दिव्य द्रव्यदृष्टि

– बोधक अपूर्व वाणी ने अनेक आत्मार्थियों को आत्मजीवन दिया है। आपश्री हमारे चैतन्य–प्राण के रक्षक हो। परम वात्सल्य और करूणा से आपश्री हमें तीर्थङ्करों द्वारा सेवित मार्ग की ओर ले जा रहे हो। आपश्री की महानता का हम किस प्रकार वर्णन करें — व्यक्त करें ? वाणी को शब्द मिलते नहीं और लेखनी में शक्ति नहीं।

इस भरतभूमि में इस पंचम काल में आपश्री जैसे सन्त का सम्यक् शीतल सान्निध्य ही हम बालकों को शरणभूत है। आपश्री के कृपा भरे आशीष से ही कल्याण का महामार्ग प्राप्त हुआ है। मोक्षमार्गरूप परिणमित आपश्री का आत्मा, आत्महितकारी अपूर्व वाणी, निज को निरपेक्षरूप से स्वीकारनेवाली दृष्टि इत्यादि आपश्री का सर्वस्व, हमारे लिए मंगलरूप–हितरूप है।

हे धर्मपिता! आपश्री तो निकांक्षभाव से परिणमित हो रहे हैं हो — कुछ भी लेने के लिए सर्वथा निस्पृह हो और हमारे जैसे अल्पमतिवन्त बालकों के पास आपश्री को अर्पण करनेयोग्य है भी क्या ? बस, हम तो भक्तिरूपी झोला फैलाकर याचना करते हैं कि हर पल और क्षण, हमारे आत्मजीवन का ज्ञानवैराग्य नीर से सिंचन करके सम्हाल लो! आपश्री की कृपादृष्टि से आपश्री के चैतन्यचमत्कारमय जीवन को हम परखें, पहचानें और अनुसरण करें — यही पवित्र अभ्यर्थना है।

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री कहती हैं : ‘अहो! पूज्य गुरुदेवश्री ने तो समग्र भरत को जागृत कर दिया है। उनका तो इस क्षेत्र के सर्व जीवों पर अमाप — अनन्त–अनन्त — उपकार है। आपश्री तो अनादि मंगलरूप तीर्थङ्कर का द्रव्य हैं, अनुपम द्रव्य हैं और आपश्री की वाणी का योग भी अद्भुत, अनुपम और अपूर्व है। अपूर्वता के दातार गुरुदेव की वाणी सुननेवाले पात्र जीवों को अन्तर से अपूर्वता भासित हुए बिना नहीं रहती। गुरुदेवश्री की श्रुतधारा बरसती है, लोगों के झुण्ड के झुण्ड उस दिव्यवाणी को सुनने एकत्रित होते हैं और घर–घर में लोग आत्मा की चर्चा करते हैं। — यह सब चमत्कारिक लगता है। ऐसा तत्त्व कहनेवाला दूसरा पुरुष कौन है ?

हे गुरुदेव! आपके चरण में मैं क्या धरूँ ? समस्त प्रताप आपका ही है। इस पामर सेवक पर आपने अपार उपकार किया है।’

गुरुभक्त पूज्य श्री निहालचन्दजी सोगानी के शब्दों में कहें तो : 'धन्य हैं गुरुदेव! जिनके दर्शनमात्र से उत्कृष्ट मुमुक्षु कृतकृत्य बन जाता है — ऐसे गुरुदेव का जन्म-दिवस बारम्बार मनाते रहें, यही भावना है।'

जिनका आत्मा ज्ञान के हरियाले बाग में रमता है — ऐसे गुरुदेवश्री के परम पवित्र आदर्शमय जीवन से प्रेरित हुए, आपश्री की पावनकारी आत्मसाधना से प्रभावित हुए और आपश्री की चैतन्यरस झरती वाणी से आकर्षित हुए भक्तों के झुण्ड के झुण्ड आज के उत्तम दिन अपने श्रद्धा-भक्तिपुष्प गुरुवर के चरणकमल में अर्पित करते हैं। अहो! पूर्व भव के प्रबल संस्कारी ऐसे गुरुराज के प्रताप से, जैसे खारे समुद्र में एक मीठी पोखर हो वैसे, इस पंचम काल में धर्मकाल — चौथा काल वर्त रहा है। वास्तव में इस युगपुरुष ने आत्म-आराधना का नवयुग सृजित किया है।

अति वात्सल्य और करुणा से हम बालकों को मोक्षपुरी ले जानेवाले धर्मपिता, कल्याणमूर्ति कहान गुरुदेव के 64 वें जन्म-जयन्ती मंगल दिन की जय हो...!

वैशाख शुक्ल दशमीं : आज श्री वीरप्रभु के केवलज्ञानकल्याणक का पवित्र दिन है तथा मानस्तम्भ प्रतिष्ठा की प्रथम मासिक तिथि भी है। इससे सहज उल्लास आ जाने से ब्रह्मचर्य आश्रम में सायंकाल पूज्य बहिनश्री बेन तीन घण्टे तक अपूर्व भक्ति कराती हैं। उनकी भक्ति का उछाला देखकर भक्तों का हृदय भी क्षणभर के लिये रुक जाता है। स्वर्णपुरी के स्वर्ण इतिहास में चिरंजीवी रहे, ऐसा यह भक्ति-उमंग का प्रसंग बनता है। जिसे देखकर भक्त कहते हैं : 'सोनगढ़ में कभी न हुई हो ऐसी यह अद्‌भुत भक्ति है। ऐसी उत्कृष्ट भक्ति हमने कभी नहीं देखी; हमारा रोम-रोम भक्तिरस से भीग गया है।'

एक दिगम्बर साधु सोनगढ़ आते हैं। वे जानते थे कि यहाँ निश्चय की बातें बहुत चलती हैं, इसलिए कहते हैं : 'मुनियों को व्यवहार का-विकल्प का-क्या काम ? हम तो निश्चय में-वीतरागता में रहते हैं और विकल्प तो मिथ्यात्व है।' गुरुराज समझाते हैं : 'अरे ऐसा नहीं है। विकल्प, मिथ्यात्व नहीं है; विकल्प से धर्म मानना मिथ्यात्व है।' अरे! साधु होकर भी कुछ पता नहीं!!

वैशाख शुक्ल पूर्णिमा : लोगों को प्रसन्न रखने के लिए जिन्होंने जीवन में किसी को,

कहीं, कभी, कुछ भी कहा या किया नहीं — ऐसे गुरुदेवश्री के जन्म तथा बाल्यजीवन से पावन उमराला में जिस घर में मंगलकारी जन्म हुआ उस पुराने घर के स्थान पर, असली मूल जैसा जन्मधाम बनाने, उसमें जिनेन्द्रदेव विराजमान करने तथा बगल में स्वाध्याय मन्दिर बनाने के लिए भगवती माता पूज्य बहिनश्री के पवित्र हस्त से शिलान्यास महोत्सव आनन्द और उल्लासपूर्वक मनाया जाता है।

इस वर्ष के ग्रीष्मकालीन शिविर में 150 विद्यार्थी भाग लेते हैं। भिन्न-भिन्न चार कक्षाओं में मोक्षमार्गप्रकाशक, जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, द्रव्यसंग्रह, छहढाला इत्यादि सिखाये जाते हैं।

ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी : श्रुतपञ्चमी के उत्तम दिन, मानस्तम्भजी में विराजमान विदेहीनाथ श्री सीमन्धरभगवान का अभिषेक-पूजन-भक्ति विशेषरूप से किये जाते हैं। जमी हुई धर्मपेढी चलानेवाले गुरुवर भी विशिष्ट भक्ति कराते हैं, क्योंकि आज धर्मस्तम्भ -धर्मध्वज-धर्मवैभव ऐसे मानस्तम्भजी पर बाँधा हुआ मचान खुलना है। मचान खुलते ही खुले आकाश में मानस्तम्भजी की शोभा अद्‌भुत ज्ञात होती है। मानो सीमन्धरनाथ विहार करते-करते यहाँ स्वर्णपुरी आकर रूक गये हों — ऐसा दृश्य खड़ा होता है। गगनविहारी प्रभु के दर्शन होते ही भक्तहृदय भक्ति से नम्रीभूत होकर पुकार उठता है : 'वाह! धन्य भगवान!'

विदेहक्षेत्र में विराजमान श्री सीमन्धरप्रभु के समवसरण का मानस्तम्भ मानो साक्षात् यहाँ आया हो — ऐसा भव्य-सुन्दर यह मानस्तम्भ बना है और इससे तीर्थधाम सोनगढ़ की शोभा में अति अभिवृद्धि हुई है। मानस्तम्भ पर लहराती ध्वजा, मानो हाथ हिलाकर आमन्त्रण देती है कि हे भव्यों! यहाँ आओ, यहाँ आओ। यहाँ धर्मदरबार भरा है। भवभ्रमण करके थके हुए जीवों को परम विश्राम मिले — ऐसा यह स्थान है।

चैतन्यरस की धारा बरसानेवाले गुरुवर्य प्रत्येक प्रवचन में सच्ची समझ पर विशेष वजन देते हैं कि आत्मा के सच्चे ज्ञान बिना बाह्य त्याग व्यर्थ है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रीवक उपजायौ; पै निज आतम ज्ञान बिना, सुख लेश न पायौ।' सम्यग्ज्ञान का ऐसा माहात्म्य सुनकर कोई-कोई त्यागी सरलता से कहते हैं : 'महाराज! बात तो आप कहते

हो ऐसी ही है। हमने भी ज्ञान के बिना त्याग ले लिया है, लेकिन अब क्या करें ?' उनकी उलझन देखकर करुणाभण्डार गुरुदेवश्री वात्सल्यपूर्वक कहते हैं : 'उलझो नहीं, सत्य वस्तु क्या है। — उसे समझने का अब प्रयत्न करो।'

जिनके समागम से शास्त्रों के मर्म खोलने की दृष्टि मिलती है — ऐसे गुरुवर का स्वास्थ्य ठीक-सही होने के प्रसंग में पूज्य सोगानीजी हर्षभावना व्यक्त करते हैं : 'परम परम हर्ष है कि परम अद्भुत, जीवन उद्धारक, जन्म-मरणरूपी रोग से रहित करनेवाले योगीराजश्री सद्गुरुदेव का स्वास्थ्य अब एकदम अच्छा है। अनादि-अनन्त आयु के धारक चैतन्य गुरुदेव की देह भी दीर्घायु हो — ऐसी भावना है।'

इस प्रकार जिस वर्ष में मानस्तम्भ प्रतिष्ठा हुई, वह विक्रम संवत् 2009 का वर्ष पूर्णता को प्राप्त होता है।

दिव्यज्ञानस्वरूप चैतन्य का चमत्कार प्रगट करनेवाले और प्रकाशित करनेवाले, दिव्य अमृत बरसानेवाले गुरुदेव के चरणकमल में बारम्बार नमस्कार।

★ ★ ★

विक्रम संवत् 2010 (सन् 1953–54)

सौराष्ट्रभर में जिनेन्द्रप्रतिष्ठा वर्ष

परम पावन वीतराग जिनशासन के अनुपम प्रभावक मंगलमूर्ति गुरुदेवश्री के पुनीत प्रताप–प्रभाव से मार्ग की महा–प्रभावना दिन–प्रतिदिन अत्यधिक शीघ्रता से बढ़ रही है। जिसके फलस्वरूप सौराष्ट्रभर में नये–नये जिनमन्दिरों के बीज बोये जा रहे हैं तथा अनेक स्थानों पर नूतन जिनमन्दिर तैयार हो रहे हैं। गुरुधाम सोनगढ़ तो एक तीर्थधाम ही बन गया है। उसमें भी गत वर्ष भव्य मानस्तम्भ बनने से उसकी शोभा में अतिशय वृद्धि हुई है। विदेह में विचरते गगनविहारी सीमन्धरप्रभु दिव्यध्वनि द्वारा जो धर्म का स्तम्भ वहाँ रोप रहे हैं, वही धर्म का स्तम्भ यहाँ भरत में सीमन्धरभक्त गुरुराज अपने प्रवचनों द्वारा रोप रहे हैं।

नूतन जिनालयों में पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा तथा वेदी प्रतिष्ठापूर्वक जिनबिम्बों को विराजमान करनेरूप धर्मप्रभावना सहित अनेक उत्तम कार्य करने के लिए, जिनेश्वर सुनन्दन गुरुवर्य माघ कृष्ण तृतीया दिनांक 21.1.1954 के दिन सोनगढ़ से मंगल प्रस्थान करते हैं। इस यात्राविहार के सम्बन्ध में पूज्य सोगानीजी क्या कहते हैं, चलो, वह जाने : 'सर्वश्रेष्ठ नेता सहित मोक्षमण्डली स्थान–स्थान पर विजयस्तम्भ रोपने जा रही है, यह विचार हृदय को खूब उल्लसित करता है।'

भरतभूमिमां सोना सूरज उगियो रे जिनजी,
सौराष्ट्रदेशमां सद्‌गुरु विहार, सुरनर आवो आवो,
विहार महोत्सव ऊजववा रे जिनजी....

सौराष्ट्रदेशमां जिनालयो गुरु स्थापतां रे जिनजी,
अखंड स्थापे मुक्ति केरा मार्ग... सुरनर... विहार...
शाश्वत स्थापे मुक्ति केरा मार्ग... सुरनर... विहार...

गुरुजी प्रतापे जिनेन्द्र टोलां ऊतर्यां रे जिनजी,

आव्या आव्या त्रिलोकी भगवान... सुरनर... विहार...

जिनेन्द्र महिमा देशोदेश फेलावतां रे गुरुजी,

करे छे कांई धर्मचक्रीनां काम... सुरनर... विहार...

जिनेन्द्र मंगल कार्य पूरां करी रे गुरुजी,

व्हेला व्हेला पधारो सुवर्णपुर... सुरनर... विहार...

विहार कार्यो जयवंत वरती रहो रे गुरुजी,

जय जय वर्तो सद्गुरुदेव प्रताप... सुरनर... विहार...

सोनगढ़ से विहार करके वीतराग-विज्ञानी गुरुवर के उमराला पधारने पर, स्थानीय जनता तथा भक्तमण्डल उल्लासपूर्ण स्वागत करते हैं। स्वागतयात्रा के बाद श्री नानालालभाई जसाणी के हस्त से 'उजमबा स्वाध्यायगृह' का उद्घाटन होता है और भक्तों को निर्भय बनानेवाले गुरुदेवश्री मांगलिक फरमाते हैं। तत्पश्चात् मुरब्बी श्री रामजीभाई दोशी 'श्री कहानगुरु जन्मधाम' का उद्घाटन करते हैं। गुरुजन्म से पावन यह पवित्र भूमि, फिर से गुरुचरणकमल से पावन होती है।

दोपहर को 'तत्त्वज्ञानतरंगिणी' पर प्रवचन में पूरा गाँव उमड़ता है। फिर भक्तिरस की सरिता बहती है।

माघ कृष्ण चतुर्थी (प्रथम) : श्री समयसारजी जिनवाणी की रथयात्रा के पश्चात्, भक्तों के जय-जयकारपूर्वक जीवन्त समयसार ऐसे गुरुवर्य, 'ॐ चिदानन्दाय नमः' — ऐसा मंगल हस्ताक्षर करके अत्यन्त भाव से 'उजमबा स्वाध्यायगृह' में श्री समयसारजी की स्थापना करते हैं और भावभीना संक्षिप्त प्रवचन भी प्रदान करते हैं।

माघ कृष्ण चतुर्थी (द्वितीय) तक जन्मधाम उमराला में रहकर, सहज ज्ञानामृत पीनेवाले गुरुदेवश्री पंचमी को विहार करके लींमड़ा, दामनगर होकर सप्तमी के दिन लाठी पधारते हैं। फिर बाबरा होकर राजकोट की ओर प्रयाण करते हैं।

चैतन्यरस की धारा बरसानेवाले गुरुराज, माघ कृष्ण द्वादशी से माघ शुक्ल प्रतिपदा,

ऐसे पाँच दिन राजकोट में विराजते हैं। इस दौरान श्री समयसारजी की गाथा 181 से 183 पर चैतन्यमस्ती से भरपूर प्रवचन होते हैं। जो सुनने के लिए सौराष्ट्र के प्रधान उछरंगभाई ढेबर भी आते हैं।

माघ शुक्ल दूज को राजकोट से विहार करते समय आत्मार्थी के आश्रयदाता गुरुराज भावनापूर्ण भक्ति कराते हैं :

धन्य दिवस धन्य आजनो, धन्य धन्य घड़ी तेह;
धन्य समय प्रभु माहरो, दरिशण दीठुं आज;
मन लाग्युं रे मारा नाथजी....

सुंदर मूरत दीठी ताहरी, केटले दिवसे आज;
नयन पावन थया माहरा, पापतिमिर गया भाज... मन....

साचो भक्त जाणीने, करुणा धरो मनमांह्य;
सेवक पर हित आणीने, धरी हृदय उमाह... मन....

निर्मळ सेवा आपीए, भवना बुझेरे ताप;
हवे दरिशण विरह मत करो, मेटो मननो संताप... मन....

धणुं धणुं शुं कहीए तुमने, तुमे चतुर सुजाण;
मुज मनवांछित पूरजो, वहाला सीमंधरनाथ... मन....

राजकोट से विहार करके, गोंडल होकर माघ शुक्ल षष्ठी को वडिया पधारते हैं। यहाँ वीतरागता के उपासक गुरुराज के मंगल हस्त से श्री समयसारजी की स्थापना होती है। यहाँ से अष्टमी के दिन जेतपुर पदार्पण होने पर मुमुक्षु, जिनमन्दिर निर्माण की भावना भाते हैं। तत्पश्चात् वड़ाल होकर माघ शुक्ल दशमीं के दिन, गिरनारजी सिद्धक्षेत्र की दूसरी बार यात्रा के लिए जूनागढ़ पधारते हैं।

वीतरागदेव के भक्त गुरुवर्य का आगमन होने पर भक्तजन उमंग से भावभरा स्वागत करते हैं और भक्तों को भगवान कहकर बुलानेवाले गुरुराज मांगलिक फरमाते हैं : ‘श्री नेमिनाथ भगवान का आत्मा द्रव्यमंगल है। तीर्थङ्कर होनेवाला प्रत्येक आत्मा अनादि

–अनन्त मंगलरूप होता है। नेमिप्रभु के तीन कल्याणक यहाँ हुए हैं; इसलिए यह गिरनार तीर्थ क्षेत्रमंगल है। जिस समय उनके कल्याणक हुए वह कालमंगल है और जो वीतरागदशा प्रगट हुई वह भावमंगल है। जिस भाव से भगवान को मुनिपना, केवलज्ञान तथा मोक्षदशा प्रगट हुई, उस भाव को पहचानकर, अपनी आत्मा में भी वैसा भाव प्रगट करना वह अपूर्व मंगल है और वही परमार्थ यात्रा है।'

जूनागढ़ शहर के जिनमन्दिर में दर्शन के बाद, दोपहर में सुन्दर शैली से अद्भुत प्रवचन होता है। जिसे सुनने के लिए डेढ़ से दो हजार जिज्ञासु जनता उमड़ती है। सायंकाल गुरुवर शहर से तलहटी की ओर विहार करते हैं। शीघ्र दौड़कर प्रभु के पवित्र–धाम का साक्षात्कार करें — ऐसी उत्कृष्ट भावना से अनेक भक्त भी भक्तिगीत गाते–गाते साथ चलते हैं। जैसे–जैसे गिरिराज समीप आता है, वैसे–वैसे मानो कि उसे प्रदक्षिणा देते हों — ऐसा लगता है। रमणीय उर्जयन्त पर्वत को देखते ही भगवान नेमिनाथ का समग्र जीवन नजर समक्ष तैरता है और भावना की उर्मियाँ आकाश की ऊँचाई मापती हैं। पर्वत के ऊँचे–ऊँचे शिखर, मानो परमात्मा के बहुमूल्य जीवन के गुणगान उन्नत मस्तक से गाते हों — ऐसा दिखता है। तलहटी में पहुँचकर धर्मशाला में रात्रि–चर्चा रखी जाती है।

माघ शुक्ल एकादशी के प्रातःकाल तलहटी के जिनमन्दिर के दर्शन करके नेमिप्रभु की जयकार गुँजाते हुए एक हजार भक्तों के समुदाय के साथ, बालब्रह्मचारी गुरुवर्य ब्रह्मचर्य के उत्कृष्ट प्रतीकरूप बालब्रह्मचारी नेमिनाथ का साक्षात्कार करने, यात्रा का प्रारम्भ करते हैं। पर्वत पर चढ़ते समय पद–पद पर प्रभु के वैराग्यमय स्मरण जागृत होते हैं। गुरुवर भी महिमाभीने हृदयोद्‌गार द्वारा गिरनार से निर्वाणप्राप्त नेमिप्रभु तथा शम्बूकुमार, प्रद्युम्नकुमार, अनिरुद्धकुमार आदि मुनिवरों के ज्ञान–वैराग्यमय पावन जीवन का तथा गिरनारगिरि को स्वयं के पवित्र चरण–कमल से निर्मल करनेवाले श्री धरसेनाचार्य और श्री कुन्दकुन्दाचार्य का स्मरण कराते हैं। जिसे सुनने से यात्रियों को मोक्ष के उत्तम पंथ में विचरण करने की मंगल प्रेरणा जागृत होती है। मोक्षमार्ग पर अडिगरूप से खड़े रहकर तत्त्व का हार्द खोलनेवाले गुरुदेवश्री के साथ यात्रा करने का भक्तों को ऐसा उल्लास है कि थकान भूल जाते हैं और उत्साहपूर्वक सब पहली टोंक पर पहुँचते हैं।

पहली टोंक पर पहुँचते ही जिनमन्दिर में पूजन–भक्ति होते हैं। स्वानुभवभीनी आत्मसाधना साधनेवाले गुरुराज स्तवन गवाते हैं :

गिरिनगरना वासी नेम जिणंदजी, थयां प्रभुनां कल्याणिक त्रण गिरनार जो;
तुज दर्शनथी मारूँ मन प्रसन्न थयुं, पूरो प्रभुजी शिवपुरनी मुज आश जो....

स्तवन के बाद स्वयं गुरुदेवश्री, नेमिप्रभु की जय बुलाते हैं।

दोपहर को संघसहित, चैतन्य की अनुपम महिमा बतलानेवाले गुरुवर्य, श्री नेमिनाथ की दीक्षा और केवलज्ञानकल्याणक भूमि सहस्राम्रवन की यात्रा को पधारते हैं। दीक्षा –स्थान के दर्शन होते ही वैराग्यभीने चित्त में से उपशमरस भरपूर भक्ति का अनुपम प्रवाह बहता है :

गिरनार गिरिना वासी जिनने क्रोड़ो प्रणाम, प्रभु ने क्रोड़ो प्रणाम....

आत्मिक दान जिणंदे दीधुं, सहसावनमां संयम लीधुं;
पाम्या केवलज्ञान, जिनने क्रोड़ो प्रणाम....

भव भ्रमणा दुःखथी प्रभु थाक्यो, मोक्षसुख प्रभु निकट आयो;
हवे नथी कांई वार, जिनने क्रोड़ो प्रणाम....

तथा

म्हारा नेम पिया गिरनारी चाल्या, मत कोई रोक लगाज्यो;
लार लार संयम मैं लेस्युं, मत कोई प्रीत बढाज्यो....

साजन त्यागो पापयुत, देख जगत व्यवहार;
राज ताज कुल संपदा, मन में दया विचार;
म्हारा माथा में साथणिया, कोई मत सिंदूर लगाज्यो....

भोग रोग की खान है, भोग नरकको द्वार;
जो जीत्यो ईह भोगनें, तिर गयो भवदधिपार;
ओ मन भोली अनजान, जोगकी रीत निभाज्यो....

धन्य धन्य जिन जोग ले, द्वादशांग तप धार;

कर्म काट शिवपुर गये, नमों जगत हितकार;
यो नरभव को सौभाग्य सजनी, तप कर सकल बनाज्यो....

तथा मुनिराज की भक्ति की यह पंक्ति गवाते हैं :

वे गुरु चरण जहाँ धरै, जग में तीरथ जेह;
सो रज मम मस्तक चढो, भूधर मांगे ऐह....
ते गुरु मेरे मन बसो....

अन्त में उल्लास में आकर गुरुराज, भगवान नेमिनाथ का जयकार गुंजाते हैं। भक्त विचार करते हैं : हे नाथ! आपने विवाह के समय भी वैराग्य धारण करके वीतरागता सारभूत है — ऐसा सन्देश जगत को दिया है। तथा आपश्री के केवलज्ञानकल्याणक प्रसंग पर इन्द्रों ने आकर सोने के गढ़वाले समवसरण की रचना यहाँ की थी उसकी मानो कि साक्षी देता हो, वैसे गिरनार पर्वत के पत्थर आज भी स्वर्णरज से चमक रहे हैं।

रात्रि को पहली टोंक पर चर्चा के समय सौराष्ट्र के सन्त, सौराष्ट्र के नाथ और सौराष्ट्र के तीर्थ गिरनार की महिमा बतलाते हैं और फरमाते हैं : 'नेमिप्रभु के तीन कल्याणक की भूमि तो यह है ही, तदुपरान्त श्रुतज्ञान की परम्परा टिकी रही उसका स्थान भी यही है। श्री धरसेनाचार्य ने यहाँ ही दो मुनिवरों को ज्ञान दिया था, जिसमें से षट्खण्डागम की रचना हुई। इस प्रकार देव-शास्त्र-गुरु इन तीनों के योग से यह भूमि-तीर्थ पवित्र है।'

माघ शुक्ल द्वादशी : श्री नेमिनाथ का निर्वाणधाम पाँचवीं टोंक की यात्रा करने के लिए महिमावन्त गुरुदेवश्री भक्तों के साथ प्रातःकाल प्रयाण करते हैं। भगवान उत्कृष्ट सिद्धदशा प्राप्त हुए होने से गिरनारजी का शिखर / पाँचवीं टोंक भी मानो गौरवान्वित हो — ऐसे उन्नतरूप से दिखायी देता है। वह भव्यों को पुकारता हुआ कहता है कि यहाँ आओ... आओ... सिद्धिधाम के दर्शन करने यहाँ आओ।

पाँचवीं टोंक पर पहुँचकर प्रथम पूजन और भक्ति होती है। तत्पश्चात् आत्मसाधना का उत्साह जगानेवाले, दिशा बतलानेवाले तथा पुरुषार्थ प्रगट करानेवाले गुरुवर्य समयसारजी की 38 वीं गाथा की अध्यात्ममय धुन एकतार लीनता से गवाते हैं :

हूँ एक शुद्ध सदा अरूपी, ज्ञानदर्शनमय खरे;
कंई अन्य ते मारूँ जरी, परमाणु मात्र नथी अरे!....

अध्यात्मरस में भीगे हुए भक्त, उमंग से इस धुन को झेलते हैं और नेमिप्रभु को कैसा आत्मा अनुभव में आया था, उसका चित्रण दृष्टिगोचर होता है।

आनन्ददायी धुन के बाद अनुपम साधक गुरुदेवश्री मंगलवाणी बरसाते हैं : 'भगवान नेमिनाथ यहाँ से मोक्ष प्राप्त हुए हैं। अनादि संसार का अन्त और अपूर्व सिद्धदशा की शुरुआत इस स्थान से हुई है।' हाथ ऊँचा करके त्रिकाल मंगलस्वरूप गुरुवर बतलाते हैं : 'देखो! यहाँ से समश्रेणी में — ठीक ऊपर—सिद्धालय में भगवान का आत्मा पूर्णानन्द में विराजमान है। अहो! धन्य यह निर्वाणभूमि! यहाँ भगवान के असंख्य प्रदेश शुद्ध हुए। धन्य उस आत्मद्रव्य को, धन्य इस क्षेत्र को, धन्य उस काल को और धन्य उस पवित्र भाव को।' इस प्रकार सबको भगवानस्वरूप जाननेवाले गुरुवर्य भावनाभरा वर्णन करते हैं, जिसे सुनकर समस्त भक्तजन आनन्द से गद्गद् हो जाते हैं। मानो हम सिद्धों के बीच ही बैठे हों — ऐसी कृतकृत्यता का भक्त अनुभव करते हैं। अहो! भावना का यह अनुपम वातावरण यात्रियों के हृदयपटल में अमिटरूप से उत्कीर्ण हो जाता है।

पावन सिद्धभूमि में सिद्धप्रभु का पावन स्मरण और अपूर्व महिमा कर-कराके सिद्धपद के साधक गुरुदेवश्री 'अपूर्व अवसर' में से वैराग्यभाव से सिद्धदशा प्राप्ति की भावना में सबको झूलाते हैं :

अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे?
क्यारे थईशुं बाह्यांतर निर्ग्रंथ जो?
सर्व संबंधनुं बंधन तीक्ष्ण छेदीने,
विचरशु कव महत्पुरुषने पंथ जो ...... अपूर्व अवसर ......

मन वचन काया ने कर्मनी वर्गणा,
छूटे जहाँ सकल पुद्गल संबंध जो;
एवुं अयोगी गुणस्थानक त्यां वर्ततुं,
महाभाग्य सुखदायक पूर्ण अबंध जो ...... अपूर्व अवसर ......

एक परमाणुमात्रनी मले न स्पर्शता,
पूर्ण कलंकरहित अडोल स्वरूप जो;
शुद्ध निरंजन चैतन्यमूर्ति अनन्यमय,
अगुरुलघु अमूर्त सहजपदरूप जो.... अपूर्व अवसर......

पूर्व प्रयोगादि कारणना योगथी,
ऊर्ध्वगमन सिद्धालय प्राप्त सुस्थित जो;
सादि अनंत अनंत समाधिसुखमां,
अनंत दर्शन, ज्ञान अनंत सहित जो.... अपूर्व अवसर......

जे पद श्री सर्वज्ञे दीठुं ज्ञानमां,
कही शक्या नहीं पण ते श्री भगवान जो;
तेह स्वरूपने अन्य वाणी ते शुं कहे ?
अनुभवगोचर मात्र रह्युं ते ज्ञान जो.... अपूर्व अवसर......

एह परमपद प्राप्तिनुं कर्युं ध्यान में,
गजा वगर ने हाल मनोरथरूप जो;
तोपण निश्चय राजचंद्र मनने रह्यो,
प्रभुआज्ञाए थाशुं ते ज स्वरूप जो.... अपूर्व अवसर......

पूर्णता की भावना प्रवाहित कर गुरुराज, संघसहित पहली टोंक पर पधारते हैं और उमंग-उल्लासभरी यात्रा की प्रसन्नता से समस्त भक्त आनन्द-उत्साह से नाच उठते हैं।

दोपहर को, जिस चन्द्रगुफ़ा में श्रुतज्ञाता श्री धरसेनाचार्य ध्यान धरते थे और दो मुनिवरों को श्रुतज्ञान प्रदान किया, उस पवित्र स्थान पर गुरुदेवश्री पधारते हैं। फिर लगभग दो बजे महापवित्र गिरनारजी उतरने का प्रारम्भ करते है और तलहटी में पदार्पण होता है। इस मंगलकारी यात्रा की फिल्म बनायी जाती है।

माघ शुक्ल त्रयोदशी : सवेरे तलहटी के जिनमन्दिर में विशिष्ट भक्ति होती है, जिसमें जिनवरभक्त गुरुराज भक्तिरस बहाते हैं :

हे जिनराज तुमारा चरण कमलनी पूजना,
हृदय उलसित थाय के भाग्य मानुं धणुं रे....
दर्शन ताहरा प्रभु अनंत मोंघा मूलना,
आप कृपाए वरस्या अमृत मेहुला रे....
धन्य दिवस ने धन्य कृतार्थ हुं आज जो,
जय जय वर्तो जगगुरु तणी सेवना रे....

★ ★ ★

जब चले गये भरथार, मेरे गिरनार, हे मेरी सहेली!
मैं क्यों कर रहूँ अकेली....
लो आभूषण नहीं भाते हैं, ये पियु बिन नहीं सुहाते हैं;
जब नव भव के साथीने दीक्षा लेली, मैं क्यों कर रहूँ अकेली....
गिरनारी मैं भी जाऊँगी, शिवपुर में चित्त लगाऊँगी;
मैं संयम धार करूं तप से अठखेली, मैं क्यों कर रहूं अकेली....
जो उनके मन में भाया है, मेरे भी वही समाया है;
लूं सुलझा वृद्धि उलझी कर्म पहेली, मैं क्यों कर रहूँ अकेली....

भावभरी भक्ति पूर्ण होने पर उत्साह से स्वयं गुरुदेवश्री जय बुलवाते हैं और भक्त झेलते हैं : 'बोलो, भगवान नेमिनाथ प्रभु के तीन कल्याणक हुए उस द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की जय हो...'

भक्ति के बाद भक्तों सहित अनुपम आदर्श गुरुदेवश्री जूनागढ़ पधारते हैं। दोपहर को शहर के जिनमन्दिर में गुरुवर्य भक्ति कराते हैं। पूज्य बहिनश्री बेन भी भक्ति कराती हैं और अन्त में धुन द्वारा गिरनार यात्रा का उल्लास व्यक्त करके, बारम्बार ऐसी यात्रा हो — ऐसी भावना प्रसिद्ध करती हैं। तथा सौराष्ट्र के तीर्थों की यात्रा हुई, अब शाश्वत तीर्थराज सम्मेदशिखरजी इत्यादि भारतभर के तीर्थों के दर्शन कराओ — ऐसी प्रार्थना भी धर्म-धुरन्धर गुरुदेवश्री को करती हैं। तत्पश्चात् सत्यशोधक आत्मार्थियों के हृदय-आश्रय गुरुराज का प्रवचन होता है, जिसका अनेक गणमान्य व्यक्ति लाभ लेते हैं।

अन्त में अनुपम यात्रा की खुशहाली में श्री जिनेन्द्रदेव की रथयात्रा निकलती है। अति शोभायमान और प्रभावक रथयात्रा में भक्तों को बहुत ही उत्साह-उमंग है। ऐसी उल्लासभरी यात्रा, उसमें उत्कृष्ट उत्साह से उछलती भक्ति और अन्त में उत्तम उमंग से छलकती रथयात्रा जूनागढ़ के इतिहास में कदाचित् ही हुई होगी। रथयात्रा की असाधारण भव्यता देखकर गाँव के लोग आश्चर्यचकित रह जाते हैं। धर्मशाला के मुनीमजी कहते हैं : 'अहो! ऐसी रथयात्रा और अद्‌भुत भक्ति हमने कभी नहीं देखी; पहली बार ही देखी।'

शहर के मुख्य मार्गों पर घूमकर रथयात्रा जिनमन्दिर में आती है। भक्तों के आधार गुरुदेवश्री ने अनुपम यात्रा करायी इस उपकारवश सहजरूप से किसी विरल पल में ही देखने को मिले — ऐसी अचिन्त्य भक्ति उछलती है। मानो कि नेमिप्रभु साक्षात् पधारकर सन्मुख विराजमान हों और पूज्य बहिनश्री बेन हृदय की भक्तिरूपी वीणा बजाती हों — ऐसा वातावरण सृजित होता है। भक्तों के अन्तर में भगवान के प्रति कैसी अलौकिक उपकारभावना होनी चाहिए उसका वास्तविक ख्याल इस समय आता है।

इस प्रकार माघ शुक्ल 10 से 13 तक चार दिन श्री नेमिनाथ के तीन कल्याणक से पवित्र ऐसी इस भूमि में यात्रा-उत्सव मनाया गया। इस अद्‌भुत यात्रा से भूतकाल में श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने संघसहित गिरनारजी की जो महान यात्रा की थी, वह कैसी भव्य-उत्तम होगी उसका अनुमान सहज आता है।

माघ शुक्ल चतुर्दशी : जूनागढ़ से विहार करके, विषम काल में जिनका योग परम सौभाग्य से हुआ है — ऐसे समर्थ गुरुदेवश्री, अध्यात्मवाणी की मधुर वर्षा बरसाते -बरसाते वंथली, माणावदर, और राणावाव पधारते हैं। राणावाव में 'श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी' पर भाववाही प्रवचन होते हैं।

जैसे गुरुराज की पवित्र मुखमुद्रा चैतन्यतेज से चमकती है, वैसे आपश्री की अपूर्व वाणी में आत्मिक शौर्य उछलता दिखता है। अनुपम गुरुवाणी कोई अलौकिक चमत्कृति से भरी हुई शौर्यप्रेरक है, आत्मवीर्य से उछल रही है। और यदि वाणी में उग्र वीर्य-तेज है तो परिणति में पुरुषार्थ का कैसा दिव्य प्रवाह होगा? अहो! जो कोई पात्र होकर इस वाणी को झेलता है, उसका चैतन्यवीर्य-शौर्य उछले बिना नहीं रहता। इस दिव्य गुरु-ध्वनि ने तो अनेक सुपात्र श्रोताओं को सन्मार्ग में स्थापित किया है। स्वरूपबोधक यह गुरुवाणी

मोहाग्नि में जल रहे अनेक जीवों को शीतल समाधिसुख का पंथ बतलाती है। भिन्न-भिन्न भूमिकावाले समस्त आत्माओं को अपनी-अपनी पात्रता अनुसार उसमें से बहुत कुछ मिलता है। जो कोई आत्मार्थी निज पर्याय में सम्यक्श्रद्धा जन्म न ले तब तक गुरुवचन सुनने का और समझने का प्रयत्न-पुरुषार्थ किया ही करता है, वह अल्प काल में अनन्त दु:ख के कारणभूत मिथ्यात्व को भेदकर मोक्षपंथ में प्रवेश पाता है।

जैसे तीर्थंकरों द्वारा जगत को प्रदत्त अमूल्य भेंट अर्थात् जिनवाणी, उसी प्रकार महावीर उपासक गुरुदेवश्री द्वारा भक्तों को प्रदत्त अमूल्य भेंट अर्थात् गुरुवाणी — जिसके शब्द-शब्द में आत्मिक आनन्द का झरना बहता है; आत्मिक उल्लास की प्रेरणा मिलती है; आत्मकल्याण की झनकार बजती है; परम सत्य की घोषणा होती है और जैन-सिद्धान्तों का पुनीत प्रवाह बहता है। पात्र जीवों को प्रभुता दिखानेवाली इस अपूर्व वाणी का और मोक्षमार्ग में केलि करनेवाले गुरुवर का उपकार कैसे व्यक्त किया जा सके? कैसे वर्णन किया जा सके? चलो, उस विराट वाक्गंगा में से अल्प आचमन करें :

1. कुआँ हो या सागर, पानी तो घड़े जितना ही मिले; उसी प्रकार पुण्य के उदय जितनी ही अनुकूलता मिले, तृष्णा जितनी नहीं।
2. दृष्टि में परिपूर्ण स्वभाव का जोर, पुरुषार्थ की कमजोरी का स्वामित्व नहीं होने देता।
3. स्वरूप के अज्ञान के कारण परवस्तु में सुखबुद्धि होना महा-अपराध है।
4. बहादुर का बेटा भव का भाव कर-करके, भव में भटक रहा है।
5. क्रमबद्धपर्याय के ज्ञान का फल स्वलक्ष है।
6. निमित्त के लक्ष से बन्धन, उपादान के लक्ष से मुक्ति।
7. एक बार जीते-जी मरने जैसा है।
8. आत्मस्वाधीनता की समझ ही मिथ्यात्वरूप महा-दोष के नाश का एकमात्र उपाय है।
9. सन्मार्ग को और असत्मार्ग को समान जानना वह साम्यभाव नहीं; अज्ञान है।

10. आत्मकल्याण के लिए जगत की दरकार छोड़ देना चाहिए।

11. निमित्त के अभाव में मुक्तिमार्ग का अभाव नहीं, परन्तु उपादान की जागृति के अभाव में उसका अभाव है।

12. धर्म समझने के लिए अधिक बुद्धि की आवश्यकता नहीं, यथार्थ रुचि की आवश्यकता है।

13. शास्त्रों का तात्पर्य और सन्तों का फरमान : वीतरागता।

फाल्गुन कृष्ण चतुर्थी : अपूर्व कल्याणमार्ग दातार गुरुवर्य का पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के प्रसंग पर पोरबन्दर में मंगल पदार्पण होता है। यहाँ मूलनायक तथा विधिनायक श्री पार्श्वनाथ ही हैं। उमराला, जेतपुर, वडिया, अहमदाबाद और मुम्बई से कुल ग्यारह जिनबिम्ब प्रतिष्ठा के लिए पधारते हैं। फाल्गुन शुक्ल तृतीया को नूतन जिनमन्दिर में उत्साहपूर्वक जिनभगवन्तों को विराजमान किये जाते हैं। फाल्गुन शुक्ल पंचमी तक पोरबन्दर में विराज कर, षष्ठी के दिन अध्यात्मविज्ञानी गुरुराज जामनगर की ओर प्रयाण करते हैं।

फाल्गुन शुक्ल चतुर्दशी : निज कल्याणार्थ जीवन जीनेवाले गुरुदेवश्री 19 वर्ष पश्चात् जामनगर को पावन करते हैं और सात दिन विराजते हैं। यहाँ समयसार की चौहत्तरवीं गाथा पर प्रभावशाली प्रवचन होते हैं। एक दिन जामसाहिब के आमन्त्रण से उनके बंगले पर चैतन्यमस्ती से भरपूर साधना करनेवाले गुरुदेवश्री पधारते हैं और पन्द्रह मिनट उपदेश देते हैं कि 'यह बाह्य का साम्राज्य सच्चा नहीं है; अनन्त गुणमय आत्मा ही सच्चा-यथार्थ साम्राज्य है।'

जामनगर से चैत्र कृष्ण षष्ठी को विहार करके ध्रोल होकर चैत्र कृष्ण द्वादशी को मोरबी में आगमन होता है। मोरबी के पास के सनाला गाँव का एक प्रसंग देखते हैं। यहाँ शक्तिदेवी का एक मन्दिर है। स्वानुभवपरिणत गुरुदेवश्री आहार करके घूमते-घूमते इस मन्दिर के पास आने पर उसके बाबाजी कहते हैं : 'पधारो! पधारो महाराज!' फिर कहते हैं : 'ईश्वर को भी शक्ति के बिना नहीं चलता और वह हमारी यह शक्तिदेवी है।' अध्यात्मरंग से रंगी हुई वाणी बरसानेवाले गुरुवर्य कहते हैं : 'भाई! शक्तिदेवी है अवश्य,

परन्तु यह नहीं; अन्तर आत्मा में ज्ञान, दर्शन आदि अनन्त शक्तियाँ हैं वही सच्ची शक्तिदेवी है और आत्मा उस शक्तिदेवी का मन्दिर है। तथा भगवान आत्मा, जो कि ईश्वर है, उसे उसकी गुणरूप शक्ति के बिना नहीं चलता — ऐसी बात है।' कोई भी बात हो, अध्यात्म के साथ उसका सुमेल करके बताना यह गुरुवर की अनोखी कला है न!

मोरबी में दशमी से ही प्रतिष्ठामण्डप 'महावीर नगर' में विधि-अध्यक्ष जिनेन्द्रदेव को विराजमान करके, पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव की शुरुआत हो जाती है। आठ से दस हजार जिज्ञासु प्रतिष्ठा महोत्सव का लाभ लेते हैं। श्री महावीरप्रभु मूलनायक तथा विधिनायक हैं। मुम्बई, मथुरा इत्यादि नगरों से कुल दस प्रतिष्ठेय भगवन्त पधारते हैं। चैत्र शुक्ल दूज को आनन्दपूर्वक पवित्र गुरु कर-कमलों से जिनबिम्ब प्रतिष्ठा होती है। चैत्र शुक्ल पंचमी तक मोरबी में विराजकर, सप्तमी को वांकानेर की ओर विहार करते हैं।

चैत्र शुक्ल अष्टमी : अपूर्व जिनका प्रभावनायोग है ऐसे गुरुवर्य, कदम-कदम पर जिनशासन का प्रभाव फैलाते हुए - जैनधर्म का महान उद्योत करते हुए — वांकानेर पधारते हैं। कल से ही यद्यपि प्रतिष्ठामण्डप 'वर्धमान नगर' में विधि-अध्यक्ष प्रभुजी पधारने से पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का शुभ प्रारम्भ हो चुका है। बोटाद, जोरावरनगर, मुम्बई, किशनगढ़ इत्यादि नगरों की कुल दस प्रतिमाएँ प्रतिष्ठा के लिए पधारती हैं। यहाँ विधिनायक श्री नेमिनाथ हैं और चैत्र माह के पर्यूषणपर्व के उत्तम आकिंचन्य दिन अर्थात् चैत्र शुक्ल त्रयोदशी (द्वितीय) को अर्थात् महावीर जन्मकल्याणक के मंगल अवसर पर मूलनायक श्री महावीरप्रभु आदि भगवन्त जिनमन्दिर में विराजमान होते हैं। पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव पूर्ण करके ज्ञान-ध्यानरत गुरुराज चैत्र शुक्ल चतुर्दशी को वढ़वाण की ओर विहार करते हैं।

जिनका आश्चर्यकारी प्रभावना-उदय वर्त रहा है ऐसे कल्याणबोधक वाणी बरसानेवाले गुरुराज के पुनीत प्रताप से सौराष्ट्रभर में जैनशासन का जयनाद-जयकार गूँज रहा है, महान प्रभावना हो रही है और नित नये-नये मंगल महोत्सव मनाये जा रहे हैं। सौराष्ट्र के भक्तजनों को जिनेन्द्र भगवन्तों का साक्षात्कार हो रहा है और पञ्च कल्याणक जैसे अद्‌भुत महोत्सव मनाने का महान सौभाग्य प्राप्त हुआ है। देखो न! मात्र चालीस दिन

में ही तीन पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठाएँ हुई हैं। थोड़े वर्ष पहले दिगम्बर धर्म क्या है उसका सौराष्ट्र के लोगों को पता ही नहीं था, परन्तु अब उसके बदले आत्माभिमुख ऐसे गुरुवर के अलौकिक धर्मप्रभाव से जगह-जगह दिगम्बर जैनधर्म के गहरे बीज रोपे जा रहे हैं। नये-नये मन्दिरों के कारण सौराष्ट्र एक तीर्थधाम बन गया है और मंगल धर्मप्रभावना दिन-प्रतिदिन वृद्धिंगत होती जा रही है।

वैशाख कृष्ण चतुर्थी : आज तत्त्वतलस्पर्शी वाणी बरसानेवाले गुरुराज का वढ़वाण में आगमन होता है। यहाँ वैशाख कृष्ण षष्ठी से अष्टमी तक वेदी-प्रतिष्ठा महोत्सव मनाया जाता है। पूज्य बहिनश्री के जातिस्मरणज्ञान प्राप्ति के दिन जिनमन्दिर में मूलनायक विदेहीनाथ श्री सीमन्धरप्रभु आदि भगवन्त विराजमान होते हैं। अध्यात्मसिंह-पुरुष गुरुदेवश्री सात दिन वढ़वाण में विराजकर एकादशी को विहार करते हैं और जोरावरनगर को पावन करते हैं। वहाँ से दूसरे दिन अर्थात् द्वादशी को विहार करके सुरेन्द्रनगर पधारते हैं।

सुरेन्द्रनगर में वैशाख कृष्ण अमावस्या से वैशाख शुक्ल तृतीया तक श्री शान्तिनाथप्रभु का वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव मनाया जाता है। जिस दौरान समयसारजी की तेरहवीं गाथा पर तत्त्व को स्पष्ट, सरल, सुगम रीति से समझाते हुए प्रवचन होते हैं।

वैशाख शुक्ल दूज के मंगल-पावन दिन अध्यात्म का प्रबल आन्दोलन फैलानेवाले गुरुवर्य का 65 वाँ जन्मोत्सव भक्तों की भव्य भक्तिसहित मनाया जाता है।

अहो! धन्य वह वैशाख शुक्ल दूज, उमराला नगरी और माता उजमबा! कि जिन्होंने कहान गुरुदेवश्री जैसे धर्मरत्न को जन्म देकर अनाथ आत्मार्थियों को सनाथ किया। भारत के भव्य जीव भान भूलकर भूले पड़े थे, सन्त की छाया के बिना निराधार बने थे, ऐसे समय में भाग्यवान जीवों का उद्धार करने को, अन्तर-बाह्य पवित्र जीवन जीनेवाले गुरुवर्य का अवतार हुआ। अप्रतिहत मुक्तिमार्ग में नि:शंकरूप से विचरते हुए गुरुराज उसी ही मार्ग पर भक्तों को ले जा रहे हैं कि तुम निर्भय होकर इस मार्ग पर चले आओ।

हे गुरुवर! आपश्री के पुनीत प्रभावनायोग से आज सौराष्ट्र में वीतराग दिगम्बर धर्म का एक अमिट आन्दोलन व्याप्त हो गया है। जिस प्रभावना का मंगल कार्य भगवंत श्री

कुन्दकुन्दाचार्य ने गिरनार पर किया था, वैसा ही सनातन सत्यमार्ग की प्रसिद्धि का महिमावन्त कार्य आपश्री के द्वारा हो रहा है। जहाँ अन्यमार्ग की अधिकता है और वीतराग दिगम्बर मार्ग का नाम भी कोई नहीं जानता — ऐसी इस भूमि में स्वानुभवभीनी सम्यक्वाणी द्वारा दिगम्बर धर्म की सनातन सत्यता सिद्ध करके, हजारों नामधारी जैनों की तथा अजैनों की श्रद्धा में आमूल परिवर्तन सहजरूप से तथापि चमत्कारिक रीति से आपश्री कर रहे हैं। गाँव-गाँव में जिनमन्दिर का निर्माण, उसमें जिनेन्द्रदेव की प्रतिष्ठा तथा जिनवाणी के प्रकाशन द्वारा आपश्री ने दिगम्बर जैनधर्म की बुझती ज्योति को फिर से प्रज्वलित की है, मार्ग का पुनः उद्धार किया है। हे गुरुवर! आपश्री का यह कार्य आचार्यवर श्री नेमिचन्द्रदेव के 'प्रभावना स्वर्णयुग' का स्मरण कराता है। वाह! कैसा तीर्थंकर-आचार्यतुल्य आपश्री का अद्भुत विस्मयकारी उत्तम सहज प्रभावनायोग!!

हे गुरुदेव! हम भक्तों को जगत के किन्हीं भी विषयों की आकांक्षा-अभिलाषा नहीं है, माँग नहीं है। बस, इतना माँगते हैं कि हमारे जो कोई अल्पभव रहे हैं उनमें आपश्री के चरण-कमल की सेवा ही हो। आपश्री के चरण की रज बनकर रहें यही माँग है। 'मागुं आदरवृद्धि तोय तुझमां ए हार्दनी लागणी।'

हे शिवपंथी गुरुराज! हम बालकों को भयानक भववन में महत् पुण्ययोग से आपश्री जैसे पथदर्शक का साक्षात्कार हुआ उससे उत्तम वस्तु जगत में कौन सी है, जिसकी हम आशा करें? माँग करें? तथापि कोई और अधिक माँगने को कहे तो, आपश्री के प्रति अहोभाव-आदरभाव-भक्तिभाव हमारे हृदय में वृद्धिंगत हो — यह हमारी अन्तर्गत भावना है। इसके अतिरिक्त इस विश्व में माँगने जैसा दूसरा है भी क्या? अन्तर में एक ज्ञायकदेव और बाहर में विकल्प के काल में एक आपश्री-बस, यही हमें प्राप्त हो। इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ हमें नहीं चाहिए, दूसरा हमें हो भी नहीं।

अहो! जिनके उपयोगरूपी झरने अमृतमय हैं, तत्त्वज्ञान से छलकती जिनकी वाणी है और ज्ञान-वैराग्यमय पवित्र साधना द्वारा जो चैतन्य-नन्दनवन में विचरते-विहरते हैं — ऐसे इस सन्त के जन्म-महोत्सव मनाने को मिलें यह भी महाभाग्य है।

— इस प्रकार, भक्तिभावनापूर्वक भक्त गुरु जन्म-जयन्ती मनाते हैं।

सुरेन्द्रनगर में सात दिन विराजकर, चैतन्यस्पर्शी वाणी सुनानेवाले गुरुदेवश्री वैशाख शुक्ल पंचमी को विहार करते हैं। केराला, लींबडी, चूड़ा होकर वैशाख शुक्ल दशमीं को राणपुर को पावन करते हैं। यहाँ एकादशी से त्रयोदशी तक वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव आयोजित किया जाता है। अन्तिम दिन मूलनायक श्री महावीरप्रभु आदि भगवन्तों की प्रतिष्ठा गुरुवर के पावन हस्त से होती है। यहाँ सात दिन तक भवभयभेदिनी वाणी द्वारा श्री 'पद्मनन्दिपंचविंशति' का 'निश्चय पंचासत्' अधिकार समझाकर, ज्येष्ठ कृष्ण दूज को बोटाद की ओर प्रयाण करते हैं।

ज्येष्ठ कृष्ण तृतीया : जिनका अपूर्व वचनयोग है — ऐसे गुरुराज का बोटाद में आगमन होने पर भक्त स्वागत करते हैं। यहाँ पंचमी से सप्तमी तक वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव मनाया जाता है। अन्तिम दिन मूलनायक श्री श्रेयांसनाथ आदि भगवन्तों को जिनमन्दिर में विराजमान किया जाता है।

यहाँ वीरचन्दभाई डगली कहते हैं : 'देव-शास्त्र-गुरु तो शुद्ध हैं, फिर भी पर हैं ?' उत्तर मिलता है : 'हाँ भाई! लाख बार पर हैं, वे स्वद्रव्य नहीं हैं; क्योंकि उनके लक्ष से विकार ही होता है, वीतरागता नहीं।' तथा नागरभाई के भाई हरजीवनभाई कहते हैं : 'महाराज! आप कहते हो कि आत्मा ने पर के बिना चलाया है, परन्तु क्या पैसे के बिना चलता है ?' समाधान कराते हुए अद्‌भुत प्रभावशाली गुरुवर्य फरमाते हैं : 'भाई! तुम यह क्या कहते हो ? देखो! एक बात सुनो! इस अंगुली में दूसरी अंगुली का अभाव है। अरे! दूसरी अनन्त चीजों का इसमें अभाव है। इसका अर्थ यह हुआ कि इस अंगुली ने दूसरे के बिना ही चलाया है, दूसरे के बिना ही यह टिक रही है। यह अपने से भावरूप है और दूसरे से अभावरूप है। ठीक ? इसी प्रकार इस आत्मा में पैसे का अभाव है; इसलिए उसने पैसे के बिना ही चलाया है। अरे! राग के बिना भी चलाया है। हाँ, आत्मा ने अपने अस्तित्व के बिना नहीं चलाया।' अहो! न्यायपूर्ण बात का निषेध कौन कर सकता है ? कैसे कर सकता है ?

बोटाद में छह दिन तक विराजकर, नवमी के दिन विहार करके दशमीं को वींछिया पधारते हैं। यहाँ चार दिन — ज्येष्ठ कृष्ण त्रयोदशी तक—रुककर, उमराला की ओर प्रस्थान करते हैं।

ज्येष्ठ शुक्ल दूज : कल्याणकारिणी वाणीदाता गुरुदेवश्री का जन्मधाम उमराला में आगमन होता है। यहाँ ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी – श्रुतपंचमी के मंगल पर्व – तक चार दिन के निवास के दौरान, दूज से चतुर्थी तक तीन दिवसीय वेदीप्रतिष्ठा महोत्सव आयोजित किया जाता है।

ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्थी : आज भक्तों का उत्साह उछल पड़ता है, क्योंकि एक तो साक्षात् उपकारी कहान गुरुराज का जन्मधाम और उसमें भी प्रशान्त मुद्राधारी परमोपकारी विदेहीनाथ का पदार्पण। जिस घर में गुरु जन्मे, उस घर में प्रभु विराजे! जहाँ विदेह से गुरु पधारे, वहाँ विदेहीनाथ पधारे!! इसलिए भक्ति-उमंग का क्या कहना? सीमन्धर लाडले –लघुनन्दन गुरुवर्य, अनन्त उपकारी सीमन्धर भगवान को अन्तर के पूर्ण उल्लसित भाव से जिनमन्दिर में विराजमान करते हैं और रत्नों द्वारा बहुमान करते हैं। अहो! भक्त के आँगन में भगवान पधारे! सेवक को हृदय के हार परमात्मा मिले! रंक को तारणहार प्रभु मिले! गुरु के आँगन में परमेश्वर आये!! यह अनुपम प्रसंग देखने का सौभाग्य जिनके ललाट में लिखा है, उन सर्व पुण्यवन्त जीवों के हृदय आनन्द-उल्लास से उछल जाते हैं, भक्तों की अपार भक्ति छलकती है।

तत्पश्चात् जन्मधाम के नीचे के भाग में-जन्मस्थान में-स्वस्तिक अंकित गुलाबी पाषाण का भव्य सुशोभित मंगल-कमल पूज्य बहिनश्री बेन के हस्त से स्थापित होता है। इस धन्य प्रसंग पर आसपास के गाँव के धर्मजिज्ञासु भी आते हैं। अन्त में, आनन्ददायी प्रतिष्ठा की खुशहाली में निकली हुई जिनेन्द्रदेव की रथयात्रा में हाथी भी जुड़ता है और आकाश से हेलीकाप्टर द्वारा पुष्पवृष्टि भी होती है।

इस प्रकार मात्र तीन महीने में पोरबन्दर, मोरबी, वांकानेर — इन तीन शहरों में पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा से और वढ़वाण, सुरेन्द्रनगर, राणपुर, बोटाद, उमराला — इन पाँच नगरों में वेदीप्रतिष्ठा द्वारा पूरा सौराष्ट्र जिनेन्द्रदेव के प्रभाव से शोभित हो उठता है; जिनेन्द्र भगवन्तों की महिमा गाने लगता है। इन सर्व प्रतिष्ठा प्रसंगों पर 'बीस विहरमान जिन पूजन विधान' होता है और गुरुवर भक्तिभीने चित्त से जिनेन्द्रभक्ति कराते हैं। पोरबन्दर में श्री नियमसारजी और अन्यत्र श्री समयसारजी की स्थापना होती है। प्रतिष्ठा विधि कराने के लिए इन्दौर के

प्रतिष्ठाचार्य पण्डितश्री नाथूलालजी आते हैं और अजमेर की भजनमण्डली अपना भक्तिभाव –भरा सुर जोड़ती है।

पूज्य भगवती माता के शब्दों में कहें तो : 'पूज्य गुरुदेवश्री तो धर्मचक्री हैं, धर्मध्वज को देश–देश में फहराते हैं।.... चौथे काल में तो पञ्च कल्याणक प्रत्यक्ष देखने को मिलते थे, परन्तु वर्तमान में पूज्य गुरुदेव के प्रताप से स्थापनारूप से बहुत पञ्च कल्याणक देखने को मिलते हैं। गुरुदेव ने गाँव–नगर में जगह–जगह जिनालयों और जिनेन्द्र भगवन्तों की प्रतिष्ठा की है, सौराष्ट्रभर में दिगम्बर मार्ग की स्थापना की है, वीतराग शासन का उद्योत किया है। ऐसे शासनस्तम्भ हे गुरुदेव! आपश्री के कार्य अजोड़ हैं, इस काल में अद्वितीय हैं।'

गिरनारजी की यात्रा, आठ प्रतिष्ठाएँ और वीतराग वाणी की अमृतवर्षा इत्यादि महा–धर्मप्रभावना के अनेक मंगल कार्य जिसमें हुए — ऐसा सौराष्ट्र का साढ़े चार महीने का परम पुनीत प्रभावशाली विहार पूर्ण करके, जिनकी शीतल छाया कलिकाल में कल्पवृक्ष समान शान्तिदायक है — ऐसे गुरुदेवश्री, साधनाधाम स्वर्णपुरी पधारने के लिए प्रयाण करते हैं। इस विहारप्रवास के दौरान गुरुवर स्वयं के पवित्र चरण–कमल से अनेक नगरों को पावन करते हैं और मधुर वाणी की बंसुरी से जगह–जगह मुक्तिसन्देश प्रदान करते हैं। सौराष्ट्र के जिज्ञासु भक्त भावना भाते हैं : चैतन्यस्पर्शी गुरुवर्य के पावन प्रताप से हमें जिनदर्शन–पूजन–भक्ति का अमूल्य और अपूर्व योग मिला है। अब हृदय – मन्दिर में आत्मदेव की प्रतिष्ठा कराओ, जिससे उपयोगभूमि में चैतन्यप्रभु पधारे और स्वानुभूति प्रगटे।

ज्येष्ठ शुक्ल षष्ठी, दिनांक 6.6.1954, रविवार : आज सम्पूर्ण सोनगढ़ नगरी श्रृंगारित की जाती है, क्योंकि जिनशासन के सातिशय अद्‌भुत प्रभावना के कार्य करके गुरुवर पुनः सोनगढ़ पधार रहे हैं। इस स्वागत महोत्सव में भाग लेने के लिए बाहर गाँव से भी बहुत भक्त आते हैं। अरे! हाथी भी आता है। जिनशासन को उन्नति के शिखर पर ले जानेवाले गुरुदेवश्री का आगमन होने पर भक्त पुष्पवृष्टि करके अन्तर के उमंग से —विशिष्ट भक्तिभाव से — हृदय की उर्मियों से — भव्य स्वागत करते हैं।

अनाथ के नाथ गुरुराज के पधारने से चारों ओर प्रसन्नता छा जाती है। सूना लगता हुआ स्वाध्याय मन्दिर जीवन्त बनता है। श्री सीमन्धरनाथ के दर्शन करके स्वाध्याय मन्दिर

में असीम उपकारी गुरुदेवश्री मांगलिक फरमाते हैं और पूज्य बहिनश्री बेन स्वागत गीत गवाती हैं। इस विहार में जगत उद्धारक गुरुवर की मंगलकारी छाया में जिनेन्द्र-शासन की महान प्रभावना के अनेक प्रसंग स्थान-स्थान पर बने हैं। दिन-प्रतिदिन वृद्धिंगत यह परम पवित्र धर्मप्रभाव अनेक सुपात्र भव्य जीवों का कल्याण करता है।

जिनका जीवन पवित्र है और उपदेश अपूर्व है — ऐसे गुरुराज पर एक पत्र आता है। उसमें लिखा है : 'आचार्य श्री अकलंकदेव और पण्डितप्रवर टोडरमलजी जैसे धर्मप्रभावक श्री कानजीस्वामी हैं।' अहो! भक्ति का उछाला उछले वहाँ भावना दबी हुई क्यों रहे?

यात्रा करने निकले क्षुल्लक चिदानन्दजी सोनगढ़ आते हैं। वे गुरुवाणी से ऐसे प्रभावित होते हैं कि लगातार चौदह महीने यहाँ ही रह जाते हैं। वे प्रश्न करते हैं : 'जीवद्रव्य शुद्ध है और उनके गुण भी शुद्ध है, तो फिर पर्याय में विकार कैसे हुआ? उसका कारण कौन है? अर्थात् वह कर्म से हुआ है न?' समाधान : 'नहीं, अपनी पर्याय के अपराध से -अज्ञान से हुआ है। अज्ञानी की पर्याय का धर्म है कि विकार हो।' जीव ने स्वयं भूल की है उसका स्वीकार होना चाहिए न? गुरुदेवश्री के परिचय से अति उत्साहित होने से चिदानन्दजी एक साधर्मी को पत्र लिखकर बतलाते हैं कि यदि वस्तु का सच्चा स्वरूप समझना हो तो सोनगढ़ आओ।

जैसे-जैसे अध्यात्मकेशरीसिंह गुरुवर के सिंहनाद से सत्प्रभावना बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे वे जो अपूर्व तत्त्वज्ञान समझाते हैं उसे श्रवण करने दूर-दूर प्रान्त के जिज्ञासु तरसते हैं। फलस्वरूप इन्दौर, खण्डवा, उदयपुर से विशिष्ट माँग आने से भाद्रपद महीने में पर्यूषण पर्व पर इन नगरों में प्रवचनकार भेजे जाते हैं, जिनका हजारों तत्त्वप्रेमी जीव लाभ लेते हैं।

पात्र जीवों के हृदय की गहराई को स्पर्श ने वाली वाणी बरसानेवाले गुरुवर्य, स्वर्णपुरी में पर्वाधिराज दसलक्षण पर्यूषण पर्व के दौरान श्री अमृतचन्द्राचार्य कृत 'तत्त्वार्थसार' में से उत्तम क्षमादि दसधर्मों पर सारभूत प्रवचन प्रदान करते हैं।

इस वर्ष की एक विशिष्ट घटना। वीतरागसुगन्ध से महकती वाणी बरसाकर भक्तों के आत्मिकवीर्य को उछालनेवाले गुरुदेवश्री जैनदर्शन के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त और स्वयं का अतिप्रिय प्राण-प्रिय विषय 'क्रमबद्धपर्याय और सर्वज्ञता' पर आश्वनि

कृष्ण द्वादशी से आश्वनि शुक्ल चतुर्थी तक विस्तृत स्पष्टीकरणसहित एकधारा आठ प्रवचन प्रदान करते हैं। श्री समयसारजी गाथा 308 से 311 के इन प्रवचनों में क्रमबद्धपर्याय के सिद्धान्त को मथते हुए आपश्री को ऐसा हर्ष-उल्लास उछलता है कि फिर से इसी विषय पर आश्विन शुक्ल सप्तमी से एकादशी तक दूसरे पाँच प्रवचन प्रदान करते हैं। विपरीत कल्पनाओं का निराकरण करनेवाले तथा जैनशासन के गम्भीर हार्द को स्पष्टरूप से समझानेवाले, अलौकिक, अपूर्व, अद्‌भुत, अनुपम — ऐसे यह कुल तेरह प्रवचन कालान्तर में 'ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव' नामक पुस्तकरूप से प्रसिद्ध होते हैं। इन प्रवचनों की विशिष्टता यह है कि स्वरूपदाता गुरुवर ने आत्मार्थ को पुष्ट करनेवाले इन प्रवचनों को पढ़ लेने की कृपा की है।

1. ज्ञायक-सन्मुख दृष्टि के अपूर्व पुरुषार्थ बिना क्रमबद्धपर्याय का निर्णय नहीं होता।
2. ज्ञायक के सन्मुख नजर रखकर ही क्रमबद्धपर्याय का यथार्थ निर्णय होता है।
3. ज्ञायकस्वभाव समझे तो ही क्रमबद्धपर्याय समझ में आये; राग की रुचिवाला क्रमबद्धपर्याय समझा ही नहीं।
4. एक कारणशुद्धपर्याय और दूसरी क्रमबद्धपर्याय — ये दो बातें सूक्ष्म हैं, परन्तु यदि बैठे तो कल्याण हो जाये।
5. भाई! एक बार वज्रभीत जैसा यथार्थ निर्णय तो कर! कि मैं ज्ञायक हूँ और यह पदार्थों का स्वतन्त्र क्रमबद्ध परिणमन होता है। बस, इसमें सारा सार आ जाता है।
6. क्रमबद्धपर्याय के स्वीकार में पुरुषार्थ उड़ता नहीं और क्रम भी टूटता नहीं।
7. समझ से ही जीवन की सफलता है।
8. अपने ज्ञानस्वभाव को सामने रखकर विचारे तो यह क्रमबद्धपर्याय की बात सीधे बैठ जाये ऐसी है।
9. यह तो अलौकिक बात बाहर आ गयी है; जो समझेंगे वे निहाल हो जायेंगे।
10. यह अलौकिक अचिन्त्य अधिकार है, इसलिये फिर से पढ़ा जाता है। बारम्बार घोलन करके अन्तर में परिणमाने जैसी यह मुख्य बात है।

भगवती माता पूज्य बहिनश्री फरमाती हैं : ‘समयसार, वह समयसार; उसके जैसा सर्वोत्कृष्ट दूसरा कोई नहीं। गुरुदेव, वह गुरुदेव ही हैं; आपश्री के जैसा दूसरा कौन होगा? एक जगत्चक्षु समयसार तो दूसरे जगत्चक्षु गुरुदेव। समयसार को बतलानेवाले आपश्री एक, आपश्री के जैसा दूसरा कोई नहीं।’

चलो! इस वर्ष के अन्त में दीपावली पर्व के प्रसंग पर बरसी हुई गुरुवाणी में स्नान करें : ‘अहो नाथ! अन्तर की शक्ति के अवलम्बन से आप सर्वज्ञ हुए और हमें वह मार्ग बतलाया। हे भगवान! आपकी प्रसन्नता प्राप्त करके मैं आत्मबोध को प्राप्त हुआ हूँ। हे प्रभु! मैं भी आपके पदचिह्नों पर चला आ रहा हूँ।’

इस प्रकार जिस वर्ष में तीन पञ्च कल्याणक और पाँच वेदी प्रतिष्ठाएँ हुई, वह ‘जिनेन्द्र प्रतिष्ठा वर्ष’ विक्रम संवत् 2010 पूर्णता को प्राप्त होता है।

अपूर्व गुणधारी, अद्भुत–अचिन्त्य–महान आत्मा गुरुदेव के चरणों में बारम्बार नमस्कार!

★ ★ ★

विक्रम संवत् 2011 (सन् 1954-55)

1. देह से भिन्नता का भाव ऐसा दृढ़ होना चाहिए कि 'देह कल छूटे या आज, वह मेरा स्वरूप है ही नहीं; मैं तो अशरीरी सिद्धस्वरूप हूँ' — ऐसी भावना निरन्तर रहे।
2. हे आत्मा! अब बस कर! बस कर!! परिभ्रमण का अन्त कर!!!
3. 'मैं मुक्त हूँ' — ऐसी प्रतीति बिना मुक्त होने का वीर्य स्फुरित नहीं होगा और मुक्ति नहीं होगी।
4. हम अप्रतिहतभाव से अन्तरस्वरूप में ढले हैं; अब हमारी परिणति को रोकने के लिए जगत में कोई समर्थ नहीं।
5. तत्त्वज्ञान द्वारा जीवन के हर पल को सफल करो, धन्य बनाओ।
6. जितना काल पर के लिए गँवाता है, उतना काल यदि स्व के लिए व्यतीत करे तो कल्याण हुए बिना नहीं रहेगा।
7. अपनी आत्मा में सिद्धपना स्थापित करना वह धर्म की अपूर्व-मंगल शुरुआत है।
8. परमात्मशक्ति का विश्वास और आत्मवीर्य का उल्लास हो तो मार्ग मिले बिना नहीं रहता।
9. शरीर में या शरीर के द्वारा धर्म नहीं होता तथा पुण्य में या पुण्य के द्वारा धर्म नहीं होता। हाँ, पर्याय में धर्म होता है, परन्तु पर्याय के द्वारा धर्म नहीं होता।
10. धर्म का मूल सर्वज्ञ है; इसलिए धर्म करना हो तो सर्वज्ञ को पहचान।
11. सर्वज्ञ को स्वीकारने वाले को क्रमबद्ध स्वीकारना ही पड़ेगा।
12. निमित्त का अस्तित्व कार्य की पराधीनता को सूचित नहीं करता।

सिंहवृत्तिधारक गुरुवर की आत्मा को स्पर्श करके आनेवाली अनुभव से सराबोर ऐसी सुमधुर वाणी दुःखी जीवों को सुखमार्ग दिखलाती है, उलझे हुए मानव को मुक्ति

प्रेरणा देती है और अज्ञान से अन्ध आत्माओं को नयी दृष्टि देती है। स्वानुभूतियुगप्रवर्तक गुरुवर के प्रताप से जैनधर्म की राजधानी — ऐसी स्वर्णपुरी में नित्य तत्त्वज्ञानचर्चा की शीतल लहरें बहती हैं।

पौष कृष्ण अष्टमी : श्री मोक्षमार्गप्रकाशक पर प्रवचन पूर्ण होने पर आज — आचार्य-पदवी आरोहण के मंगल दिन — स्वानुभवसुधाभीनी साधना के साधक गुरुवर्य के परमागम श्री नियमसारजी पर, स्वरूप में समा जाने की भावना जगानेवाले, तीसरी बार के प्रवचनों का प्रारम्भ होता है।

चैत्र कृष्ण अमावस्या : ग्रन्थाधिराज श्री समयसारजी पर ज्ञायकदेव के मंगल दर्शन करानेवाले दसवीं बार के प्रवचन समाप्त होते हैं और चैत्र शुक्ल दूज से शाश्वत शान्ति का मार्ग दिखानेवाले श्री प्रवचनसारजी पर अध्यात्मपथ-प्रदर्शक तीसरी बार के प्रवचनों का प्रारम्भ होता है।

वैशाख शुक्ल दूज : जिनके चैतन्य के प्रदेश-प्रदेश में श्रुतज्ञान के दीपक प्रकाशित हो रहे हैं — ऐसे गुरुराज का 66 वाँ जन्म महोत्सव उत्साह-उमंग से मनाया जाता है। भक्त भावांजलि समर्पित करते हैं :

जैनशासन के पुनीत गगन में 65 वर्ष पहले एक चमकते चैतन्यभानु का उदय हुआ था। उस स्वर्णसूर्य की वचनकिरणें आत्मिक वीर्य-शौर्य की जगमगाहट से विभाव को भेदकर मुक्ति का मार्ग प्रकाशित करती हैं। अहो! उन वचनकिरण में ऐसा तेज — अपूर्व चमक — है तो उस ज्ञान-भानु का प्रकाश कैसा दिव्य होगा!

हे जैनगगन के ज्ञान-भानु! आपश्री ने दिव्य सम्यक्ज्ञानप्रकाश द्वारा जिनशासन को प्रकाशित किया है। अज्ञान-अन्धकार दूर करके सुप्रभात खिलाया है।

हे मुक्तिसन्देश सुनानेवाले! भेदज्ञान की झनझनाहट करती, ज्ञायक-सन्मुख ले जाती आपश्री की वाणी की अद्भुत अमृतधारा हम मुमुक्षुहृदयों को डोला देती है। आपश्री के उपदेशामृत की धारा झेलकर, अन्तर्मन्थन द्वारा अपूर्व तत्त्व का निर्णय करके, तद्रूप परिणमन करें यही परम कर्तव्य-ध्येय है। इसलिए आपश्री रात-दिन प्रेरणा और प्रोत्साहन प्रदान करके अचिन्त्य उपकार कर रहे हो।

जब चारों ओर संसार में कषाय का वातावरण छा गया है, तब उससे भिन्न मोक्षमार्गरूप अपूर्व कल्याणकारी राह आपश्री बता रहे हो यह हमारा महान सौभाग्य है। आपश्री की भवभ्रमण का भय मिटानेवाली वाणी जगत के क्लिष्ट वातावरण से दूर आत्मिक शान्ति के मार्ग में ले जाती है। बस, आपश्री के द्वारा बताये हुए पन्थ को पहचानें और अनुसरण करें, भक्तिदीपक से आपश्री का सम्मान करें और आपश्री की ज्ञानकिरणें झेलकर ज्ञानप्रकाश प्रगटायें यही मंगल भावना है।

इस प्रसंग पर सौराष्ट्रभर से तथा रंगून, कलकत्ता, मुडबिद्री, लाडनूँ जैसे दूर-दूर के नगरों से भी भक्तिभाव व्यक्त करते हुए तार-सन्देश आते हैं।

दिव्य विभूति, अपूर्व गुणधारी, ज्ञाननिधि, जिनेन्द्र के परम भक्त गुरुवर्य के प्रभाव से अहो-रात जिनधर्म की निरन्तर वृद्धि हो रही है। आपश्री की चैतन्य को जगानेवाली वैराग्यपोषक सातिशय वाणी के मधुर रणकार से प्रभावित होकर सत्समागम के लिए सोनगढ़ में निवास करनेवाले तथा अनुपम श्रुतधारी गुरुराज के प्रत्यक्ष दर्शन-वाणी का लाभ लेने आनेवाले आत्महितेच्छु-आत्मार्थभीने हृदयवाले-जिज्ञासुओं की संख्या दिन -प्रतिदिन बढ़ती जाती है। इस कारण नित्य दर्शन-पूजन-भक्ति के लिए भी जिनमन्दिर छोटा पड़ने लगता है। अतः बहुत समय से भक्तों को भावना रहा करती थी कि इस मन्दिर का जीर्णोद्धार करके विस्तृत किया जाये। आज 66 वें जन्मोत्सव प्रसंग पर, यह भावना साकार करने की घोषणा की जाती है।

एक बार सहजानन्दमय आत्मा की पवित्र अनुभूति करनेवाले गुरुराज फरमाते हैं : 'कोई ऐसे भाव हो गये इसलिए यहाँ आये हैं; नहीं तो हमारा जन्म यहाँ नहीं होता।' हे मंगलमूर्ति! हमारे किसी महत् पुण्य से आप यहाँ पधारे हो।...

श्रावण कृष्ण तृतीया : श्री नियमसारजी पर तीसरी बार के अपूर्व मार्ग प्रकाशक प्रवचन पूर्ण होते हैं और श्री अष्टपाहुड़ पर पाखण्डों को जड़मूल से उखाड़ फैंकनेवाले प्रवचन शुरु होते हैं।

भाद्रपद माह के पर्यूषण पर्व के समय, शासनस्तम्भ श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव कृत 'बारह भावना' में से उत्तम क्षमादि दस धर्मों पर श्रुतरस में सराबोर ऐसे प्रवचन होते हैं।

आश्विन शुक्ल दशमीं : विजय दशमी के दिन मुम्बई नगरी के झवेरी बाजार विस्तार में नूतन जिनमन्दिर का शिलान्यास महोत्सव मनाया जाता है जिसमें तीन हजार भक्त उमड़ते हैं।

इस प्रकार विक्रम संवत् 2011 का वर्ष समाप्त होता है।

सातिशय ज्ञानधारी परम प्रतापी कहान गुरुदेव को परम भक्ति से नमस्कार!

★ ★ ★

विक्रम संवत् 2012 (सन् 1955-56)

मार्गशीर्ष कृष्ण पंचमी : जिनमन्दिर को विशाल और उन्नत शिखरबद्ध करने के लिए ज्ञानावतारी गुरुदेवश्री की मंगल उपस्थिति में तथा भक्तों के मंगल गीतों और गगन गूँजी जयकार के बीच पूज्य बहिनश्री बेन के शुभहस्त से शिलान्यास होता है। भावभीने इस दृश्य से मुमुक्षुओं का हृदय आनन्द से नाच उठता है और गगनभेदी हर्षनाद करते हैं।

पौष शुक्ल एकम : भक्तों के जीवन में वैराग्य का सिंचन करनेवाले गुरुदेवश्री, एक मुमुक्षु बहिन की अन्तिम स्थिति होने से दर्शन देने पधारते हैं और सम्बोधन करते हैं : 'यह देह, श्वास और आकुलता — इन तीनों से भिन्न आत्मा ज्ञान, दर्शन और आनन्द इन तीन स्वरूप है उसका लक्ष रखना।' अहो! अशरण संसार में सत्पुरुषों की शीतल वाणी — छाया ही शरणभूत है।

गुणरत्नभरपूर गुरुदेवश्री की एक महान भेंट तथा जैनसाहित्य में एक अमूल्य प्रकाशन 'ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव' नाम की पुस्तक हिन्दी में प्रकाशित होती है।

फाल्गुन शुक्ल चतुर्दशी : विगत दिन श्री अष्टपाहुड़ के प्रवचन पूर्ण होने पर, दुःखी होकर पुकार करते और सुख के लिए भटकते जीवों को शाश्वत सुख का राजमार्ग बतानेवाले शास्त्र श्री समयसारजी पर, स्वरूपजीवन जीनेवाले गुरुराज के ग्यारहवीं बार के प्रवचन आज शुरु होते हैं। यह परमागम चाहे जितनी बार पढ़ा जाये तो भी श्रोता और वक्ता का रस बढ़ता ही जाता है। यह श्री समयसारजी की कोई अद्भुत विशिष्टता है, चमत्कार है।

वैशाख शुक्ल दूज : आज के मंगल दिन, मंगल सुप्रभात में मंगल घण्टनाद और वाद्य-यन्त्रों द्वारा भक्तमण्डल, जिनकी भेंट होना भी दुर्लभ है ऐसे कहान गुरुदेव के 67 वें जन्मोत्सव की सूचना देता है। जन्मबधाई गीत गाते-गाते मुमुक्षु देव-शास्त्र-गुरु के दर्शन को आते हैं, स्वाध्याय मन्दिर को तीन प्रदक्षिणा देते हैं और भक्तों के जीवनाधार अजोड़ रत्न गुरुदेवश्री के दर्शन-स्तुति करके धन्यता अनुभवते हैं।

प्रात:काल जिनेन्द्रपूजन के पश्चात् प्रशमरस झरती गुरुवाणी प्रवाहित होती है और भक्त सर्वस्व उपकारी गुरुराज के प्रति उपकार भावना व्यक्त करते हैं :

स्वरूप आरामी गुरुवर्य का बाह्यान्तर वैभव त्रिकाल जयवन्त वर्तो! जिससे हमें जिनेन्द्रदेव, जिनालय, जिनवाणी, और आत्मदेव मिले।

हमें सम्यक् मार्ग की ओर ले जानेवाले हे गुरुराज! आपश्री धन्य हो कि जो तत्त्व-चिन्तनपूर्ण, वैराग्यमय, ध्येयलक्षी जीवन जी रहे हो।

अपूर्व वाणी प्रकाशक हे गुरुदेव! आत्मा को स्पर्श कर आनेवाली आपश्री की वाणी हमारे आत्मा को भी स्पर्श कर जाती है। आपश्री की अद्भुत वाणी के प्रताप से संयोग परिवर्तन या मृत्यु के समय जीवन में शान्ति ही रहती है।

हे अनेक आत्मार्थियों के जीवन आधार! भव-भ्रमण से थके हुए भव्यों के विश्राम-स्थान आपश्री ही हो। धर्मरंग से रंगा हुआ आपश्री का सहज जीवन अन्तर नजर से देखें तो ही ख्याल में आवे ऐसा है।

हे परम प्रभावी शासनरत्न! आपश्री अन्तर साधना से प्रकाशमान, सर्वांग शोभित, मुक्ति-मण्डप रोपते हुए प्रभावशाली सन्त हो।

हे जिनशासन के अनमोल रत्न! प्रभुता के पंथ में चढ़े हुए ऐसे आपश्री हमारे आत्मा में प्रभुता की स्थापना करते हो और फरमाते हो : 'हे भाई! तुझे जैनशासन का सेवन करना हो तो राग का सेवन छोड़! तुझे कर्म भटकाते नहीं और भगवान तारते नहीं; धर्म उसे कहते हैं कि जिससे भव का अन्त आये। हे जीव! तेरी आत्मा में एक बार सर्वज्ञता का रंग चढ़ा।'

वैशाख शुक्ल दूज अर्थात् अनाथ के नाथ का अवतार दिन। शान्तिदाता सन्त के सान्निध्य बिना सब जिज्ञासु अनाथ थे। अब इन सन्त का पदार्पण होने से आत्महितार्थी जीवों द्वारा जितना लिया जा सके उतना लाभ लेने योग्य है। विवेकीजन ऐसे अवसर में प्रमाद नहीं करते। जिनशासन के अति मूल्यवान इस रत्न को-विभूति को जगत परखे-पहचाने यही अभिलाषा है।

भावरहित शुष्क क्रियाकाण्ड में जैनधर्म माना जा रहा है, तब 'सहजानन्दमय

आत्मा का अनुभव वह जैनधर्म है' — ऐसी जोरदार घोषणा करके, साधना में अनुरक्त ऐसे गुरुदेवश्री ने सबको पुरुषार्थ करने के लिए प्रेरित किया है। तत्त्व को ढिंढोरा पीट कर प्रसिद्ध करती सम्यक्त्वपरिणत गुरुवर्य की स्वानुभवरस झरती वाणी, पात्र जीवों के हृदय में सीधे उतर गयी है और वे हित के मार्ग में आ रहे हैं। अब मुक्तिमार्ग प्रकाशित हुआ है; शासन में नूतन तेज प्रगट हुआ है।

आनन्दधाम आत्मा में से सहज झरती प्रचुर आनन्दमय मुनिदशा का दर्शन तो दूर रहा, उस दशा का यथार्थ निरूपण करनेवाले सत्पुरुष भी कहाँ देखने को मिलते हैं ? इस प्रकार सत्संग का योग होना दुर्लभ है तब तथा कषाय से जलते हुए काल में गुरुवर्य के प्रताप से तीर्थधाम सोनगढ़ में अध्यात्मज्ञान के शीतल जल का जोरदार फव्वारा उछल रहा है और उसके छींटे सारे भारत में अनेक सुपात्र जीवों को शान्ति अर्पित करते हैं। आपश्री के विशाल प्रभावनावट की छाया गाँव-गाँव में फैल चुकी है। बस, अब तो यह सत्संग सर्वार्पणभाव से उपासना करने योग्य है तथा उसके फलरूप में ज्ञानानन्दमय सम्पदा प्राप्त कर लेने जैसी है, जहाँ विपदा का प्रवेश नहीं और जिसके पास सभी ही बाह्य पद अपद भासित होते हैं।

हे स्वरूपदानदाता दयानिधि! आपश्री की कल्याणकारी शीतल वाणी का हमें सदा श्रवण-मनन हो और उसमें विद्यमान गहन भावों का अवगाहन हो।

वैशाख शुक्ल चतुर्दशी : अद्भुत और सफल जीवन जीनेवाले ज्ञानदाता गुरुराज के श्री प्रवचनसारजी पर तीसरी बार के प्रवचन पूर्ण होते हैं और ज्येष्ठ कृष्ण एकम से पूज्यपाद आचार्य रचित श्री समाधिशतक पर सन्मार्गदर्शी प्रवचन शुरु होते हैं।

आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशी और पूर्णिमा : विस्तृत हो रहे जिनमन्दिर की छत भरना होने से सतत दो दिन पूज्य बहिनश्री बेन सहित समस्त मुमुक्षुमण्डल के भाई-बहिन भक्ति गाते-गाते उत्साह से श्रमयज्ञ में भाग लेते हैं। पूज्य गुरुदेवश्री भी इन दो दिन प्रवचन बन्द रखते हैं।

श्रावण शुक्ल एकम : अनेक भक्तों को बहुत समय से परम श्रद्धेय गुरुदेवश्री के साथ शाश्वत सिद्धिधाम श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा करने की हृदयगत भावना थी। आज

मुक्तिपुरी के यात्री गुरुराज यह भावना फलीभूत हो — ऐसे निर्णय की घोषणा दोपहर की भक्ति के बाद करते हैं। यह स्वर्णवचन सुनते ही जोरदार जयकार गूँजा कर, भक्त उसका उमंग पूर्वक स्वीकार करते हैं और आनन्द-हर्ष व्यक्त करते हैं। सर्व भक्तों के हृदय यात्रा करने को उत्साहित होते हैं और पुलकित हो जाते हैं। भारतभर में यह शुभसन्देश पहुँचता है और वहाँ से भी प्रसन्नता के तार, पत्र आने लगते हैं।

श्रावण शुक्ल पूर्णिमा : मुनिरक्षा के पावन पर्व पर श्री पूज्यपादाचार्य रचित श्री समाधिशतक अर्थात् समाधितन्त्र पर स्वानुभवविधिदर्शक प्रवचन पूर्णता को प्राप्त होते हैं और दूसरे दिन उन्हीं आचार्य द्वारा विरचित श्री इष्टोपदेश पर प्रवचनों का प्रारम्भ होता है।

भाद्रपद कृष्ण एकादशी से भाद्रपद शुक्ल नवमीं तक मुमुक्षुओं के महाभाग्य से जिनका पंचम काल में योग बना है — ऐसे अजोड़ गुरुदेवश्री, श्री मानतुंगाचार्य रचित 'भक्तामरस्तोत्र' पर उपशान्त भक्तिरस झरते तथा मानो कि आदिनाथ और आचार्यदेव नजर के समक्ष विराजते हों — ऐसे भाव जागृत करते हुए, प्रवचन प्रदान करते हैं।

भाद्रपद शुक्ल पंचमी : पर्यूषण पर्व का प्रथम दिन, उत्तम क्षमाधर्म दिन। दिनांक 9.9.1956। आज, ऐसे विलासी काल में जिसकी कल्पना करना भी मुश्किल है — ऐसी घटना घटित होती है और वह है चौदह कुमारिका बहिनों द्वारा ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा। जैनजगत का यह विरल और गौरवशाली प्रसंग है।

बाल ब्रह्मचारी गुरुराज स्वयं आत्मानुभव करके ज्ञानमूर्ति आत्मा के दर्शन किस प्रकार हों उसका उपाय बतानेवाला पावन उपदेश एकधारा से प्रदान करते हैं। जिनके पुनीत प्रताप से अनेकानेक जिज्ञासु आत्मप्राप्ति की भावना से उसी का ही चिन्तन करते हैं, तत्त्व का वाँचन-विचार-मन्थन करके स्वानुभूति की छटपटी करते हैं। इसी कारण निवृत्ति लेकर तत्त्वाभ्यास करने हेतु से बहिनों को ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा लेने की भावना जागृत हुई है।

प्रात:काल जिनेन्द्रपूजन के पश्चात् बैण्डबाजे सहित जिनवाणी की रथयात्रा पूरे गाँव में घूमती है। प्रवचनमण्डप में शुद्धात्मतत्त्व विज्ञानी गुरुवर के व्याख्यान के बाद, आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत की प्रतिज्ञा अंगीकार करने के लिए एक साथ चौदह बहिनें खड़ी होती हैं तब वीरता और वैराग्य का अनोखा दृश्य सृजित होता है। मानो कि वे गुरुवाणीरूपी

तीर के द्वारा कामदेव को जीत कर, वैराग्य की विजयपताका फहराने के लिए तैयार हुई हैं। गुरुमुख से असंगी चेतनतत्त्व के उपदेश की धीर–गम्भीर अध्यात्मधारा निरन्तर बरस रही है उसी का ही यह प्रभाव है कि उसके श्रवण–मंथन से जीवन में सहज ऐसी उदासीनता प्रगट हुई है। जहाँ पुरुषार्थ द्वारा दशा की दिशा पलटाने का प्रयत्न होता है, वहाँ राग का विषय भी बदल जाता है और इस कारण ऐसे भाव हठ बिना आ जाते हैं।

यथार्थ तत्त्व की रुचिपूर्वक व्रत धारण करने के प्रसंग बहुत विरल बनते हैं, उनमें से यह एक प्रसंग है। प्रचण्ड इन्द्रिय लोलुपता के वातावरण में लगभग अशक्य लगती बात, ज्ञानी के समागम में कैसी सुगम बन जाती है उसका यह प्रत्यक्ष उदाहरण है। आत्मस्पर्शी गुरुवाणी ने अनेकों के जीवन पलट डाले हैं और सत् की शरण में सम्पूर्ण जीवन समर्पण करने की ताकत प्रगटायी है। उन्हें ज्ञानियों की शीतल छाया में वात्सल्य भरी गरमाहट से विश्वास आया है कि यह भव संसार के भोग के लिए नहीं, परन्तु आत्महित के लिए है।

इस प्रसंग पर बाहर गाँव से बारह सौ लोग आते हैं और ज्ञानभानु गुरुवर के प्रभावना उदय से धर्म का विजयध्वज फहरा रहा है यह देखकर प्रत्येक धर्मवत्सल भक्तों का हृदय प्रमोद से प्रफुल्लित–प्रमुदित हुए बिना नहीं रहता।

निवृत्त जीवन से निज आत्महित सधे, आत्मकल्याणी साधना हो — इस प्रयोजन से यह व्रत लेने में आता है। इस भावना की समाज द्वारा बहुत अनुमोदना होती है। इस प्रसंग से गुरु–उपदेश का प्रभाव कैसा है उसका अन्दाज–अनुमान विवेकीजन स्वयं कर सकते हैं। वैराग्य से भीगे हुए गुरुदेवश्री का सानिध्य और वाणी कितनी सरलता से जीवों को आत्महित में लगा देते हैं यह प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है।

इस प्रसंग पर बहिनें भावना भाती हैं : अध्यात्मतेज के साथ–साथ जिनका ब्रह्म –तेज भी अलौकिक है, जो अखण्ड ज्ञानतेज से सूर्य के समान हैं और वीतरागता के शान्तरस को बरसाने के लिए चन्द्र समान है, ऐसे हे धर्मपिता! आपश्री जैसे तेजस्वी सन्त का साक्षात्कार होना इस काल में कठिन है। स्वरूपवीर्य की खुमारी और शील–रंग से रंगे हुए हे जीवन आधार! आपश्री की महा प्रतापी छत्रछाया मिलने से तथा पावन उपदेश का

पान करने से हम बालक शीलमय जीवन स्वीकार करने को तैयार हुए हैं। हे तारणहार! आपश्री की वाणी के शब्द-शब्द में स्वरूपसाधना के सुर प्रवाहित हो रहे हैं। आपश्री के रोम-रोम में उदासीनता-वैराग्य उछल रहे है। आपश्री ने दिव्य ज्ञानप्रभा द्वारा जिनशासन को जगमगा दिया है। आपश्री जिनधर्म के अनमोल रत्न-शृंगार हो। आपश्री ने अपने कुल को पवित्र किया है और शासन का गौरव बढ़ाया है। आपश्री द्वारा हो रहा मार्ग पुनरुद्धार का — अभिवृद्धि का कार्य कोई अलौकिक है।

बस, हम यह दु:खद भवसागर तिरें और आनन्दनिधान चैतन्य का वरण करें यह अभिलाषा है। वह सुखभण्डार शुद्धात्मा हाथ न आवे तब तक आपश्री की छत्रछाया में रहकर, चैतन्य को स्पर्श करके आनेवाली तथा उसकी ही झाँकी करानेवाली आपश्री की वाणी सुनते रहें, मन्थन करते रहें यह भावना है।

इस मंगल प्रसंग पर इन्दौर से प्रतिष्ठाचार्य पण्डित नाथूलालजी हर्ष व्यक्त करते हैं : 'बाल ब्रह्मचारी तीर्थंकर श्री नेमिनाथ और श्री पार्श्वनाथ के पश्चात्, श्री महावीरस्वामी का यह तीर्थकाल है तथा बाल ब्रह्मचारी पूज्य श्री कानजीस्वामी की अपूर्व वाणी का प्रभाव है कि उनके आदर्श का मूर्तरूप सौराष्ट्र के अनेक तरुण बाल ब्रह्मचारी बन्धुओं में दृष्टिगोचर हो रहा है। इसी प्रकार ब्राह्मी-सुन्दरी और राजमती के आदर्शों को कार्यान्वित करनेवाली सोनगढ़ में विद्यमान 20 बाल ब्रह्मचारी बहनें तथा युवावस्था में ही ब्रह्मचर्य अंगीकार करनेवाले अनेक दंपति, भगवान महावीर के तीर्थ की प्रभावना कर उसे सार्थक बना रहे है। नि:सन्देह आज यह भौतिकता पर आध्यात्मिकता की विजय है। धन्य है पूज्यश्री स्वामीजी और पूज्य बहनश्री बेन।'

गुरुवाणी : शाश्वत ऐसा उपादेय तत्त्व कभी मिटे नहीं,
क्षणिक ऐसा हेय तत्त्व सदा रहे नहीं और
भिन्न ऐसा ज्ञेय तत्त्व साथ आवे नहीं।
सुखरूप स्वभाव का सामर्थ्यपना है,
दु:खरूप विभाव का विपरीतपना है और
पररूप संयोग का पृथकपना है।

इस प्रकार आगामी वर्ष में तीर्थंकरों के देश में, सिद्धों के धाम में और मुनिवरों की भूमि में शुद्धस्वरूप की महिमा बतलानेवाले गुरुवर के संग में विचरेंगे — ऐसी भावना भाते–भाते विक्रम संवत् 2012 का वर्ष पूर्ण होता है ।....

भरत क्षेत्र में धर्मकाल प्रवर्तन कर, पामर जीवों का उद्धार करनेवाले दिव्यध्वनिदाता कहानगुरु जयवन्त वर्तो !

कहानगुरुए कादवमांथी काढीया रे,
चढाव्या ए राजमार्ग द्वार.... रुडा गुरुवर अहीं पधारजो रे...

सीमंधरना नाद कुंद लावीया रे,
रणशींगा वगाड्या भरतमांय.... रुडा गुरुवर अहीं पधारजो रे...

गुरुकहाने रणशींगा सांभळया रे,
वगाडनार ए छे कोण.... रुडा गुरुवर अहीं पधारजो रे...

गुरुकहाने ए कुंदकुंद शोधीया रे,
शोधी लीधो ए शासननो थंभ.... रुडा गुरुवर अहीं पधारजो रे...

वीरपुत्र सेवा कहानगुरु पाकीया रे,
जेणे सुणाव्या ॐना स्वरूप.... रुडा गुरुवर अहीं पधारजो रे...

गुरुकहाने भरतने जगाडीयुं रे,
जागो जागो ए ऊँघता अंध.... रुडा गुरुवर अहीं पधारजो रे...

गुरुकहाने चिदातम बतावीयो रे,
रोप्या छे मुक्तिकेरा थंभ.... रुडा गुरुवर अहीं पधारजो रे...

चैतन्य चक्री कहानगुरुए रे,
खोल्या दिव्यध्वनिना रहस्य.... रुडा गुरुवर अहीं पधारजो रे...

ऐवा शासन स्थंभ मारा नाथ छे रे,
तेने जोई जोई अंतर उभराय.... रुडा गुरुवर अहीं पधारजो रे...

गुरुना हृदये जिनेश्वर वसी रह्या रे,

गुरुना शिरे जिनेश्वरनो हाथ.... रुडा गुरुवर अहीं पधारजो रे...

गुरु सेवक रत्नत्रय मागता रे,
ए तो लळी लळी लागे पाय.... रुडा गुरुवर अहीं पधारजो रे...

गुरुराजनी सेवा हृदये वसो रे,
वसो वसो ए गुरु त्रिकाळ.... रुडा गुरुवर अहीं पधारजो रे...

गुरुकहान भक्ति मुज अंतरे रे,
जेथी पामुं हुं पूर्ण स्व सहरूप.... रुडा गुरुवर अहीं पधारजो रे...

★ ★ ★